ISSN : 2278-4632

JUNI KHYAT

जूनी ख्यात

(सामाजिक विज्ञान, कला एवं संस्कृति की शोध पत्रिका)

A Peer-Reviewed and Listed in UGC Care List

मरुभूमि शोध संस्थान, श्री डूँगरगढ़ (राज.)

MARUBHUMI SHODH SANSTHAN, SRI DUNGARGARH (RAJ.)

'जूनी ख्यात' सम्पादक मण्डल

प्रो. हरबंस मुखिया	इतिहास	जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
प्रो. वसन्त शिंदे	पुरातत्त्व एवं प्राचीन इतिहास	पूर्व कुलपति दक्कन कॉलेज, पूना
प्रो. के. एस. गुप्ता	इतिहास विभाग	मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर
प्रो. जी.एस.एल. देवड़ा	मध्यकालीन इतिहास	पूर्व कुलपति, वर्धमान महावीर खुला विवि., कोटा (राज.)
प्रो. एस. इनायत अली ज़ैदी	इतिहास विभाग	जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
प्रो. एल. एस. निगम	प्राचीन इतिहास	पूर्व विभागाध्यक्ष, रायपुर
प्रो. सीताराम दुबे	प्राचीन इतिहास	बी.एच.यू., वाराणसी
प्रो. चन्द्रपाल सिंह चौहान	शिक्षा	अलीगढ़ मुस्लिम वि.वि., अलीगढ़ (उ.प्र.)
प्रो. बी. एम. शर्मा	राजनीति शास्त्र	राज. विवि., जयपुर
प्रो. ए.एस. के.दास	शिक्षा एवं मनोविज्ञान	वाइंस चान्सलर हनुमानगढ़ (राज.)
प्रो. अब्दुल मतीन	समाजशास्त्र	अलीगढ़ मुस्लिम वि.वि.,अलीगढ़ (उ. प्रदेश)
प्रो. आर. आभापाल	आधुनिक इतिहास	पं. रविशंकर शुक्ल वि.वि., रायपुर
प्रो. विपुलसिंह	पर्यावरण इतिहास	दिल्ली वि.वि., दिल्ली
प्रो. जीवनसिंह खरकवाल	प्राचीन इतिहास पुरातत्त्व	साहित्य संस्थान जे.आर.एन, विद्यापीठ, उदयपुर

JUNI KHYAT

जूनी ख्यात

(सामाजिक विज्ञान, कला एवं संस्कृति की शोध पत्रिका)

वर्ष : 11 • अंक 1

जुलाई-दिसम्बर 2021

A Peer-Reviewed and Listed in UGC CARE List

ISSN 2278-4632

संपादक

डॉ. बी. एल. भादानी

प्रोफेसर

प्रबंध संपादक

श्याम महर्षि

मरुभूमि शोध संस्थान

संस्कृति भवन

एन.एच. 11, श्रीडूँगरगढ़ (बीकानेर) राजस्थान

प्रकाशकीय एवं विज्ञापन कार्यालय :
सचिव, मरुभूमि शोध संस्थान, श्रीडूँगरगढ़-331803 (बीकानेर) राज.

आजीवन सदस्यता 4000 रु. । **इस अंक का मूल्य : 200 रुपये**
सहयोग दर :
(व्यक्तिगत) एक अंक 100 रुपये ❑ प्रति वर्ष 200 रुपये
(संस्था) एक अंक 150 रुपये ❑ प्रति वर्ष 300 रुपये
बाहरी चैक के लिए 25 रुपये अतिरिक्त

आजीवन शुल्क संस्था के निम्न खाते में सीधा ट्रांसफर करके हमें बताने की कृपा करें।

1. **Punjab National Bank**
2. **Sri Dungargarh**
3. **मरुभूमि शोध संस्थान**
4. **खाता सं. 3604000100174114**
5. **IFSC Code - PUNB0360400**

ड्राफ्ट/नकद भुगतान भेजने का पता :

श्याम महर्षि
सचिव :
मरुभूमि शोध संस्थान
(राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचार समिति)
श्रीडूँगरगढ़ 331803 (बीकानेर) राज.
फोन : 01565-222670
आलेख सीडी में या निम्न ईमेल पर प्रेषित किया जा सकता है।

चित्र प्राप्ति : **डॉ. राकेश किराडू**
ढोला मारू री वात, वि. सं. 1836, सृजनकर्ता मथेरन अभेराम, सृजन स्थल, बीकानेर

सम्पादकीय कार्यालय :
डॉ. बी.एल. भादानी
रांगड़ी चौक, बीकानेर 334001 (राज.) मो. 9950678920
bbhadani.amu@gmail.com • junikhyat.mss@gmail.com

सावधान

जूनी ख्यात (अर्द्ध वार्षिक) दिसम्बर 1994 ई. से नियमित Print Form में प्रकाशित हो रही है। जून 2019 में 'UGC Care List' (S.N. 220) में सामाजिक-विज्ञान की श्रेणी में सम्मिलित करली गई है। हमारी पत्रिका Online प्रकाशित नहीं होती है।

जूनी ख्यात नाम से ही एक फर्जी पत्रिका (Cloned Journal) ऑन लाइन निकाली जा रही है जो हमारे ही ISSN एवं यू.जी.सी. केयर लिस्ट की संख्या को उपयोग में ले रही है। इस सम्बन्ध में **यू.जी.सी.** ने 23-7-2020 को 'Cloned Journal' की एक सूची जारी की है उसमें अन्य पत्रिकाओं के साथ **जूनी ख्यात** का भी नाम है। यह पत्रिका निम्न वेबसाइट पर प्रत्येक विषय के शोध पत्र आमंत्रित करती है।

Juni khyat Journal

Language	:	English & Hindi
Publisher		NA
ISSNo.		2278-4632
URL http	:	www.junikhyat.com

हमारी पत्रिका **मरुभूमि शोध संस्थान, श्रीडूँगरगढ़** द्वारा प्रकाशित की जाती है। अब 'नक़ली पत्रिका' बी.एल. भादानी, संपादक के नाम का भी उपयोग कर रही है जो एक आपराधिक कृत्य है।

इसमें तथाकथित रूप से प्रकाशित आलेख का कोई महत्त्व भी नहीं है। इसलिए शोधार्थियों से सावधान रहने की अपील की जाती है।

बी.एल. भादानी

संपादक

Sl.No.	Journal No.	Title	Publisher	ISSN
220		JUNI KHYAT		2278-4632

UGC Journal Details

Name of the Journal : **JUNI KHYAT (Print Form)**

ISSN Number : 2278-4632

e-ISSN Number : NA

Source : **UGC**

Discipline : **Social Science**

Subject : **Social Sciences (all)**

Focus Subject : Cultural Studies

Publisher : Marubhumi Shodh Sansthan, Sri Dungargarh (Bikaner)

श्री गणेशाय नम:
स्मत १७८३ वर्षे सा
के १६४८ प्रवत्रे माने
मासोतम मासे फागु
ण मासे शुक्ल पक्ष
तिथौ ३ त्रितीयाय
सोमवासरे रेवंती न
क्षत्र शुभयोग ल
...... को माथे तत प्र
चमचद नरानदा
मठ.....
उसत

सारांश : यह शिलालेख गोगागेट के बाहर स्थित नवलपुरी मठ की तलाई के एक किनारे पर मिट्टी में दबा हुआ था जिसे खोद कर बाहर निकाला गया जिसमें डॉ. रीतेश व्यास एवं डॉ. गोपाल व्यास का पूर्ण सहयोग रहा।

यह शिलालेख वि.सं. 1783/ ई. 1726 फागुण शुक्ला तृतीया, सोमवार का है। अन्तिम पंक्तियां अस्पष्ट हैं।

अनुवादक : **डॉ. बी. एल. भादानी**

संपादकीय

'जूनी ख्यात' जुलाई-दिसम्बर 2021 का अंक विलंब से आपके हाथों में पहुँच रहा है जिसका मुख्य कारण विषय-विशेषज्ञों से शोधपत्रों पर उनकी राय मिलने में प्रायः देरी होना है। अगर विशेषज्ञ ने पत्र में कुछ सुधार सुझाएं हैं तो शोधार्थी को वापिस लौटाया जाता है। इस प्रक्रिया में काफी समय लगना स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त ओमिक्रोन ने भी विलंब में अपना योगदान दिया। इसमें कुल (29) उनतीस शोध आलेख हैं जिनमें इतिहास, शिक्षा, योग, वैदेशिक सम्बन्धों एवं देशज व्यंजन की संस्कृति पर केन्द्रित हैं। इनके अतिरिक्त सामयिक एवं पर्यावरण विषयों पर भी आलेख हैं।

इन आलेखों की जांच प्रोफेसर चन्द्रपालसिंह चौहान, प्रो. अब्दुल मतीन, प्रो. मोहम्मद इदरिश (पटियाला), प्रो. बी.के. शर्मा (जयपुर), प्रो. एस. के दास (वाईस चान्सलर, हनुमानगढ़), प्रो. एस. इनायत अली ज़ैदी (दिल्ली) एवं प्रो. इक़राम हुसैन आदि ने की है जिसके लिए आभार।

शोध आलेखकों से निवेदन है कि उनका आलेख 3000 शब्दों तक अर्थात् पन्द्रह पृष्ठ कृतिदेव वर्ड में टाईप तक सीमित रहना चाहिए। इससे अधिक शब्दों के आलेखों को स्वीकार नहीं किया जावेगा।

हमारी पत्रिका में शोधपत्र प्रकाशित होने की लंबी प्रक्रिया है जिसमें छह से आठ महीने लगते हैं इसलिए लेखकों-शोधार्थियों से निवेदन है कि वे शीघ्रता न करें। अगर उन्हें जल्दी है तो वे कहीं अन्य पत्रिका में प्रकाशित करवाने के लिए स्वतन्त्र हैं।

डॉ. बी. एल. भादानी

सम्पादक

विशेष : **जो लेखक अपनी पत्रिका रजिस्टर्ड डाक से मंगवाना चाहते हैं वे एक वर्ष के अंक के लिए 220 रुपये अतिरिक्त भिजवाने का कष्ट करें।**

अनुक्रम

- The Critical Evaluation of the Some Sociological Traits and their Role in the Making of *Varṇa*/ Caste Hierarchy During the Later *Vedic* Periods — 9
  - *Sheo Dutt*
- Contextualising Everyday Life of Monks in a Monastery : Paharpur — 18
  - *Dr. Priyam Barooah*
- Reading Vatsyayana : Society, Patronage, Art, and Eroticism — 26
  - *Dr. Monika Saxena*
- Aggressive and Defensive Battle of Bhangani — 45
  - *Dr. Kavita Rani*
- *Gender Studies*-Re-locating Historical Enquiry — 51
  - *Dr. Anisha Srivastava*
- Language in History, History in Language : An Overview — 68
  - *Ms. Nishtha Srivastava*
- The Economic Conditions of Haryana Region during the Eighteenth Century : Revisiting the 18th Century Debate — 82
  - *Dr. Bhupinder K. Chaudhry* • *Dr. Rajshree Dhali*
- Gender Identities in Popular Hindi Films: From the 70s to the 90s — 95
  - *Pankaj Kumar Jha* • *Sneh Jha*
- Tracing The Life and Culture : Muthuvans of Kannan Devan Hills On The Eve of Europeanisation — 110
  - *Dr. Sebastian Joseph* • *Dr. JijoJayaraj*
- Yoga for Improving Sedentary Professionals' Work Performance — 118
  - *Dr. Seema Singh*

- China’s Belt And Road Initiative: Implications For India 139
  - *Dr. Ravi Sabavat*
- An Evaluation of Mid Day Meal (MDM) Scheme Under *Sarv Shiksha Abhiyan* (SSA) in Uttarakhand : Case Study of Two Schools in US Nagar 151
  - *Neerja Singh* • *Hari S. Bisht*
- Rights and Relationships of the India with Transgenders 158
  - *Tinku Khatri*
- Exploring Ethnic Food as a Gastronomic Feature : Insights from Rajasthan 165
  Vikas Mohan • *Harkirat Bains*
- Evaluation of various pension schemes targeted to weaker sections operating in the Kumaon division 177
  Dr. Reenu Rani Mishra • *Km. Swati Ronkali*
- Deconstructing Farmer Protests in Delhi (2021) : Counter-Narratives and Misinformation on Social Media 191
  Namit Vikram Singh • *Surbhi Tandon*
- Awareness and Opinion of Elementary Teachers Towards Constitutional Values 222
  Dr. Samir Kumar Lenka • *Dr. Anamika Lenka*
- औपनिवेशिक बिहार में नदी सम्बन्धी शासकीय क़ानून 237
  विपुल सिंह • *अनु. डॉ. राजेन्द्र कुमार*
- अजमेर का राजस्थान में विलय : एक समग्र अध्ययन 255
  - *डॉ. विधि शर्मा*
- जयपुर रियासत के खालसा क्षेत्रों में संचालित ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का ऐतिहासिक अध्ययन (1937-1942 ई.) 279
  - *डॉ. रश्मि मीना*

- चिकित्सक एवं रोगी के मध्य सम्बन्ध :आवश्यकता एवं चुनौतियाँ 291
  - *डॉ. क्रेसेन्सिया बक्सला*

- गाँधी की बुनियादी शिक्षा योजना : वर्तमान में प्रासंगिकता एवं सम्भावनाएँ 301
  - *डॉ. कैलाश चन्द गुर्जर*

- पर्यावरण-संरक्षण (प्राचीन एवं आधुनिक चिन्तन के सन्दर्भ में) 309
  - *डॉ. प्रतिमा गोंड*

- महात्मा गांधी के प्राकृतिक चिकित्सा संबंधी विचार छत्तीसगढ़ के वर्तमान संदर्भ में 324
  - *डॉ. अंकिता कमल पुरोहित*

- महामारी (कोविड-19) में पुलिस की सामाजिक भूमिका 338
  - *नरेश कुमार पटेल*

- नागौर के जिलिया गांव के जैन मंदिर के भित्ति चित्र 355
  - *डॉ. पवन कुमार जाँगिड़*

- छत्तीसगढ़ी कृषि-आधारित संस्कृति सन्दर्भ नरवा-गरूवा-घुरूवा-बाड़ी 369
  - *डॉ. हितेश कुमार शंकरलाल कुँजाम*

- बीकानेर का सिस्टाईन चैपल–मदन मोहन मन्दिर 380
  - *डॉ. राकेश कुमार किराड़ू*

समीक्षा

- नर्मदा प्रसाद उपाध्याय–बनीठनी : प्रेमकथा से चित्रकला तक 397
  - *बी.एल. भादानी*

The Critical Evaluation of the Some Sociological Traits and their Role in the Making of *Varṇa*/Caste Hierarchy During the Later *Vedic* Periods

• **Sheo Dutt**

Abstract :

The *Vedic* society has been studied by a large number of scholars from various disciplines and professions, such as Indologists, historians, archaeologists, anthropologists, sociologists, economists, scholars of Indian religion and even reformers and freedom fighters of India. Our study on the *Vedic* society in general and the later *Vedic* society in particular keeps a plain evolutionary framework or construction, based on the literary texts, archaeological remains, anthropological and sociological findings.

The evolutionary theory has proved its worthiness in projecting the objective and scientific analysis of the historical past. We have briefly attempted to examine and evaluate some significant findings of the salient sociological evolutionary traits which preceded the emergence of *Varṇa*/caste system in the *Vedic* society. We have also tried to evaluate their role in making or influencing the *Varṇa* structure during the period under our consideration. Some of these sociological traits, such as band system, tribal chiefdom, marriage and kinship structure and lineage system etc., have been briefly discussed in this paper. We have also tried to examine some of the fundamentals of the sociological theory such as base and superstructure. All these have been discussed in specific context of the emergence of *Varṇa* system in the later-*Vedic* period.

The Critical Evaluation of the Some Sociological Traits and their Role in the Making of *Varṇa*/ Caste Hierarchy During the Later *Vedic* Periods

We have briefly attempted to examine and evaluate some significant findings of the salient sociological traits which preceded the emergence of *varṇa*/caste system in the *Vedic* society. The study of these traits are necessary for the proper and comprehensive understanding of the *varṇa* hierarchy which emerged and was developed as an ideological tool of *brahmanical* sociology. It has been postulated[1] that the first trait of this anthropological evolution is band system. This is a collection or group of people for hunting or other similar primitive food- gathering activities, but not necessarily bound by ties of kinship. In the next stage of social evolution we come across tribe[2]–whatever may be its meaning- although for many anthropologists the element of kinship is most important in it.[3] The stage of tribal chiefdom was developed from the 'tribe'[4], and finally we have varṇa divided[5], state-based and class based society. Anthropologists[6] are of the opinion that when people take to food-gathering activities they form strong combinations strengthened by ties of marriage and kinship, claiming descent from some real or hypothetical ancestor. It is said[7] that they may develop their own language or may speak some common language. Such large combinations are called 'tribe', which could be divided into clans, and clans into lineages. Explaining some salient traits of a tribal society R.S. Sharm[8] states that "a tribe multiplied internally with the onset of food production and externally through successful wars, which enabled it to incorporate conquered tribes into its ranks via marriage or initiation ceremonies. Rituals and reciprocal gifts regulated tribal societies and served to ensure fair distribution and consequent cohesion by overcoming inequalities caused by the growing wealth of chiefs and great joint families." Sharma[9] argues that in most tribal societies land was held by the tribe or the clan in common, and the feature is considered to be the basis of tribal/ kinship formations. According to Sharma[10] the use of term *gotra* in the sense of 'clan' in India would suggest that pastoral activities also led to tribal/kinship formations. He further argues that "ethnographic and historical studies suggest several stages and variations in the development of tribal society. We know of chief less tribes and of clans/ lineages with and without distinctions between the junior and senior line of descendants. In some tribal distributive systems elders get preferential shares, in others elders and youngers alike receive

equal shares." R.S. Sharma (on the basis of such anthropological/sociological researches and his own prolific scholarship and insight into the vast corpus of Sanskrit texts) has come to the conclusion that the Ṛgvedic society was predominantly a tribal society.[11] He has deeply examined the terms such as *jana*, *viś*, *gaṇ*, *grāma*, *gṛha*, *kula*, *vrāta, śardha*, etc., which according to him stand for kin-based tribal units. Thus, R.S. Sharma has preferably used the term 'tribe' as sociological and anthropological tools for the study of the stages of social evolution. Though he has emphasized that the element of kinship in tribal phase of evolution is most important trait.

But Romila Thapar prefers the 'Lineage' model for her investigations of the stages of social evolution.[12] According to her "the use of the term 'lineage society' is preferable to tribal society which is what has been used in the past for the *Ṛgvedic* society. Tribal society in the Indian context is ambiguous and includes a range of cultures from stone-age hunters and gatherers to peasant cultivators. Lineage society as defined here narrows the connotation somewhat and is perhaps more precise."[13] She further argues that this term also stresses the centrality of lineage in all its aspects which is of the essence in such a society, particularly in relation to power and access to resources, whereas 'tribe' remains vague on this point. For strengthening her preference to use the term lineage she gives logical reason that there are very few references to individual chiefs in the *vedic* sources and more frequent ones to lineages, thus indicating that power was still based on legitimacy through lineage. Explaining further the justification of the term lineage she states[14] that "the investigation of pre-state forms has been much debated in recent decades. Differences between bands, ranked societies, stratified societies, chiefships and state systems have been elaborated upon as for instance in the writings of Morton Fried. To this may be added the perceptive work of Polanyi[15] which, even if unacceptable as a total paradigm, does nevertheless provide some insight which are very pertinent to the analysis of early historical societies."[16] She also refers to the concept of the 'lineage mode of production' proposed by Emmanuel Terray and Pierre-Philippe Rey[17], and commented upon by Maurice Godelier and Claude Meillesoux.[18] She also is of the opinion that the data gathered from ancient Polynessia[19] also provides a good research material for the useful study of the lineage system. Thapar believes that the arguments and logical explanations given by the above studies may be proved helpful in understanding the process of state formation

in northern India in the mid-first millennium B.C.[20] Though she emphasizes that this does not mean that she is in agreement with the theories put forward by these studies and in fact on some points there is not only divergence but disagreement as well. Nevertheless, she is of the considered opinion that the salient characteristic of the lineage system discussed in the above mentioned studies are found in almost similar in the *Vedic* society and may be used for the proper understanding of the stratification and lineage system as reflected in the *Vedic* texts.

It has been argued[21] that in the Indian context lineage society provided foundational base to *varṇa/* caste structure. The salient features of lineage system such as kinship and marriage rules are significant pre-condition to *varṇa/* caste structure. It has been further argued[22] that "When differing forms or stratification begin to emerge an attempt is made through the *varṇa* framework to draw them together into a holistic theory of social functioning. In the later stage the occupational groups employed in production, the *śūdras*, are added on as a fourth category but denied a lineage form, so that their exclusion is made explicit. At the same time their origin as a group is determined by occupation and locality and this marks a major difference in the varṇa system itself.[23] It has been further postulated[24] that when lineage-based societies is transformed into a complex/ stratified society leading to state formation, the socio-economic changes occurring in the transition are also reflected in the structure of *varṇa/* caste with the emergence of what is seemingly a duality between ritual status. The continuance of *varṇa* system carries the strong element of lineage society and its dominant characteristic ritual status. It is argued that the latter becomes the survival of the lineage system and is most explicitly expressed on ritual occasions. Economic status emerged from new changes and has to be accmodated to ritual status. The later is fortified in those situations where the two statuses happen together by chance.[25] It has been rightly stated[26] that in the evolutionary phase in kin-based, tribal/ lineage society was superceded by state-based and class-based society. But it has been also argued that although it is possible to pinpoint in this process precise turning point marked by time and place, it is difficult to find clear-cut or terminal points for one type of society replaced by another type of society.[27] Indestructible elements of survivals as we have discussed in the case of lineage system continuing in the varṇa/ caste or even in the stratified state-based society are discernible in later societies, and for this

anthropological happening various terms such as 'continuum', 'overlap', interlocking (often in archaeological context)', etc., are used. It has been argued that the study of change, divergence, disjuncture and discontinuity is probably more imperative. It is, therefore, difficult to imagine unpunctured or unpierced progression. It is suggested[28] that whenever evidence indicates to more than one type of society in the same period and the same region, the historian is required to emphasize the paramount element which distinguishes or differentiates emerging social construction from the disintegrating or putrefying one.

Summarizing critically the view of Romila Thapar, B.P. Sahu states[29] that she "introduced the idea of lineage society and other anthropological categories to provide our understanding of *Ṛgvedic* society a certain specificity as against the more amorphous term 'tribe' and to address the issue of the origin of *varṇas,* the rupture of lineage society, and the spread of peasant economy. Instead of the iron-productivity- surplus-complex society-state straight line argument.According to Sahu[30] "Thapar chooses to locate the state in the complex interplay of varied forces. It is argued that the state arises out of, and introduces a series of, interrelated changes at many levels. Surplus is increasingly seen as being conditioned by socio-political realities, and not just technologically determined. Similarly, the appropriate channelization of surplus is also seen to be important. More importantly, the work focused on the uneven patterns of development in northern India. The mid-Ganga plains (Kosala and Magadha), owing to the configuration of several historico- geographical advantages and the absence of the limitations of the prestation economy of the upper Ganga plains, moved ahead as compared to other regions. Given their inherent limitations, states in the upper Ganga plains and the Gaṇa-samgha polities lagged behind."[31] But for some other historians[32] the mode of production occupies the pivotal position in interpreting the stages of social formation. They argue that it is better to be called as mechanical in the age of the machine than to give undue weight to the resultant ideology. It has been argued[33] that ideology should be understood better as a part of superstructure. According to R.S. Sharma "although the terms 'base' and 'superstructure' are metaphors adopted from building construction processes, they have come to acquire special meaning in the Marxist universe of discourse."[34] For the propounder of the theory of 'iron-productivity–surplus-complex-society-state' formation means "factors of production

including the ecological environment which conditions human activities. Superstructure means social and political arrangements that are based on these factors, and serve to maintain, modify or alter the mode of production. Artistic, literary, ritualistic, philosophical etc., are considered to be the ultimate products of the 'base'." But it is conceded that eventually they may help widen, restrict or even replace the base.[35] It is also conceded that not everything can be explained in the straight framework of 'base-superstructure' theory.[36] For example, the development of language can be explained in materialist terms but its origin remains puzzling. This according to the contender of the 'base-superstructure' theory creates what has been termed 'extra-superstructual' problems.[37] Nevertheless, the 'base-superstructure' theory is still considered useful in critically analysis the stages of social formations in history.[38] In a nutshell this theory leads to a major Marxist theory that 'no production, no history'.[38] Applying the principles of social surplus, the problem of appropriation and distribution of the surplus product[39] we have asked some pertinent questions such ashow did the voluntary gift system of the tribal society transform into the form of tax, tribute, trade, usury and bribery in the class-divided society? How did the *brāhmaṇas* come to monopolize the gifts unilaterally? Was the social surplus appropriated in the later period of our investigation through the *brāhmanical* sociological mechanism of *varṇa* system?

From the foregoing investigation of the origin of *varṇa* hierarchy we have found the paucity of references to *varṇa* categories in the *Ṛgvedic* text. The evidence suggests that the *varṇa* system had not acquired the social significance during the early *Vedic* period. But in contrast to this *varṇa* hierarchy and its defining issue emerged as a major problem in the later *Vedic* times. This was faced right on the front of its origin itself, which often justified the specific features of the hierarchy and also on the front of regulating relationship amongst members of various *varṇas*.

References

1. R.S. Sharma, *Material Culture and Social Formations in Ancient India,* First Published in 1983 by Macmillan, New Delhi (Hereforth abbreviated as MCSF).
2. *Ibid*., p. 6.
3. *Ibid*., see also S.C. Humphreys' *Anthropology and the Greeks*, London, 1978, p. 70.

4. R.S. Sharma, *MCSF*., op. cit., p. 40.
5. *Ibid*.
6. S.C. Humphrey's *Anthropology and the Greeks*, p. 71.
7. R.S. Sharma, *MCSF*, op. cit., Introduction, p. xx.
8. *Ibid*.
9. *Ibid*.
10. *Ibid*., See also Humphreys, op. cit., pp. 73-4.
11. *Ibid*., p. 48.
12. Romila Thapar, *From Lineage to State*, Oxford University Press, Bombay, 1984; p. 18.
13. *Ibid*.
14. *Ibid*. p. 9., see also K. Polanyi, *Dahomey and the Slave Trade,* Seattle, 1966; K. Polyani, et. Al., *Trade and Market in the Early Empires*, Glencoe, 1957; K. Polanyi, *The Great Transformations*, Boston, 1957.
15. K. Polanyi, *The Great Transformation*, op. cit., pp. 48-9.
16. Romila Thapar, *From Lineage to State*, op. cit. p. 9.
17. E. Terray, *Marxism and 'Primitive' Societies*, New York, 1972; M. Bloch (ed.) Marxist Analysis and Social Anthropology, *ASA Studies* 2, London, 1975; P.P. Rey, 'Class contradiction in Lineage Societies', in *Critique of Anthropology,* 1979, 4, nos. 13 & 14, pp. 41-60; 'The Leneage Mode of Production', Critique of Anthropology, Spring, 1975, no.3., pp. 27-79.
18. M. Godelier, 'The Appropriation of Nature', *Perspectives in Marxist Anthropology,* Cambridge, 1977; c. Meillassoux, ' Historical Modalities of the Exploitation and over- exploitation of Labour', in *Critique of Anthropology,* Summer, 1979, Vol. 4, nos. 13 &14, pp. 7-16. 'From Reproduction to Production', *Economy and Society*, 1972, Vol. 1, no. 1, pp. 93-105.
19. See, I. Goldman, *Ancient Polynesian Society*, Chicago, 1970.
20. Romila Thapar, From *Lineage to State*, op. cit., p. 10.
21. *Ibid*., p. 18.
22. *Ibid*.
23. *Ibid*.
24. *Ibid*., pp. 18-19; see also Andre Be´teille, 'on the concept of tribe', *International Social Science Journal*, 1980, Vol. XXXII, no. 4, pp. 825-8; M. Fried, *The Evolution of Political Society*, pp. 154-74.

25. Romila Thapar, *op. cit*., p. 19.
26. R.S. Sharma, *MCSF*., op. cit., p. 5.
27. *Ibid*; see also Keith Hopkins, *States and Conquerors*, Cambridge, 1978; pp. 19-20; see also SuviraJaiswal, 'Caste in the Socio-Economic Framework of Early India', Presidential addresses, Section I, *Indian History Congress*, 38th Session, Bhubneshwar, 1977, pp. 5-6.
28. R.S. Sharma, *MCSF*., op. cit., p. 5; see also *Cooking the World: Ritual and Thought in Ancient India* by Charles Malamound and Translated by David White, Delhi: Oxford University Press, 1996, pp. VIII, pp. 354.
29. B.P. Sahu and KesavanVeluthat ed. *History and Theory*, Oriental Blackswan, New Delhi, 2019; pp. 49-50.
30. See B.P. Sahu, *Iron and Social Change in Early India* (New Delhi: Oxford University Press, 2006), Editor's Introduction, pp. 1-31.
31. B.P. Sahu (ed.) *History and Theory*, op. cit., p. 50.
32. R.S. Sharma, *MCSF*., op. cit., p. 9, Sharma laments that those who investigate on these lines are dubbed as mechanical materialists. He continuously holds on to the theory of the 'iron- productivity-surplus-complex society-state' formation. This is inherently integrated with his interpretation of the mode of production theory. For him the mode of production is the foundation of the 'structure' while social unit, religion, ideology, art and literature, polity, etc., are placed in the realm of 'superstructure'. Though Sharma argues that some elements of 'superstructure' viz., religion, art and ideology etc., assume the character of a materialistic force and continue to maintain their grip over the minds of the people even when the conditions which have given rise to them have sank into oblivion. But he believes that, just as a rootless tree cannot retain its green leaves for ever, so also the element of 'superstructure' without a materialistic framework cannot survive for a long; see R.S. Sharma, *MCSF*., op. cit., p. 9. See also D.D. kosambi, *The Culture and Civilization of Ancient India,*Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi, 1997; p. 11.
33. R.S. Sharma, *MCSF*., loc. Cit.
34. *Ibid., Introduction*, XVII.
35. *Ibid.*
36. *Ibid.*

37. Ibid. see also R.S. Sharma, *Aspects of Political Ideas and Institutions in Ancient India*, third edition (Delhi: MotilalBanarsidass, 1991), ch.1; R.S. Sharma, *State and Varṇa Formation*, op. cit. see also R.S. Sharma; *MCSF*., op. cit., Introduction, p. XIX; Sharma states that holding on to the theory of base-superstructure is sometimes called vulgar Marxism, Mechanical materialism, technological determinism, etc. but Sharma argues that in the situation of comprehending realities, creative and effective role of historical materialism 'vulgar' materialism will be of far greater use. He concludes that after all the term 'vulgar' has something to do with the masses and not with the elite classes some members of which hold on to historical materialism more out of fashion than out of serious and resolute conviction.
38. D.D. Kosambi, *Introduction to the Study of Indian History*, Popular Prakashan, Bombay, 1975; ch. 9-10.
39. R.S. Sharma, *MCSF*., op. cit., p. 15; According to Sharma Ancient India's juridico-legal device for the distribution of the social surplus lay in the ritual-based *varṇa* just as that of Greece and Rome lay in the mechanism of citizenship. The varying ritual status bestowed on to the brāhmaṇas and *kṣtriyas*, several socio-economic, political and ideological privileges etc., enabled them to claim taxes from the *vaiśyas* and services from the *Śūdras*; see also J.C. Heesterman, *The Inner Conflict of Tradition: Essays in Indian Ritual, Kingship and Society* (New Delhi: University of Chicago Press, 1985).

Sheo Dutt
Flat No. 1501
Tower-3
Star Court Jaypee Greens
Greater Noida Up

❑❑❑

Contextualising Everyday Life of Monks in a Monastery: Paharpur

• **Dr. Priyam Barooah**

The Buddhist stupa-and-monastery complex of Paharpur which can be approached from Jaipurhat in the Rajshahi-Bogura area of modern Bangladesh was established by the second king of the Pala dynasty, Dharmapala (C.770-810 AD). Jaipurhat which is essentially a market town lies about 9 kilometers to the northwest of the site. Paharpur stands out among the Buddhist ruins of ancient Bengal and is the largest single stupa-cum-monastery of its type, considerably larger than even the SalbanBihara of Mainamati. (However, as a Buddhist complex Mainamati is much larger because there are several stupa and monastery ruins there.) For its architectural magnificence and artistic wealth, the scale of its monastery, its association with Dharmapaladeva of the Pala dynasty, and the rich array of names of its Buddhist monks, Paharpur will always have a special place in the history of Bengal.

The paradigm of explanation revolves round the need to understand the structural domains of the historical reality as it evolved over a long period of time. The work will work towards closer links to understand the notions of time in history which is many stranded and contradictory at times, which make up not only the substance of the past, but the very fabric of the social life. The everyday life is constituted of the various constantly repetitive details and recurring facts which move in a gradual process to become a structure over a long period of time to become an 'observable reality'.

The familiarization to the process which accords primacy to identifying and analysing the 'working of and the transformation within a certain number of structures binding together apparently heterogeneous facts, primacy over the classification of within

temporal series of data which is homogenous or reduced to homogeneity' involves thus a 'synchronic' rather than a 'diachronic' reading of history.

METHODOLOGY AND THEORY:

Notion or the idea of 'everyday life' is quite less precise and more complicated and ambiguous than it appears to be. It may be so as there are different connotations of the 'everyday life' along with the categories with which it is constituted and described. Despite less of theoretical uniformities, the historical writings on this particular concept carry one glaring commonality i.e. 'a concern with the world of ordinary experience (as opposed to the society in abstract) as their point of departure, together with an attempt to view daily life e as problematic, in their sense of showing that behaviour or nature which are taken for granted in one society and are dismissed as self-evidently absurd in another'. The idea of the history of 'everyday life', the routine or the ordinary was taken up by the historians as a matter of serious academic engagement from the beginning of the first half of the 20th Century, in the sense of becoming a focal interest as a way of encompassing every possible factor of human experience into an increasingly abstract social theory and social history. Concepts relating to it such as "everyday culture," "everyday knowledge," and "everyday thought" captured the imagination of various social scientists. The history of the idea of "practices" became central to the study of the everyday or the routine, which in its turn also involved specially the "rules" or conventions underlying or directing the everyday life. Linked with this concept of practices is also the idea of 'tactics' which will underlie man's effort to obtain what one wants within the limited framework of the rules or by finding ways round them.

The Annals historians also assumed a departure from the traditional historical approaches and contend that history can not be limited to a simple recounting of the conscious human actions rather has to be understood in terms of the forces and the material conditions and the forces that underlie human actions and behaviour. Braudel contended that the approach to history should be synthesizing data from various disciplines, especially economics in order to provide a broader view of history and human societies over time. However

this idea was first conceived by both Marc Bloch and Lucien Fevre. Fernand Braudel[1] produced his ambitious work (1960s) involving a comparative study of material life in the early modern world, viewed from the perspective of the routine or the everyday life in Europe. This the present work focuses on a methodology which will emphasize on the process of delineation from the centralities of an event centric history.Thus the task involves a shift in the paradigm to relate the micro to the macro formations and processes. The marginalization of the quotidian or the 'everyday life' could be due to the common, repetitive, overtly familiar and trivial nature of the facts and events. 'This constant impression of familiarity makes us think that we know them, their outlines are defined for us, and that they see themselves as having those same outlines…But the familiar is not necessarily known' and the 'seen but unnoticed'.[2] Thus the 'everyday' is conceived uncritically as the natural and the normal. Generally such beliefs are produced by uncritical common assumptions and universal rules of inter-personal conduct, wherein the individuals are perceived to have internalized the roles and the behavioural norms which are socially set and facilitated and enforced through the hegemony of culture and power.

Everyday life experiences in a monastery would be definitely different from that of the outside world. Archaeological findings in these monastic sites put fascinating light on the everyday life of the monks in the monasteries. The findings of articles of everyday use such as oil lamps, reading and writing materials help immensely in configuring everyday life in the monasteries. The monastic cells meant for the residence of the monks and the rooms meant for kitchens and dining hall and the bathing arrangements in tanks for the monks in the same site put interesting light on the life in the monastic establishment in Paharpur. In Mainamati also cells meant for the residence of the monks have been found. The terracotta plaques adorning the walls of these monasteries depict vibrant themes of everyday human experiences.

The ruins of the site were recorded in the early 19th century and subsequently visited by a number of scholars including Alexander Cunningham. The first excavations took place in February and March 1923 under the direction of D.R. Bhandarkarty. The work was resumed in 1925—26 under R.D. Banerjee of the Archaeological

Survey of India. From 1926-27 to 1933-34 there were excavations every year, and with the exceptions of the 1930—31 and 1931—32 seasons when the excavations were directed by G.C. Chandra, the responsibility of the Paharpur excavations lay with K. N. Dikshit.

The Paharpur complex has three major components: the central shrine, cruciform in plan and raised on two terraces above the basement with a high and hollow central shaft forming the crowning tower or shikhara; 177 monastic cells set along the inner side of the four compound walls pierced by a main gateway on the north; and a temple dedicated to the goddess Tara, located about 366 metres to the east of the monastery, its mound locally known as Satya-PirerBhita. In addition, there are remnants of miscellaneous structures, some inside the monastic courtyard. The central shrine and the associated monastery form a single architectural unit, no doubt products of a unified design.[3]

The central shrine measures approximately 112 metres north to south and 96 metres east to west. The quadrangle, in the approximate centre of which the shrine is placed, is about 280 metres north to south and about 279 metres east to west. The extant height of the shrine is about 22 metres, with three "terraces", the lowest being the surface of the basement itself. The basement is decorated by a lower row of stone reliefs and an upper row of terracotta reliefs… This temple plan of Paharpur, dated to the last quarter of the 8th century CE, is most likely to have influenced the temple plans of contemporary and later Burma, Java, and Cambodia.[4]

RELIEFS OF THE MAIN SHRINE AND IMAGES:

Sixty-three stone sculptures, which have been found along the lower part of the side walls of the basement, are stylistically earlier than the Pala period and were possibly acquired from neighbouring ruins. They mostly represent Hindu gods and goddesses, especially Krishna. The presence of Hindu themes is not surprising in a Buddhist monument of the 8th century CE in eastern India, because by this time there was a considerable inter-mixing of deities from both pantheons. Among their themes one notes a random distribution of both Buddhist and Brahmanical deities, which is hardly an unusual thing at such sites. There was no place set apart for either Buddhist or Brahmanical gods. The Brahmanical dieties

found here are Shiva, Brahma, Vishnu, and Ganesha, with various forms of Shiva dominating. The Buddha, Bodhisattva Padmapani, Tara, and Manjushri are the Buddhist religious figures represented. Among the semi-divine themes are gandharvas, kirtimukhas, nagas, and composite animal/human figures.[5]

The terracottas of the upper registers around the basement and the two upper terraces typify the Pala style of terracotta art. About 2,000 of them were found in situ and about 800 in excavations. Paharpurterracottas have a special character because they primarily depict scenes from daily life sculpted with great briskness and gaiety. These were cast in moulds in square/ rectangular plaques, fired to the point of being reddish, and then set in single or double rows around the sides of the basement and the terraces. They were not meant to be observed singly or in isolation. Arranged in rows, their visual impact suggested a flow of life which was vivid and crowded. Folktales were depicted on a number of plaques, including the one showing a monkey coming to grief because he pulled out the wedge from a split beam. Sabara or vaguely "tribal" males and females in various postures and dresses received a lot of attention from the Paharpur terracotta artists, and some Sabara women are shown wearing a skirt of leaves. There are many other types of images: ordinary men and women going about their daily lives, mendicants, warriors wearing chain-armour, buffalo, deer, elephant,monkey, lion, bear, rhinoceros, hare, tortoise, mongoose, duck, etc. Fish, full-blown lotus, Buddhist symbols like the pillar or wheel of law, and such other miscellaneous items complete the list of terracotta motifs from this site. All the human figures and some of the birds and animals too are infused with a sense of movement.[6]

The 177 monastic cells were arranged along the 2.4-2.7-metre-wide inner verandah. These cells measured on average 4.2 metres in length with almost the same width. The distribution of the cells was as follows: 45 cells in the northern wing and 44 cells each in the three other wings, with a central block of cells in each wing dividing it into two sections. In the eastern section of the northern side was a subsidiary entrance, also suggested by a narrow passage across the centre of the eastern side. A flight of steps went from the inner verandah to the courtyard from the middle of each side. This verandah was pillared and fronted by a railing. The monastic cells lay on the inner side of a 4.9-metre-thick and 3.6-4.7-metre-high

boundary wall. The main gateway on the north was preceded by a number of structures, the remains of which suggest a hall and two votive stupas. A staircase rose to a large and pillared entrance hall (about 14.3x15.2 metres) with its northern side open. Several cells adjoining the eastern side of the entrance hall served the function of "office-rooms' and "strongrooms" of the monastery. The entrance hall on the outside led to a smaller and inner entrance hall across a stone step and a stone threshold, and the groove-marks on the outer walls of the inner hall suggest that there could have been a door there which was closed by placing a wooden log across it. The inner hall led to a verandah from which steps descended to the courtyard in front of the main temple. The courtyard contained, among other miscellaneous minor structures, the refectory and the kitchen of the monastery. The refectory was a hall more than 36 metres long, with a thatch/timber roof. The kitchen was a large hall encircled by a narrow corridor. A 45-metre-long burnt-brick drain ran between the refectory and the kitchen. Somewhere in the general area, the ruins of a stone-lined and brickpaved bathing*ghat* have been found. This shows that the Paharpur monks used to bathe in tanks, a common practice till today for a majority of people in the Indian countryside.[7]

The temple structure dedicated to the Buddhist goddess Tara dating from the 11th century was located a little outside the monastery. It has been identified on the basis of the discovery of a number of terracotta plaques showing an eight-handed goddess and the Buddhist creed. The site was about 76 metres long and 42.6 to 57 metres wide, with a wall around it.[8]

However, nothing in Paharpur compares for sheer size with a huge stucco image of Buddha discovered by chance in the stupa sanctum from a mound called Itakhola Mura at Mainamati. The Buddha is shown seated cross-legged (*vajraparyankasana*) in the earth-touching gesture (*bhumisparsha mudra*). Unfortunately the head of this unique stucco piece is missing, and its dimensions are not known to us. The humid climate of this area will soon destroy this image, unless immediate measures are taken by the Archaeological Department to preserve it.[9]

TERRACOTTA PLAQUES DEPICTING RITUAL BELIEFS:

Terracotta art from Bengal depict various aspects of the contemporary religious and ritual aspects of everyday life. It has end number of such plaques which depict various divinities whom

the contemporary people might have had worshipped. Of such numerous plaques only a few have been selected here for the purpose of the work. Of the very common motifs Sri, the goddess of prosperity, Kubera, Surya, the sun god etc are mention worthy.

SRI IN POTTERY: A fragment of a moulded pot depicting a gana like figure in the water surrounded by flowers and accompanied by a female figure is probably Sri, the goddess of prosperity, who is frequently associated with lotus – the flower symbolizing life, fertility and fortune. It has been discovered from Chandraketugarh and is datable to 1st century BC – 3rd century AD.[10]

SURYA: The wheeled figure depicts a haloed figure on his chariot drawn by horse and accompanied by his entourage. The chariot is depicted trampling over a grotesque demon. Like other wheeled figures the present specimen too was provided with an axle to which the wheels were attached. Much of the iconographic attributes – the haloed figure, the accompanied figure, the horse drawn chariot, and the malformed demon also appear at Bhaja (Vihara No. 10), Maharastra. The figure has been previously identified as Surya, the sun god, on the basis. It has been discovered from Chandraketugarh and is datable to 1st – 3rd centuries AD.[11] Ibid. p.175.

Thus, the material remains of early Bengal can help us immensely in constructing the seemingly abstract notion of everyday life history. Despite conflicting possibilities, the rational structure of the concept demands its construction against decided cultural wholes, though often everyday life is theoretically defined as necessarily tending towards broader structures.

References

1 Fernand Braudel, *The Structures of Everyday Life*, London, Collins, 1981. Translation of Les structures du quotidien. A pioneering study of material culture in early modern Europe, first published in 1967.

2 Jacques Le Goff, “Is politics the Backbone of History?” in *Historical Studies Today*, ed. Felix.

3 Dilip K. Chakrabarti, ‘Paharpur’ in Pratapditya Pal and Enamul Haque, eds. New Delhi: Marg Publication, 2003, p. 53.

4 Ibid.

5. Ibid.
6. Dilip K. Chakrabarti, 'Paharpur', p. 55.
7. Ibid., pp.-53-54, 62.
8. Ibid., p. 54.
9. Gouriswar Bhattacharya, 'Mainamati, City on the Red hills' in Pratapditya Pal and Enamul Haque eds., *Bengal Sites and Sights, D*elhi: Marg Publication, 2003,p. 74.
10. GautamSengupta, et al, ed, Eloquent Earth: Early Terracottas in the State Archaeological Museum, Kolkata : Directorate of Archaeology and Museum, Government of West Bengal in collaboration with Centre for Archaeological Studies and Training Eastern India, 2007, p. 353.
11. Ibid. p.175.

Dr. Priyam Barooah
Assistant Professor
Department of History
ARSD College, University of DELHI

❑❑❑

Reading Vatsyayana: Society, Patronage, Art, and Eroticism

• **Dr. Monika Saxena**

Abstract

Vatsyayana is best known for his multifaceted contribution to the field of art and culture through his work the *Kamasutra*. In the text he delves into various aspects of the socio-cultural ethos of early Indian society.This article examines the philosophy behind the composition of the *Kamasutra* by placing it within the framework of social norms, aesthetics, intellectual pursuits and achievements, religious rituals, civic values and practices, while also bearing in mind the political and economic background.It is the author's contention that the *Kamasutra* is concerned not only with love and sexuality as integral aspects of life and erotic art, but that it also provides very significant insights into early Indian society, its economic base, and the multiplicity of its cultural traditions.

Focussed primarily on the *Kamasutra*, the article analyses the patron-client relationship, different categories of women in the trade of prostitution, the highest being the *ganika*. It also dwells on the lifestyle of the *nagarakas*, the cultured male citizens, who unabashedly opened the doors of elite intellectual, literary, and artistic gatherings to *ganikas*. Detailed study of the text also reveals the practice of giving gifts and the way patronage functioned at various levels. The central argument is that the *Kamasutra* is a philosophical discourse—much beyond erotica—that should be read as a text about social life in general and the place that sections of women acquired in the public arena and other urban spaces.

Keywords : Vatsyayana, *Kamasutra*, courtesans, *nagaraka*, art, patronage, *gosthis*

Introduction

The literary tradition shown in Vatsyayana's *Kamasutra* reflects the cultural ethos of the life in cities and commercial towns of early India. Eroticism was not a new concept in Indian literary traditions. Indian art and literature have never shied away from depicting love and feminine beauty in a free and open manner.[1] It must be emphasized that such extensive erotic portrayals in India could not be the result of the whims and caprices of a few individuals; rather they must be a reflection of the social realities of the time. The early Indian tradition, which is also known for its spiritual ethos, has been found to have influenced erotic science. This is one of the reasons why vivid depictions of sensual themes could be seen on temple walls. The temples had a unique history in which depictions of sensual pleasures (*kama*) were not incompatible with the concepts of *dharma* and *artha*. From the earliest times, Indian society considered the fulfillment of four purposes as the householder's basic social and religious duties—*dharma*, *arth*, *kama*, and *moksha*. So carrying out religious rituals and ceremonies, earning an honourable living by engaging in some form of economic activity, enjoying all kinds of sensual pleasures, and finally leaving everything behind to seek God or the ultimate goal of life were what made a complete life.

The *Kamasutra* begins with a salutation to *dharma* (moral duty), *artha* (material wealth), and *kama* (desire and sensual pleasures). In the absence of *kama*, one does not strive for *artha*, *dharma*, or anything else; as a result, *kama* is paramount. Kama is split into two types: (a) *samanya* and (b) *vishesha*. The *samanya* category covers the emotional connect, whereas the *vishesha* refers to sense organs and their functioning.[2] The concepts of *dharma*, *artha*, *kama* and *moksha* together gave meaning to human life and were known as the *purusharthas*.[3] This view of life may be seen in today's increasingly complex world as a model for comprehending the importance of the fulfilment of human desire as well as ambition. In situations of conflicts between the first three aims, the *Kamasutra* supports the point of view of *dharma* literature and proclaims that *dharma* and *artha* are more important, but with the qualification that, for kings and prostitutes, *artha* comes first.

Temporality and Morphological Structure

Very little is known about Vatsyayana himself.[4] In the *Kamasutra*, Vatsyayana has shown that Prajapati, creator of mankind, was the first to provide lessons on love and to guide men and women about consecrating their lives to *dharma*, *artha* and *kama*.[5]

To understand Vatsyayana's motivation for composing the *Kamasutra,* a brief look at the historical background of the work is useful. The original work known as the *Kamasutra*s, written by Nandi, was very lengthy and was reprinted in 500 chapters by Shvetaketu, the son of Uddalaka Aruni, a Vedic sage.[6] *Babhravya* of Panchala later distilled the book *Babhravyakarika* into 150 chapters organised under seven headings—meditation, love-making, courtship, marriage, other men's wives, courtesans, and the aphrodisiacs. It is important to note that Babhravya appears to have flourished in the Panchala region, which has been the part of India where the science of erotica flourished specifically.

Two major concerns inspired Vatsyayana to compose his text. Firstly, the knowledge contained in Nandi's *Kamasutras* had undergone many abridgements at the hands of various writers, and secondly, for common people, Babhravya's work was exceedingly difficult to understand. This history clearly establishes the recognition given in ancient India to *kama*, the fulfilment of desire, as an integral part of a full life. It also indicates that interest in the topic as a subject of study revived from time to time and the need felt for dissemination of the knowledge gained.

Vatsyayana writes about different geographic regions, their customs and practices.[7] He refers to the *nagariki* women of Pataliputra, who, like the women of the Gauda region possessed the knowledge of the sixty-four arts.[8] From these descriptions, it can be ascertained that the *Kamasutra* originated in northern India. The period in which Vatsyayana composed it is a subject of debate among historians.[9] However, on the basis of the arguments of historians the chronology of the text can be roughly placed between the third and fifth centuries CE.

The role and significance of ganikas in early India

Vatsyayana has highlighted the roles of women as members of households, as sources of pleasure as courtesans, of educated and

cultured citizens, men, as well as the activities that were associated with accomplished women. In the first *adhikarana* (chapter) he talks about the life of a *nagaraka*, numerous festivals, *nayikas*, etc. In the Samprayogika adhikarana he discusses how a bride is selected, the marriage ceremony conducted, also how her confidence was to be gained, some means of attracting a maiden without the help of agents, and so on. Bharyaadhikarana is about the married life of a young woman, her interactions with her co-wives, domestic life, and so on. In the Paradarikaadhikarana, the nature of men and women and in particular of women who could easily be won over is discussed. In the Vaishikaadhikarana, the courtesans are covered. Finally, the Aupanishadika adhikarana presents unique ways of using aphrodisiacs, mantras, and ways of increasing pleasure, among other things.[10]

In this article the focus is on *Vaishikamasdhikaranam*, the sixth chapter of the *Kamasutra*, dedicated entirely to courtesans. The background is fascinating as it seems that the *ganikas* of Pataliputra themselves commissioned a scholar named Dattaka to write a monograph.[11] He resided in the city around the middle of the fifth century BCE and had purportedly spent many years in imparting education on different art forms, *kalas*, associated with the courtesans. He authored a treatise about ‘what a courtesan ought to know’, which eventually became the basis for the *Vaishikam* chapter of the *Kamasutra*, which is one of the most important sources of information about courtesans in early India.

Vatsyayana encouraged a wide range of women to study the *Kamasutra*—princesses, daughters of ministers, courtesans, as well as married women, but with the consent of their husbands. He considered the study of sex to be so important that he implied that a person who did not know the art and skills of love would never be respected among learned men, and would never be able to fulfil the three aims of life, even if he were perfectly capable of explaining the theories and applications of other sciences. Also, one could command a prominent position among men and women in *gosthis* or assemblies merely by having a thorough knowledge of these skills.

According to Vatsyayana, there were three categories ofwomen: (i) maidens, (ii) married women who had been deserted or widowed, and (iii) courtesans. The chapter on courtesans—divided into six *adhyayas* and twelve *prakaranas*—focuses on the behaviour of an ideal courtesan who could please her clients

through a combination of good looks, artistic and social skills, as well as on methods of earning money, wealth, and other connected factors. In the final section of his observations on courtesans, Vatsyayana establishes a clear contrast between a *ganika*, who was placed in the highest rank of prostitutes, and other common prostitutes who survived by using their physical attraction and youth.

Two iconic and contrasting images have been attached to womanhood in the Indian imagination and life throughout history, and are intrinsic to attitudes even in the contemporary period: the pure, almost saintly, mother and the unrestrained and fabulous lover. In Indian art and literature, female characters were depicted as having one of two attributes: maternal affection(*vatsalya*) or sensuousness along with artistic skills (*shringara*). In a society dominated by men, women were expected to either bear and nurture their children, or to provide pleasure to men as and when called on. This clearly indicates that woman have traditionally been represented as belonging to two separate spheres—the household and the public arena.

Periods of transition in early Indian society

That early Indian society was not static and that there were periods of transition is evident from the change in the processes of social formation.[12] The period spanning the first and fifth centuries CE, witnessed substantial socio-economic developments, a great religious efflorescence, and a political kaleidoscope marked by foreign invasions that had a profound impact on art, eroticism and the patron-client relationship.

The first phase (100–400 CE) falls within the mature period of the second phase of urbanisation. Despite the political instability, continuing trade provided a feeling of continuity to the subcontinent. There was significant growth in the mercantile relations between India and Rome throughout the first two centuries of the Christian era. As India's contact with the world reached its zenith, the development of trade networks contributed significantly to the internal growth process. In exchange for spices, aromatics, precious and semi-precious stones, and exquisite silks, India was flooded with Roman gold and silver. As a result, the guilds and merchants became a significant element in urban life, both in terms of organising and shaping public opinion. Prosperity

also brought with it the capacity to indulge in activities beyond trading and amassing wealth. There began to appear a strong impetus towards the system of patronage, particularly in relation to the arts.[13]

Overall the enrichment of the material culture at that time seems to have brought with it a substantial shift in the perspective of the city-dwelling man, which may be said to account for a new outlook and various changes in the pattern of society. The class which Vatsyayana represented through his work, has existed in all eras and in all places where economic success enabled a section of the population to grow in terms of influence, command over others, enjoyment of the earth's bounty, and also in the appreciation of the finer things in life. As towns and cities emerged along northern India's overland trade routes, and there was an expansion of internal as well as maritime trade, courtesans are likely to have earned money from travellers, merchants, and men of many vocations.[14]

The process of urbanisation and increase in prosperity led to courtesans acquiring a particular place in Indian society. The most accomplished courtesans were adept in all sixty-four arts and men of sophisticated taste, artistic talent,and intellectual standing were drawn to them.Learning any of the arts meant that the women had to be taught, they had to be trained, they had to be given time to study and practice. The sixty-four arts were wide-ranging and included of course music, both vocal and instrumental, as well as dance, but also such subjects as the art of conversation, testing precious stones, carpentry, and architecture! The necessary outcome was that within a highly regulated patriarchal society there came up a category of women who were skilled, educated, and independently wealthy. As soon as we recognize the complexity and sophistication of the *Kamasutra*, we can see that it would be simplistic to view the text as a survey of erotica only. The way it has been read from multidimensional perspectives, is clearly evident from different sections that were written by Vatsyayana, though the focus is primarily on the *nagaraka*, courtesans and exploration of urban spaces.

The significance of the nagaraka

At the centre of city life stood the *nagaraka* (man-about-town) who may have been a trader and merchant,but he was highly

educated, cultured, and refined. The *Nagarakavrittam* describes the *nagaraka*, his recreations, amusements, luxurious lifestyle, companions, and their talent in poetry, music, and other arts.[15] The affluence of the nagaraka, or cultured citizen, was an ideal that people aspired to. In fact, it was the *nagaraka* who encouraged erotic poetry that reflected the graces as well as the artificialities of courtly life.[16]

The *Kamasutra* highlights the opulent life of the *nagaraka*, the urbanized connoisseur, expert in the affairs of the heart. The representation of erotic motifs in art, both sculptural and literary, is explained by his love of *alankara* or decoration and preoccupation with *shringara* or erotic love and sensuality.Both factors developed in the leisure afforded by the prosperity brought about in the socio-economic environment of the period. According to Vatsyayana, quite often there were large gatherings of *nagarakas* devoted to cultural activities in the residences of highly accomplished courtesans.

There is a lot to learn from the *Kamasutra* about the patronage of the arts, including dance, music, painting, literature, and architecture, by *nagarakas*, and other categories of men like merchants or *sarthavahas*, wealthy landowners, and traders. The influence of these men not only accelerated the secularisation of cultural pursuits, but it also led to courtesans emerging as significant elementsin the social and cultural life of the city.

Courtesans: Integral and earning members of society

The fifth century CE witnessed the beginning of a substantial transformation in the agricultural system with the assignment of land grants to both religious and secular assignees. The economic system, political organisation, society, language, script, religion, and intellectual life, all underwent significant changes.[17]As society changed from the fifth century CE onwards, there was an increase in the complexity of its makeup and in the use of urban spaces. The economic, social, and political power of a new class of military officers and landed aristocrats such as the *Samantas, Mahasamantas, Ranakas, Thakkuras*, and other feudal landowners grew significantly. A new feudal aristocracy was on the ascendant and the social standing of the merchant community was no longer as high as it had been in earlier times.

During the period under review, there was a greater orientation towards an extravagant aristocratic way of life. This is reflected in literary works that followed, where cultured men were not the heroes of plays, as they were in the preceding period. While Vatsyayana's *Kamasutra* revolves around the *nagarakas*, subsequent Sanskrit texts depict *bhattaputras* (officers'sons), *rajasutas* (feudal rulers), and religious acharyas as paramours and clients of courtesans. The ethos of the *nagaraka* way of life was missing.[18] This shows how geographical and spatial variations also bring out change in the attitude and the taste of patrons.

In the circumstances, it is impossible to overlook the reality that, in the patriarchal culture of the time, there was undoubtedly a bias against professional women, not only the *veshyas*, but others as well. According to Vatsyayana, there were nine types of courtesans, but they were divided into three groups: *ganika*, *rupajiva*, and *kumbhadasi*. As a result, three types of courtesans may be distinguished: (i) she who lived as one man's concubine *(Eka-parigraha)*, (ii) she who lived as more than one man's concubine *(Aneka-parigraha)*, and (iii) she who engaged in a variety of trades and was attached to none (*Aparigraha*).[19] The differences among them were evident in their social status and economic capacity.

Women from the lesser ranks, such as *rupajiva* and *kumbhadasi*, were not as accomplished as *ganikas* and could not earn as much as them. A *rupajiva* might have only earned enough to keep a house, ornaments, and utensils, as well as a number of servants. She was not skilled in the arts like the proficient courtesan, her main asset, as the name implies, was her physical allure. The *Kumbhadasi* earned enough money to be able to feed herself and had to limit her make-up to fragrances, betel leaves, and a few gilded trinkets. Vatsyayana, on the other hand, believes that the riches acquired by all three groups were not necessarily proportional to their formal social standing.[20] The wealth of courtesans was dependent on a number of circumstances, including the province they were located in, the financial situation of clients, the skills of individual women, and the nature of the people in the various provinces.[21]

High cultural status of courtesans

Courtesans were in social terms celebrities and played a significant role in the cultural life of early India. *Varayositahs*

(prostitutes) are shown assigning and dancing during celebrations in honour of the birth of children held in the houses of the rich, and even the nobility.[22] We get quite a realistic picture of the life of courtesans—their quarters, the clients visiting them, and the patronage they got from the state and the royal court—through Sanskrit plays of the time. The skilled courtesan was a common sight in urban areas and was not looked down upon. Descriptions of *gosthis*—cultural and intellectual gatherings—and other dimensions of social life depicted in the romantic literature of the time, are revealing.[23]

The *Kamasutra* shows that the training provided to courtesans was rigorous and its level of challenge as great as for other professions.[24] It was the most proficient of the courtesans who functioned as companions to aristocratic men at their cultural gatherings, rather than their legitimate wives. In this image one can discern the sharp distinction made in early Indian society between women who had a public life and status in society and the others,who were almost cloistered in the domestic sphere. It does not seem out of place to say that cultured men of the time enjoyed the company of educated, talented, and cultured women, but would not countenance any kind of social role for their mothers, daughters, and wives.

System of patronage and courtesans

Patronage, appears to be a significant element that connects many aspects of society as reading the *Kamasutra* shows.[25] Patronage of courtesans was complex and varied, being extended by such entities as the state, the lavish courts, and wealthy private individuals. The *Kamasutra* also highlights the formation of new social groupings evident in terms of changing social, religious and political structures, in addition to other characteristics, identified with a certain type of patronage for new artistic forms.

The age of Vatsyayana, which was marked by a high level of aesthetic refinement, saw significant advancements in all fields of art and literature.Yet the greater part of the *Kamasutra* revolves around a variety of pleasures and the extravagant daily routine of the *nagaraka*. In this context the *Kamasutra* seems less in conformity with the requirements of *dharma* than it claims.[26] The extensive instructions given in the *Kamasutra* about the fulfilment of desire were difficult for ordinary people to follow, because only

the *nagaraka* could afford a life of luxury and the company of pleasure women. Ujjain, Vaishali, Kaushambi, Varanasi, and Pataliputra were among major cities and commercial centres where the courtesans lived. Rich merchants spent millions on decorating their magnificent palaces and on patronizing the skilled courtesans.

The *Kamasutra's* vaishika section lists the sixty-four skills in which the *ganikas* were accomplished.[27] Moti Chandra also mentions that at times some skilled courtesans were accomplished in seventy-two arts indicating that they were even highly cultured.[28] It appears that this number was more of an exaggeration that was designed to enhance their social status. However, it is clear from the *Kamasutra* that only a woman who was accomplished, attractive, young, and had acquired the necessary artistic and social skills could become a *ganika*.

On the basis of this information,it may be inferred that women from the aristocratic levels of society like princesses or daughters of ministers, went to the accomplished courtesans to learn the sixty-four art forms. During this process, they could have created independent spaces for themselves. One can also suggest that may be some other categories of women learnt these arts, especially in order to support themselves in times of distress, for example if they were abandoned by their husbands or widowed and could use their training and skills to be self-reliant.[29] The fact that these arts were put to such use in unusual and extraordinary times clearly demonstrates that there was no prejudice against women learning these arts.

A married woman who had to run a home could not match the artistic and literary achievements of the skilled courtesan, nor were they encouraged to do so.Women from well-to-do households ultimately ceased to be connoisseurs of the arts, which became the exclusive domain of trained and talented courtesans. Unlike women who were members of household, pleasure women had a significant amount of freedom and did not need to observe societal taboos or constraints. Such women with their high levels of artistic attainments were despised by many because of their profession, but their achievements and culture could not be denied. This is clearly evident from the interactions between *ganikas* and socially respected members of society. *Ganikas* were frequently invited by citizens and members of corporate bodies to religious festivities, social gatherings, and literary conferences either as spectators or

active participants. At the centre of it stood the *nagaraka*, a city-bred man educated and skilled in the arts that took root in the cities and commercial centres.[30]

Sports, festivities, and drinking sprees

Vatsyayana's *Kamasutra* gives a vivid description of the daily lives of *nagaraka*, accomplished courtesans, and the activities in which they participated— sports, folk and religious festivities, musical soirees, and drinking sprees. Every fortnight, on a certain day, the *Samajaghatas* was celebrated in honour of the gods. The *gana* was an institution in itself which developed an internal mechanism of laying down certain guidelines regarding the arrangement for certain events, for welcoming people of social standing by presenting them with gifts, flowers, fragrances, and perfumes. Similarly, festivals were celebrated in honour of the various deities on auspicious occasions in which the *nagarakas* and the *ganikas* were active participants.[31] Patronage was not simply restricted to royalty or the state. For instance, *Udyana-yatras*, or garden picnics, were also popular among the *nagaraka*s. The favourite sports were held in gardens, both private, on the grounds of lavish homes, and public, called *nagaropavana*. The whole day the *nagarakas* and women belonging to the elite section of society, along with pleasure women, saw theatrical performances, ram-fights, and cockfights, among other entertainments. Special arrangements were made for water sports called *jalakrida*.[32] These activities can be seen as indicators of the constant companionship between *nagarakas* and skilled courtesans. Like Vatsyayana, Sanskrit poets, particularly from the time of Kalidasa, have placed lot of value on the cultural activities of these social categories in different seasons.[33]

The patron-client relationship between the state, the elite, and the *ganikas* is evident. However, the proficient courtesans also dealt with a large variety of other people in society who had access to potential clients' homes and thus could be of assistance to them— police officers, astrologers, fortune tellers, *pithamardas*, *vidushakas*, florists, scent and perfume sellers, jewellers, wine merchants, barbers, washermen, hairdressers, garland makers, and others.[34] These people belonging to various social categories were critical contributors to the forms of art that skilled courtesans were

popular for. After all a courtesan had to decorate her home, entertain her visitors with the best food and wines, bedeck herself with jewellery, wear exquisite clothes as her appearance had to be pleasant and appealing so that she could command a place of pre-eminence in the societyof the sophisticated cities.[35]

Cultural Life

The quarters of prominent courtesans often became hubs for intellectual, literary activities, and debates as well as musical performances. She was not only the host, but she was also a participant. In a way, she became the centre of all socio-cultural activity encompassing the cultural ethos of the time. If we locate Vatsyayana in the context of art and patronage, the institution of the *gosthis* was critical as it provided a platform for intellectuals in society to discuss issues pertaining to aesthetics and various forms of art.

The term *gosthi* refers to a gathering of citizens who shared similar levels of education, intelligence, social standing, wealth, and age, and who were accompanied by proficient courtesans. These cultivated citizens entertained themselves with a gamut of intellectual activities from poetry to the fine arts. The *gosthi*s were primarily organized at the home of a proficient courtesan or *nagaraka*, but were also convened in the *sabha*, the city's public hall, or in the *gana*, or corporation, to which many refined men belonged. The *nagarakas* sat in the places specially allotted to them at a *gosthi*, in an order determined by their merits and achievements.[36] The *panaka* or *apanaka gosthis* (drinking gatherings) have also been discussed in detail in Vatsyayana's work. There were events to which meritorious men and women were invited and served a variety of liquors such as *madhu*, *maireya*, and *asava*, as well as fruits, green vegetables, and other savouries.[37] They were the most common form of social gathering and were usually held in huge numbers on important occasions.

There is also mention of the *vidya gosthi* where residents from the same age group who were linked by education, money, and culture gathered at a designated location to hear stories, recitations from the *puranas*, and to discuss works of art or literature.[38] It is crucial to note that these events took place in the public domain and pleasure women were not ostracized; they were actually welcome there.

Since the focus of the article is on patronage and eroticism, the institution of *samaja* also has a major role.These were larger social gatherings which provided amusement and entertainment for the nagarakas as well as the wider society.The proficient courtesans and their actions were intimately linked to the establishment of *samaja*.[39] They had a strong presence in these activities, both as participants and as spectators.[40] Pleasure visits to gardens, where men and women couldindulge themselves, added to the samajas' joy. Even rulers appear to have attended *yatras* (pleasure excursions), *samaja*, *utsava* (feast), and *pravahanas* (processions)on a regular basis and patronized the institution of the highly skilled courtesans.

Significance of music and dance in society

Music and dance were not only forms of amusement, but were an integral part of socio-religious life. During the time period under consideration (third–fourth century CE), the highly accomplished courtesans gained fame not just for their literary achievements, but also for their abilities as musicians and dancers. They were invited to all feasts and public occasions and had a unique place in society. The skilled courtesans also sang while dancing, and played musical instruments which added to the festivities and the celebrations. Also, *alkehyam* or painting, was another skill that was acquired by both the *ganika* and *nagaraka*.[41] This shows the level of skills and proficiency in the arts that was acquired both by the *ganika* and *nagaraka* and why the city men were able to patronise the *ganika*.

Apart from the accomplishments, love for a courtesan was also of course based on physical attraction. One of the 64 *anga-vidyas* associated with erotics mentioned by Vatsyayana is the art of wearing jewellery (*bhusanayojnana*). When a courtesan is an *abhisharika*, she is supposed to meet the lovers in magnificent attire with beautiful and jingling jewellery.[42]

From this analysis it can be said that the pleasure women who were adept in the sixty-four arts enjoyed a prominent place among the people of the towns and the cities. These courtesans should not be confused with common prostitutes who lived off their physical beauty only.

Fading beauty and fortunes

Over time as she aged and her looks faded, the prestige of the skilled courtesans also declined. The courtesan who was earlier in high demand, lived a luxurious life and charged exorbitant rates was forced to accept subsistence rates or eviction. As they began to lose their sources of income, courtesans were known to lure pilgrims by dressing up and hiding their age through makeup and other wiles. Many women ended up adopting the common profession of prostitutes. According to Kautilya's *Arthashastra*, retired prostitutes were employed as chefs, storekeepers, cotton, wool, and flex spinners, and in a variety of other jobs.[43]

Ganikas belonged to a higher social status due of her youth, beauty, training, and accomplishments. She was not only an expert in the art of eroticism, she was well-versed in a variety of skills; she could afford to be selective about her clientele, patronage. Age and fading beauty of course made her vulnerable to the harshness of life.

Conclusion

Vatsyayana's *Kamasutra* establishes how instrumental the combined roles of cultured citizens, skilled courtesans and the aristocracy were in the development of art and culture in early Indian society.Reading Vatsyayana's text from multiple perspectives gives us an insight into the link between art, eroticism and patronage. Moving beyond the idea of eroticism, Vatsyayana has tried to highlight the *nagaraka* and the talented courtesan trained in the fine arts and also emphasized the patronage of the *ganikas* that existed at various levels.

A study of the work not only allows us to gain a basic understanding of the patron-client relationship between *nagaraka* and *ganika*, but also provides a fascinating and wide-ranging picture of society and its norms and attitudes.An examination of the different sections of this text shows that one of the distinguishing features of early India was that the skilled courtesan was educated and accomplished, whereas the woman bound within her household had no such exposure. Because of her accomplishments, the *ganika* was an intellectual and social counterpart of the *nagaraka*.

Vatsyayana's work must be regarded as very significant for its depiction of the early Indian cultural ethos, the role of a section

of women in urban public spaces, and the evidence it provides about the links between urban centred mercantile economies and cultural developments.No other text of the period is as rich in this context. There is great scope for further study and analysis of the *Kamasutra* on the themes of gender relations and the treatment of different categories of women, as well as the significance of urban spaces in the lives of the women of early India.

Notes & References :

1. B.N.S.Yadava, *Society and Culture in Northern India in the Twelfth Century* (Allahabad: Raka Prakashan, 2012), p. 327.
2. Moti Chandra, *World of Courtesans* (Delhi: Vikas Publishing House, 1973), p. 58. (Henceforth Moti Chandra).
3. *Ganika-vrtta-sangrahah or Texts on Courtesans in Classical Sanskrit*, vol. 1 (compiled and presented), Ludwik Sterbanch, (Hoshiarpur: Vishveshvaranand Vedic Research Institute, 1953), p. 8.
4. Vatsyayana's real name was Mallinga or Mrilana while Vatsyayana was his family name.
5. Prajapati devised 100,000 chapters on the *trivarga*. Later the *dharma* portion of it was separately treated by Manu Svayambhuva, and the *artha* portion by Brihaspati. The section of the literature dealing with *kama* was divided into 1000 Adhyayas by Nandi, Mahadeva's attendant. The *Kamasutra* is an effort to characterise the entire relationship between man and woman. Though, the sexual act is at the centre of this relationship,the text seeks to address some specific questions: with whom, under what circumstances and how should the act be performed? The answers to these questions are similar to the questions which other shastras provide, which is why the *Kamasutra* was written in sutras and aphorisms. Kama, means pleasure, which is name of the Hindu deity of love. Therefore, the Kamasutra can be considered 'aphorisms on pleasure'. Also see S.G.Kochuthara,'Kama without Dharma? Understanding the Ethics of Pleasure in Kamasutra', *Journal of Dharma,* 2009, 34, 1:69-95; Jyoti Puri 'Concerning Kamasutras: Challenging Narratives of History and Sexuality', *Signs*, Vol. 27, No. 3, Spring 2002, pp. 603-639.
6. Uddlaka Aruni, a Vedic sage gives his son Shvetaketu teachings on the kama. Shvetaketu is mentioned in the oldest Upanishads as having learnt the mysteries of sex from a scholar named Jaivali.

7. Vatsyayana was aware of the people of Madhyadesha, Bahlika, Avanti, Malwa, and the Abhira kingdoms.
8. S. C. Upadhayaya, *Kama Sutra of Vatsyayana* (Bombay: Taraporevala's Treasure House of Books, 1974), sutras 20-33, p. 53, 112-113, (Henceforth S.C. Upadhyaya); R. Shamasastry, (trans.), *Kautilya Arthashastra*, 4th edition (Mysore: Government Branch Press, 1951), p. 11; M. Winternitz, *History of Indian Literature*, Vol. 3, Part - II (Delhi: Motilal Banarsidass, 1967), p. 467-69.
9. Professor H.C. Chakladar places the Kamasutra during the third century CE in its entirety. To further correspond the dating, Prof. Chakladhar also mentions events that occurred during the reigns of Andhra King Satakarni and Abhira King. S.K. De dates the text to the circa third century CE. According to A.B. Keith, the Kamasutra can be placed before the fourth century A.D. Professor M. Winternitz made a similar observation, stating that the Kamasutra is separated from Kautilya by a short interval. IndraSinha has indicated that the Kamasutra was composed between the second to the sixth centuries CE, while S.C. Upadhyaya placed the text between the second and sixth century CE. For further details see H. C. Chakladar, *Social Life in Ancient India: Studies in Vatsyayana's Kamasutra* (reprint) (New Delhi: Cosmo India, 1976), pp. 11-13. He has discussed this problem and concluded that it was written before A.D. 400; S. K. De, *Ancient Indian Erotic and Erotic Literature* (Calcutta: Firma K.L. Mukhopadhyay, 1969), pp. 85-104. De while evaluating the merits of the Kamasutra has not dealt with this problem exhaustively; A. B. Keith, *History of Sanskrit Literature* (Delhi: Motilal Banarsidass, 1993), pp. 467-69; M. Winternitz, *History of Indian Literature*, Vol. 3, Part - III (Delhi: Motilal Banarsidass, 1985), p. 624; Indra Sinha, *The Love Teachings of the Kama Sutra* (London: Spring Books, 1980), p. 5 (Henceforth Indra Sinha).
10. Based on the author's reading of the original work.
11. Dattaka was the sage who was approached by Virasena, the chief of the courtesans of Pataliputra to lecture them on the sixth part of Babhravya's work. A fragmentary metrical resume of his work has been unearthed.
12. R. S. Sharma, (ed), *Survey of Research in Economic and Social History of India* (Delhi: ICSSR, 1986). The survey covers all periods of Indian History; *Perspectives in Social and Economic History of Early India* (New Delhi: Munshiram Manoharlal Publishers, 1983), pp. 105-57; *Light on Early Indian Social and*

Economy, (Bombay, Manaktalas, 1966), p. 78; R.S. Sharma, 'Decay of Gangetic Towns in Gupta and Post-Gupta Times,' *Indian History Congress*, 33rd session, Muzaffarpur, 1972, p. 93.

13. Romila Thapar, *A History of India*, Vol. 1, (India: Penguin India, 2000), p. 109 (Henceforth Romila Thapar Vol.1); R.S. Sharma, *Urban Decay in India* (c. 300-1000) (New Delhi: Munshiram Manoharlal, 1987).
14. Also see A. Ghosh, *The City in Early Historical India*, (Shimla: Indian Institute of Advanced Study, 1973), p. 71.
15. H.C. Chakladar, 1976, p. 144.
16. N.N. Bhattacharya, *History of Indian Erotic Literature* (New Delhi: Munshiram Manoharlal, 1995), p. 50. (Henceforth N.N. Bhattacharya). For further details see Daud Ali, 'Technologies of the Self: Courtly Artifice and Monastic Discipline in Early India', *Journal of the Economic and Social History of the Orient,*Vol.41, No.2,1988,pp.159-184; 'Rethinking History of the Kama World in Early India', *Journal of Indian Philosophy,*2011,3:1-13.
17. R.S. Sharma, 'Antiquity of Middle Ages in India', in *Social Science Probings*, March-Dec. 1993, pp. 20-37.
18. B.P. Mazumdar, 'Merchants and Landed aristocracy in the feudal economy of Northern India (8th to the 12th century A.D.,),D. C. Sircar (ed), *Land System and Feudalism in Ancient India*, Calcutta, 1966, pp. 69-71.
19. N.N. Bhattacharya, p. 79.
20. S.C. Upadhyaya, sutras 25-29, p. 224.
21. S.C. Upadhyaya, sutra 30, p. 224.
22. B. Joardar, *Prostitution in Historical and Modern Perspectives*, Women in South Asia Series, (New Delhi: Inter-India Publications, 1984), p. 40.
23. B.S. Mitter, 'Microcosms of a complex world: classical drama in the Gupta Age', Smoth, Bardwell, L. (ed), *Essay on Gupta Culture*, Delhi, 1983, p. 157.
24. Romila Thapar, Vol. 1, p. 151; Sarah Pomeroy, *Goddesses, Whores, Wives and Slaves*: *Women in Classical Antiquity* (New York: Schocken Books, 1975), p. 141.
25. Kapila Vatsyayan, 'Aesthetic Theories Underlying Asian Performing Arts' in *Sacred Landscapes in Asia: Shared Traditions, Multiple Histories*, (ed.)Himanshu Prabha Ray, (Delhi: India International Centre and Manohar, 2007), pp. 22-24.

Also see Shonaleeka Kaul, 'Women about Town: An Exploration of the Sanskrit *Kavya* Tradition' in *Studies in History*, 22, 1, n.s. (2006, pp. 59-76); 'Functions and Social Location of Kavya' in Shonalee Kaul (ed), *Cultural History of Early South Asia: A Reader*, (Delhi: Orient Blackswan, 2014), pp. 298-308.

26. Friedrich Wilhelm, 'The Concept of Dharma in Artha and Kama Literature' in W.D. O' Flaherty and J. Duncan M. Derrett, (ed), *The Concept of Duty in South Asia*, (London: School of Oriental and African Studies), 1978, p. 72.

27. Some of the sixty-four skills were: vocal music (gitam), instrumental music, dancing, script proficiency, sympathetic speech, painting *(lekhyam)*, Stucco work *(pustakarma)*, cutting stencils from leaves *(pattrachchhedyam)*, garland making, *gandhayukti* flavouring, precious stone testing, sewing *(sivanam)*, knowledge of colours *(ranga-parijnanam)*, and furniture making carpentry *(takshanam)*, science of architecture *(vastuvidya)*, discussions on dramas and anecdotes, completing the unfinished stanzas *(kavyasamasyapuranam)*, knowledge of ram, cock, and partridge fighting *(meshakukkualvakayuddha-Vidhih)*.

28. Her training was extensive and lengthy.

29. Moti Chandra, pp. 38-41, p. 376.

30. S.C. Upadhyaya, sutra 22, p. 80.

31. N.N. Bhattacharya, p. 78 depicts the social life as reflected in the *Kamasutra*.

32. S.C. Upadhyaya, , sutras 27-33, p. 84; Indra Sinha, p. 28; R.C. Majumdar, *The History and Culture of Indian People-The Classical Age,* (Mumbai: Bhartiya Vidya Bhavan), 1954, pp. 576-878. Ghata according to Vatsyayana was known as *Ghatanibandhanam*.

33. S.C. Upadhyaya, sutra 16, p. 74, Vatsyayana advises the nagarakas to have a *dirghika* or *vapi* (well) in the centre of their garden for water sports in summer.

34. Devangana Desai, *Erotic Sculpture of India – A Socio-Cultural Study*, (New Delhi: Tata McGraw Hill, 1975), p. 9-12. Also see Desai's *The Religious Imagery of Khajuraho*, (Mumbai, Franco-Indian Research Pvt. Ltd, 1996), p. 13.

35. Indra Sinha, p. 158.

36. S.C. Upadhyaya, sutras 7-8, p. 205.

37. S.C. Upadhyaya, sutras 34-36, p. 82. Also known as *gosthivihara* for entertainment; N.N. Bhattacharya, pp. 77-78; Majumdar, *The Classical Age*, p. 576.

38. S.C. Upadhyaya, sutras 37-38, p. 82.

39. V.S. Agarwala, *Harschacharit aek-Samskritika Adhyayana* (Hindi), Patna, 1953, pp. 12-14.

40. The Samaja referred to a social gathering that included music, dancing, acrobatic displays, theatrical presentations, and bird and animal battles.

41. S.C. Upadhyaya, sutras 27-33, 39-40, p. 82; H.C. Chakladar, p.162.

42. Various moods and emotions associated with paintings are reflected by usage of terms such as appropriate measures (*pramanani*), emotions (*bhava*), realism (*sadrisyam*), integrated with beauty (*lavanyayojanam*), and the application of colours were among the essential elements behind the composition of a successful painting (*varnikabhanja*). S.C. Upadhayaya, sutra 16, p. 74; Moti Chandra, p. 61.

43. S.C. Upadhyaya, sutra 21, p. 201.

44. R.P. Kangle (ed), Kautilya Arthashastra, Bombay, 1964, p. 183, 2.27.12; R. Shamasastry, (ed), KautilyaArthashastra, 4th edition, Mysore, 1951, p. 136.

Dr. Monika Saxena

Associate Professor

Department of History

Ramjas College, University of **Delhi**

❑❑❑

Aggressive and Defensive Battle of Bhangani

• Dr. Kavita Rani

During the battles fought by the Sikh Gurus on the soil of the Punjab, the masses extended their whole hearted support for the cause of righteousness. Notably, the battles ever fought have three motives behind-*zar* (wealth), *zoru* (woman) and *zamin* (land) but the battles fought by the Sikh Gurus are altogether different in tenor, motives, aims and desideratum.

It is worth to point out here that before fighting the battle of Bhangani, after staying sometime at Makhowal, Guru Gobind Singh shifted to Paonta Sahib situated on the bank of the river Jamuna in Nahan state presently in Himachal Pardesh. Guru Gobind Singh refers to it as the river Kalindri on the bank of which he shifted.

ਕਾਲਿੰਦ੍ਰੀ ਤਟਿ ਕਰੇ ਬਿਲਾਸਾ॥ [1]

Sainapat, one of the fifty two poets of *darbar* of Guru Gobind Singh who helps us by giving lot of information on the battles fought by Guru Gobind Singh refers to the construction of some buildings on the bank of the Jamuna by the Guru:

ਕੇਤਕ ਬਰਸ ਭਾਂਤਿ ਇਹ ਗਏ।
ਦੇਸ ਪਾਂਵਟੇ ਸਤਿਗੁਰ ਗਏ।
ਜਮਨਾ ਤੀਰ ਮਹਿਲ ਬਨਵਾਏ।
ਕਰਤ ਅਨੰਦ ਪ੍ਰਭੂ ਮਨ ਭਾਏ॥

Bhai Kahn Singh Nabha writes that after procuring land in the Kiar Doon, Guru Gobind Singh got a fort built on the bank of Jamuna called Paonta Fort. The battle of Bhangani was fought from this fort itself.[3] Pages of history reveal that Bhim Chand, the Raja of Kehlur, whose territory lay adjacent to that of the Guru was keen to oust him

from Makhowal. The beat of the war drum-*Ranjit Nagara*, *Prasadi Hathi*, the golden canopy etc irritated him as those reflected the marshal activities of the Guru. Kesar Singh Chhibbar states that the Guru refused to give these items to him if he was so adamant. Sainapat pleads that the Guru's reaction was a sort of refusal:

ਰਾਜਾ ਆਵ ਹਜ਼ੂਰ ਤ" ਜ' ਚਾਹੇ ਸ' ਲੇਇ।
ਜੇ ਕਛੁ ਜੁਧ ਬਿਰੁਧ ਕਰਿ ਸ' ਏਕ ਨ ਦੇਇ॥[4]

Koer Singh holds that Guru Gobind Singh refused to give *Parsadi hathi* on loan to Bhim Chand on the eve of wedding of his son Ajmer Chand on the plea that a gift ought not to be loaned. As elephant had been presented to the Guru by the ruler of Assam, he regretted his inability to loan it.[5]

In the same way, on the flat refusal of the Guru to give passage to wedding party through Makhowal on the eve of wedding of the son of Raja Bhim Chand of Kehlur with the daughter of Raja Fateh Chand of Garhwal (Sri Nagar) only the bridegroom was allowed to pass away. This seems to be another cause of clash at Bhangani.

Guru Gobind Singh's relations with Raja Fateh Chand of Garhwal having been very smooth and cordial, the Guru deemed it to be his duty to send *tambol* (wedding gift) at the time of the marriage. It is evident that Bhim Chand raised objections and urged Raja Fateh Shah to send the gift back to the Guru. Tradition stands as evidence that Fateh Shah returned the *tambol* to the Guru though he was compelled to do so. The scenario of that time depicts that Raja Fateh Shah was very eager to take certain areas of Raja Medni Prakash of Nahan. So he thought it advisable to attack the fort of Guru Gobind Singh at Paonta. It is also to be noted as observed by Giani Gian Singh that Raja Medni Prakash dispatched food stuffs for the use of the forces though he himself was not able to participate in the battle of Bhangani. Guru Gobind Singh's historic words about the reaction of Fateh Shah in connection with the battle of Bhangani is as follows:

ਫਤੇ ਸ਼ਾਹ ਕ'ਪਾ ਤਬਿ ਰਾਜਾ॥
ਲ'ਹ ਪਰਾ ਹਮ ਸ' ਬਿਨੁ ਕਾਜਾ॥[6]

Bachittar Natak authored by Guru Gobind Singh gives reference to certain events of the battle of Bhangani.

The Guru was busy at Paonta in creative pursuits when he

was compelled to fight in the said battle. The attack from the enemy was sudden and direct. The sons of Bibi Viro, the aunt of the Guru namely Ganga Ram, Jit Mal, Gulab Chand and Mohri Chand showed acts of bravery and great skill in warfare under the command of their brother Sango Shah. Guru Gobind Singh addresses him as Shah Sangram. The Guru has used honourific words for Jit Mal as an apostle of patience, Gulab Chand as Ghazi and Ganga Ram as past master having expertise in archery. Mohri Chand has been described as the very image of encouragement.

Mahant Kirpal Chand who was known as peaceful devotee along with Pandit Daya Ram jumped into the battlefield with *lathis* say sticks or whichever object they caught hold of. Guru Gobind Singh reveals the bravery of Mahant Kirpal Chand in the *Bachhitar Natak*, who gave a fatal blow to Hayat Khan Pathan. The Pathan had first joined the service of the Guru and later on deserted him on the eve of the battle. The Pathan cut a sorry figure in the battle field and he died a miserable death.

> *Mahant Kirpal Chand gave such a fatal blow to Hayat Khan with his stick that his brain burst forth with the result that pulps of blood came out of it and it appeared as if Lord Krishana (the hero of the great Epic Mahabarta) had broken the pitcher containing butter.* [7]

A detailed account of battle of Bhangani can be had from the contemporary sources. Diwan Chand, a *masand* of repute showed remarkable feats of war with his sword and sphere. Kirpal Chand, the maternal uncle of Guru Gobind Singh was successful in fielding and restraining the attack of the enemy. Saheb Chand Khatri faught very courageously against the foe. The enemy was so much depressed and discouraged that the troops felt last resort in slipping from the battlefield. It is to be noted here that Nijabat Khan Pathan the leading figure in the battle of Bhangani fell on the ground with a single blow of Sango Shah.[8]

Notably Sainapat writes that Hari Chand gave a severe blow to the Guru himself but he escaped unhurt. Jai Mal, a devotee of the Guru was also able to give a tough fight to the enemy.[9] The sword of Guru Gobind Singh's *masand* Nand Chand broke in the battlefield and he was wounded. Ganga Ram also put up a tough fight. Guru Gobind Singh refers the killing of two generals of the enemy named Bhikhan Shah Pathan and Raja Hari Chand.[10] The

Guru's assault on Bhikhan Shah was so strong that the *Pathan* was promptly killed while he was commanding his forces. It is worth pointing out here that the killing of good number of soldiers of the enemy affected the morale of the troops who had to retreat after suffering defeat. Mudhkar Shah of Dhadwal also followed suit. Seeing their leader's death, the troops of forces of various hill chiefs left the battle field.

Bhat Vahi Bhadson is very informative and gives the names of the dead from the side of the Guru.

> ਹਰੀ ਚੰਦ ਮਾਈ ਦਾਸ ਕਾ ਅਸਵਜ ਦਿਨ ਅਥਰਮ ਸਾਲ ਸਤਰਾ ਸੈ ਪੰਤਾਲੀਸ ਭੰਗਾਨੀ ਕੇ ਮਲਨ ਰਾਜਾ ਨਾਹਨ ਗੁਰੂ ਕਾ ਹੁਕਮ ਪਾਏ ਰਾਜਾ ਫਤੇ ਸਾਹ ਗੈਲ ਸਾਮੈ ਮਥੈ ਰਣ ਮੇ ਜੂਝ ਕਰ ਮਰਾ ਗੈਲ' ਉਦੀਆ ਬੇਟਾ ਕੇਮੇ ਚੰਦਨੀਏ ਕਾ ਪ'ਤਾ ਧਰਮ ਚੰਦ ਕਾ ਪੜਪ'ਤਾ ਭੇਜੇ ਕਾ ਸੂਰਜ ਬੰਸੀ ਗ'ਤਮ ਰਾਠ''ਰ ਰੁਮਾਣਾ ਬੰਸ ਲਖਣ ਕਾ ਮਰਾ ਗੈਲ' ਸੰਗ' ਸ਼ਾਹ ਜੀਤ ਮਲ ਬੇਟੇ ਸਾਧੂ ਕੇ ਪ'ਤੇ ਧਰਮਾ ਕੇ ਖ'ਸਲੇ ਖੱਤਰੀ ਗੁਰੂ ਕੀ ਭੂਆ ਕੇ ਬੇਟੇ ਮਾਰੇ ਗਏ[11]

The battles were of defensive nature aggressively fought to defend the claims of conscience, to uphold the downtrodens and to seek the welfare of the masses. During the pontificate of Guru Gobind Singh when the marshal concerns reached a climax the sources of the Sikhs were unequal to those of the hill chiefs.

Guru Gobind Singh's hostility with the Mughals was of a serious nature. His clash with the hill Rajas of 22 hill states divided mainly into three divisions of the Jalandhar Doab, Satluj Hithar and Dugar was of less significance. The Jalandhar Doab included the eleven states of Guler, Chamba, Nurpur, Datarpur, Samba, Kangra, Saket, Mandi, Jaswar, Kutler, Kulu. Ten hill states namely Basauli, Bhandu, Mannkot, Bandral, Jasrota, Samba, Jammu, Chnehri, Kishtwar and Bhadruaha fell within the jurisdiction of Dugar. Guru Gobind Singh's concerns annoyed the hill chiefs. He opposed the caste-system and other social evils. Moreover, the hill Rajas mostly believed in idol worship and were very proud of their distinct lineage.[12] These chiefs were particularly those whose boundaries were adjacent to Anandpur Sahib called Makhowal–a site purchased by Guru Gobind Singh's father Guru Tegh Bahadur.[13]

Guru Gobind Singh after his settlement at Anandpur Sahib

gave injunctions to the Sikhs to present the weapons for him. There are examples to depict that the Guru expressed his pleasure on receiving gifts of arms of warfare. The Guru also approved the use of the *Nishan Sahib* or the flag of the community and war drum.[14] It is to be pointed out that the hill chiefs regarded the beating of the war drum as their sole privilege.

The Guru began giving practical military training to his Sikhs. The marshal concerns of Guru Gobind Singh worried the hill chiefs. This was the reason why the chiefs of Kehlur and Hindur at times obstructed the passage of the *sangat* of the Guru proceeding for his *darshan* with gifts of arms. The Guru was often informed about the events which ultimately became the cause of battles against the hill chiefs.

No serious view was taken of the 22 states by the Emperor of Delhi. The one and only one object of the government was to extract tribute. Notably the states which did not pay the tribute were not seriously taken notice of. The chief reason seems to be that the states were situated remotely. However, the chief of these states were provided timely help against Guru Gobind Singh. Emperor Aurangzeb was keen in dissention among the hill rulers.

We may conclude that Raja Bhim Chand of Kehlur whose territory was adjacent to Makhowal was very jealous about the increasing number of disciples of Guru Gobind Singh visiting Makhowal for his *darshan*. As he had no adequate reason to bring his force against the Guru he instigated his relative Raja Fateh Shah of Garwal and his own allies to make an attack on the Guru. The fact remains that Raja Fateh Shah of Garhwal had no grievances against Guru Gobind Singh but had a very close and delicate relation with Raja Bhim Chand. He had no option left but to make an attack on the Guru at Paonta. It is to be noted here that since Raja Fateh Shah had amicable relations with the Guru, the Guru's historic statement figures in this context in *Bachittar Natak* that 'Fateh Shah got red with rage and attacked him without rhyme reason'.

The date of the battle of Bhangani has not been inserted by Guru Gobind Singh himself. Sainapat also skipped over it. Teja Singh and Ganda Singh on the basis of *Sri Gur Partap Suraj Granth* infer that the battle of Bhangani was fought in February 1686.[15]

Guru Gobind Singh achieved a glorious victory in this battle which was the first major battle of the Sikhs against the hill Chiefs. Battle of Bhangani was aggressive battle because the disciples (the Sikhs) of Guru Gobind Singh who were so much devoted to him that they were ready to sacrifice even their lives for the cause of righteousness and fought in the battle from the core of their hearts. Whereas the soldiers of the hill Rajas indulged in fighting to earn money and had no devotion for the cause for which they fought. This battle was defensive as well because of the solid reason that there was a strong union among the hill Rajas of 22 states and they gathered together at various occasions. The hill Rajas attacked Guru Gobind Singh who faced them bravely and won a glorious victory.

References

1. Guru Gobind Singh, *Bachhittar Natak*, ch. 4, chaupai 2
2. Sainapat, *Sri Gur Sobha* (ed. Ganda Singh), Patiala, 1967, p. 31
3. Kahn Singh, *Gur Shabad Ratnakar Mahan Kosh*, Patiala, 1974, p. 297
4. Sainapat, *op.cit*; p. 49
5. Koer Singh, *Gurbilas Patshahi Das*, Patiala, 1968, pp. 76-77; Sukha Singh, *Gurbilas Patshahi Dasvin*, Patiala, 1971, p. 112
6. *Bachhittar Natak*, ch. 8, *Chhand* 3
7. *Ibid*.
8. Sainapat, *op.cit*, p. 12
9. *Ibid*.
10. *Bachittar Natak*, ch. 4, chaupai 24
11. *Bhat Vahi Bhadson*, file no. 1, p. 8, P.H.S., Punjabi University, Patiala
12. Indu Bhusan Banarjee, *Evolution of the Khalsa*, Calcutta, 1947, p. 48
13. Khuswaqt Rai, *Tawarikh-i-Sikhan*, Punjab State Archives, Patiala, ff. 55-55B
14. Rattan Singh Bhangu, *Sri Gur Panth Prakash*, Amritsar, 1984, p. 71
15. Teja Singh and Ganda Singh, *A Short History of The Sikhs*, Patiala, 1989, p. 60

Dr. Kavita Rani
Assistant Professor
(History)
Department of Distance Education, Punjabi University
Patiala (Punjab)

❑❑❑

Gender Studies-Re-locating Historical Enquiry

• Dr. Anisha Srivastava

Abstract:

This paper seeks to unfold the numerous ways in which Gender historians have problematized the existing domain of historical knowledge. Subsequently the paper also suggests that Gender History has enlarged the ambit of social structures, and established the relationship between -dominant and visible- social, economic, political and ideological processes and their inherent power structures. It has also shifted the historians *gaze* towards the mundane life structures of the colonial world. New concerns such as domesticity, conjugality, family, prescriptive and ascriptive behaviour patterns for men and women of various age-groups and social classes are discussed thread-bare. A study of all this entails a more meaningful discussion on the plurality of the colonized existence. Several historical interpretations including nature of socio-religious reform movements, essence and nature of nationalism, limitation of participation in national movement, identities around questions of caste, class community and religion stand challenged by an array of new questions. The attempt is not to do *'a new history*', but to *'do history differently'*.

The paper will emphasize on certain major concerns and contribution of Gender Historians with respect to re- working on certain accepted notions of historical interpretations. Gender Studies has shown its extreme discomfort with studying the unfolding of social processes and historical developments within the parameters of neat binaries such as impact-response, tradition-modernization, material-spiritual, civilized-uncivilized etc. Tanika Sarkar refers to this as a reductionist approach where Indian

History becomes too strongly a site for west rather than activities of Indian people.

Gender Historians add new paradigms to the study of women and their representations through a nuanced study of caste and community frameworks that determine the lives of women. Thus, women's posture and existence at various moments in history cannot be reduced to any homogeneity. Region to region and locality to locality the context changes and so does the momentum of historical development.

Gender Historians re-invigorates the historical notion of accepting continuities with change. The colonial power re-couped the social mores of pre-colonial India to hegemonize its power over the colonized. Indifference to questions of *'gender'* deprives us of an extremely valuable perspective with which to re-work key concepts for the study of power and protest, identity and community, resistance and autonomy.

Last but not the least Gender History has enabled women to be looked upon as not *objects* but *subjects* of history. In more recent past the notion of *'agency'* has significantly added to the purview of looking at women as subjects. This paper will reflect upon the implications of the term *agency* and the historical writings premised on it.

Key words : *Historical imbalance, binaries, public sphere, palpable reality, vernacular, multidiscursive, agency, canonical exclusion*

Gender Studies has emerged as a major intervention in the study of society and social processes. It has not only challenged the traditional corpus of knowledge associated with social sciences, but has also enlarged the ambit for the study of social structures, established the relationship between- dominant and visible - ideological, social, economic and political processes, and inherent power structures. It has completely revamped the thrust of social enquiry by relocating the gaze of the social scientist and his major concerns of study. The attempt is to reduce *"historical imbalance"* and to attempt for a more rounded understanding of the past. *Gender Studies* has challenged the boundaries of historical interpretation in several ways. It would be of significance to understand how *Gender Studies*, has challenged the boundaries of historical interpretation..

Contesting Binaries and making a case for the study of Public Sphere

Gender Studies has shown its extreme discomfort, with studying the unfolding of social processes and historical developments, within the parameters of neat binaries such as impact-response, tradition-modernization, material-spiritual, civilized-uncivilized etc.Tanika Sarkar strongly criticizes the *'binary model* 'of historical study as 'reductionist approach'… "Indian history becomes too strongly a site for west rather than activities of Indian people."[1] Here, she joins issues with Partha Chatterjee. Partha Chatterjee had used the paradigm of east and west or material and spiritual, to explain the relationship between colonialism and nationalism. Chatterjee had argued that in the material realm the superiority of the west was an established fact. The Indians could not challenge the might of the British in the material sphere. But in the spiritual realm the supremacy of the east held sway. Therefore the Indian middle class structured their anti-colonial struggle within the interstices of the spiritual domain. There was a conscious effort to restrain the interference of colonial power on issues dealing with Indian domesticity, Indian women etc. These were recognized as un-colonized spaces. By the end of Nineteenth Century Nationalism evolved as the 'derivative' discourse' of the West and the paradigms of ánti-colonial' struggle were subsumed within it.[2] Although Tanika Sarkar welcomes this as a fresh perspective, yet she regards it as too simplistic. She is of the opinion that such binaries prevent possibilities of interpenetrations and interactions between the two domains as well as within each domain. According to her, it would be more rewarding to look at mutual conversations and struggles among Indian people and how these determined their approach towards the colonial. Further issues need to be contextualized and therefore the grids of "determinants" have to be identified and studied intensely. These include looking at formation of colonial social knowledge, political administrative changes, emergence of public sphere, debates on law, facts etc. Thus the emphasis should be to *study the lived palpable and the sensuous*. Despite their colonized state and modern coercive State apparatus, what the people prescribed and did preserved a high degree of autonomy. This got displayed

through mutual conversations, arguments, conflicts and clashes. Several Feminist scholars have made very interesting studies. Tanika Sarkar herself recreates this lived domain in context of late nineteenth and early twentieth Bengal. She picks up several such controversial issues, including scandals which invited animating discussions in the public and exposed the myriad thought processes that were acquiring shape in changing conditions of colonial rule. New institutions of power –including judicial, legislative and legal-were being created. The imperial power was determined to create its hegemonic apparatus through conciliation and participation of the colonized.[3] Thus enough space was being created for expression, introspection and investigation. Issues such as domesticity, conjugality, family, prescriptive and ascriptive behavior patterns for men and women of various age groups and state was discussed threadbare. A study of all this entails a more meaningful discussion on plurality of colonized existence. It was a result of interaction of colonial and colonized with each other.

Sanjay Joshi uses the term of *'fractured modernity'*[4] to explain the dichotomies and contradictions that prevail in the thought process of the the middle class of United Provinces in the first few decades of the twentieth century. He makes a strong argument for the study of *public sphere* including newspapers, associations, journals etc. "Without looking at public sphere intervention,it would be impossible to understand, how a shared moral code could make socially and economically disparate groups a middle class."[5] According to him *Gender* was an important issue of discussion amongst the intelligentsia of the period. Further it was shaped by the contradictory pulls of new and old ideas. Contradictory foundations incorporated, both modern ideas about women's education and emancipation, as well as the reiteration of much older patriarchal norms. He sums it up by offering a very meaningful insight," It was a modernity that certainly helped men to create newer forms of control over women, but at least women willing to participate in it, also created spaces, where they could contest male domination, or at least create a space for their own intent and inclination."[6]

Francesca Orsini's work on Hindi Public Sphere in United Provinces in the period between 1920s and 1940s takes the

scholarship of Sanjay Joshi still further. Orsini regards institutional contexts, journals, school text books,literary and other voluntary association and publishing as institutions that provided space for a new *public-minded activism* and encouraged a sense of Hindi reading public that was more open-ended and self.[7] According to her there was substantial growth and diversification of material directed at women; apart from educational books, booklets and pamphlets. In addition, it provided the women with a public voice that they had hitherto lacked.[8]. Orsini further adds to her large array of scholarship, by saying that the vibrant discussions of the public sphere, also lead to birth of normative traditions in the literary sphere-whether to do with women, community, national education, role of individual etc. Women negotiated these norms. They held up issue of domestic and caste practice, to public scrutiny and extended their sphere of activity.

Shobana Nijhawan's investigation on women and girl's periodicals, picks up the argument from where Orsini leaves it. She regards these periodicals as early printed forms of female self-expression.[9] Further, they were also successful in forging bonds among a newly imagined yet heterogeneous community of women. Hindi women journals abound in usage of terms-*strijati* (woman kind), *sttri-samaj* (women's society), *stri-gan* (women's group). Hindi women's journals created a socially interactive and participatory framework marked by social reform and anti-colonial sentiment, as well as emerging nationalist and feminist thought.[10] It can be called feminist as it was instrumental in developing among women a feeling of self-worth.

Challenging existing scholarship and arguing for new methodology and new sources

Regional studies have established, that the trajectories of colonial, accomadated and were accomadated, in regions,in varying capacities. Further the differing configurations of caste and class structure added to the complexities. Gender relations and the changes within them, with changing times, also become visible in numerous hues and shades .*Gendering Colonial India*[11]edited by Charu Gupta makes a significant intervention in challenging in more senses than one, the domain of existing scholarship, methodology and even sources.. The underlying idea is not to do *'a new history'* but to do *'history differently'*.

Scholars such as Tanika Sarkar, Charu Gupta, Anshu Malhotra, Gail Minault, Anupama Rao, J.Devika, Nonica Dutta strongly establish the potentialities of *Gender Studies* to add fresh vistas to historical investigation.

Tanika Sarkar[12] uses the context of nineteenth century Bengal to show that while on one hand reforms and colonial legal structure validated the need to allow the widow to remarry or endorsed widow's desires, it did not lead to any significant change in the position of widows or the social stigma that they had to suffer. The writings and novels of the period show a desiring widow as salacious and dubious. Thus normative standards making the women vulnerable not only continued to exist, but was further protected by making the widow economically vulnerable.

J. Devika's,[13] work deals with Kerala. Apparently in the Malayalee literature of late nineteenth and early twentieth century, the domestic and public domains were constituted as distinct domains. However, their boundaries were never fixed, and a lot of speech and writings centred upon negotiating the two. The twentieth century saw an increasing concern for women's issues. There was increasing demand from the State for active legal interference to protect the women's rights.The discourse of *'modern women'* in Kerala, in twentieth century, did equip women for a role in public sphere. However it was with the care, that *'womanliness'* was not compromised.

Anshu Malhotra[14] looks into the genre of *one anna- bazaari* literature of Punjab during the period when the reformist ideas of socio- religious reform movements were breaking new grounds. Unlike the dominant historical understanding, that reformers condemned and discouraged consumption of low and popular literature, Malhotra shows that there existed a tense contentious and ambivalent relationship between the inclinations of the reformists and the genre of popular literature in Punjab. The propagandists amongst the reformers chose this genre to popularize their ideas. However even when these texts advocated reforms they did so in a manner that reformers disapproved of. The *Kissa* writers did not compromise on the usage of uncouth and saucy language, or on designing loud and caustic conversations amongst their actors to win the attention of general public.

Charu Gupta[15] strongly recommends, the need to extend the

ambit and implications of archives. Traditional historical understanding, regards printed and published government records, alone as archival records. However, according to Charu these do not reflect upon the palpable lived social spaces. For an insight into the above, indigenous vernacular print material of various hues and shades need to be explored. She makes a strong case for vernacular imagination in order to emphasize the diversity of social life and of everyday practice in colonial societies. She is of the opinion that in case of United Provinces, vernacular literature of the first three decades of twentieth century, became *constitutive* rather than *supplemental* archives for the understanding of key moments of transformation and identity formations.It alone can reveal the self determining capacity of various marginalized subjects-the colonized, the homosexuals, and the lower castes and even the women. She recommends a historical study of cartoons, tracts, popular pamphlets, advertisements, didactic manuals, medical books etc. She rebuts the argument that *colonialism and modernity* lead to increasing marginalization of women's sexuality. She explores acts of transgressive sexuality to show how disorder crept into moral order. Official archives affirms popularity of obscene literature. Mass publications of that time, reveal a virtual indifference to sanitized literary taste or to nation-building.

Similar concerns are explored in a wider canvas by Charu Gupta and Anshu Malhotra in their respective monographs as well. Charu Gupta makes a study on how gender was central to the creation of sexualized and communalized Hindu Identity in colonial U.P.[16]Anshu Malhotra studies gender, caste, religious identities, and elements of popular culture and their impact on the re-ordering of caste in colonial Punjab. She investigates the implications of being high caste Hindu and Sikh in colonial Punjab.[17]

Zoya Hasan's edited volume *Forging Identities* endorses centrality of religious identity in minority politics, the articulation of traditional community discourse which keeps women bound to the traditions of religious communities and the role of State in reinforcing such a discourse. [18]The thrust is to delve beneath the layers of social existential conditions and analyze how caste and gender interacted with religious identities to re-shape middle class.

Nita Kumar argues for re-working on the idea of 'modernity'

in colonized societies.[19] According to her, "Modernity in India is a plural process and a study of intelligentsia in India from the nineteenth to the present, shows us that their ways of being modern were multilingual, multivocal, multivalent and multidiscursive.[20]" She regards the history of education in North India, particularly United Provinces,as a *gendered history.*She argues for broadening it's scope by going beyond specific events and processes, to every day life." A gendered history of education reveals that there are multiple discourses."[21] In yet another very meaningful work, Nita Kumar observes, "The term *shiksha* is translated as *educated* today without any nuances of *informal learning* or training but it would have made little sense in the Banaras of one hundred to one hundred and fifty years ago to say that women were *ashikshit* or uneducated."[22] Boys were educated in the nineteenth century according to their prospective careers. Women did not have careers. They however had duties. Their catalogue of accomplishments was very long.The dominant discourse specified the place of women in the private and internal domain which needed apprenticeship and practice as well.[23] The sources from which they imbibed education were *vratakathas,*rituals, festivals, performances, and story telling.[24] "Education is a multi stranded process occurring at plural sites, not so much contradictory as cumulative".[25] It is normal for people to be comfortable at homes in the epistemologies of their grandmothers as well as in the formal syllabus of the colonial state.[26]

Thus indifference to questions of *gender* deprives us of an extremely valuable perspective with which to re-work key concepts for the study of power and protest, identity and community resistance and autonomy.Rosalind'O Hanlon makes an extremely useful observation, "We need to uncover how gender relations intersected with and profoundly shaped wider social and political relations in colonial India. This presents a much more powerful strategy for a feminist history than seeking to accomadate women in the prevailing frameworks of interpretation."[27] Several historical interpretations including nature of socio-religious reform movements, essence and nature of nationalism, nature and limitations of participation in national movements, middle class identity formations , identity formations around caste class and religion, community identity formations etc, stand questioned.

Study of discussions around issues like gender relations , notions of domesticity, conjugality, sexuality give an insight into several thought processes structured by various forms of colonized existence. It is here that study of several genres of vernacular literary expressions appear significant.

Gender Studies- An exploration into the agential role of women in History

In yet another way, *Gender Studies* has significantly contributed to enriching the domain of History . In the trope of traditional history writing women merited only momentary reference as 'objects' of study. It is in the 1970s and 1980s that Gender Studies exposed the invisibility and marginalization of women in not only History writing but even in its dominant concerns. Gradually this upsetting trend was rectified and the new historical *'gaze'* transformed women into *'subjects'* of history. J Krishnamurthy used more conventional sources including government documents and census reports to assess the impact of social and economic forces on the lives of women in colonial India.[28] Several studies look into marginalization of women in the economy and popular culture,[29] the impact of colonial law and administrative policies on the role and status of women,[30] the reconstitution of patriarchies via the recasting of the concept of womanhood.[31] The subjecthood of women in history confronted larger historical processes like socio-religious reform movements, nationalism and communalism with new questions. Were the reform movements, as enlightening for women, as they appeared to be? Which issues became dominant reform issues and why? What kind of discourses did these reform movements engineer? What kind of public sphere did it create ? How did it contribute towards identity formations and of what kinds? How did the iconography of women, domesticity, gender relations, form the premise on which the contours of nationalism was drawn ? How did the above foster and arrest, the class participation of women in national movement, or even in public domain? How did the embodiment of women form the core of communal ideologies? Why do communal riots unfold with worst and most gruesome consequences for women and children?

In the more recent past the notion of *'agency'* has significantly added to the purview of looking at women as subjects.[32] Padma Anagol defines *'agency'* in women as getting depicted through the twin aspects of consciousness and resistance. "By not studying women as agents of their own history, and viewing them as capable of generating only derivative histories, the colonized subject is denied any collusion and complicity in participating and creating the exploitative structure of Indian society and polity."[33] Thus it is also very pertinent to ask, "Why do women become complicit in systems which subordinate them?". [34]The question of agency is again put to test. As Uma Chakravarty potently says "The lives of women are located at the intersection of class, caste and patriarchies. Women are regarded as upholding the tradition by enforcing them upon other women. This is particularly visible in the arena of marriage and reproduction ."[35]

The notion of *ágency'* has has been studied in several perspectives. Bharti Ray's influential edited volume *"From the Seams of History"*[36] sought to recover the place and significance of Indian women at various points in History. Malvika Karlekar's' *Voices from Within* traces the formation of women's subculture in the *ántahpur* (inner house). She effectively demonstrated, how literacy and education, enabled at least an elite section of Bengali women to question male constructions of Indian femininity. Feminist historians like Geraldine Forbes[37], Aparna Basu[38] and Bharti Ray, study the contribution of women's organization to female education, legislative reforms and social welfare. Meenakshi Thapan[39] talks about *agency* in women's embodiment as it is expressed through in women's writings, and through individual and collective strategies in everyday life. Susie Tharu and K Lalitha explore the writings of women from 600B.C to 2000A.D.[40] They are of the opinion, that women articulate and respond to ideologies, complexly constituted, from de-centred positions within them. Meera Kosambi[41] analyses the life, struggles and writings of some well known women of late nineteenth and early twentieth century Maharashtra. These include women whose thought processes exhibit signs of early feminism. Their Feminism tried to negotiate between progressive thinking and conventional action. On one hand, they repeatedly critique the patriarchal underpinnings of the

male reformers argument. On the other hand, they were also unable to overcome the idea of women's subordinate status, and her perpetual indebtedness to men for all their mercies. Such studies attempt to retrieve, the voices of resistances and disagreements, of a generation completely steeped in their social milieu.

Another significant study that uses the *agency* of a woman, to contextualize the inherent disabilities in the social existence of the concerned periodis Tanika Sarkar's *'Words to Win : Amar Jiban'* [42]. Here the author traces the *agency* of a high caste woman writer of mid nineteenth century Bengal, in a religious framework. In ambiguous and subtle ways, the author Ras Sundari Devi gives expression to the trials and predicaments that she had to suffer to acquire knowledge.

Study of *agency* of women, adds new contours to the understanding of women's complicity in communal agenda's as well. Women become the agents of various communal projects. P.K.Dutta[43]illuminates the agency of Muslim women in the Bengal of 1920s both in furthering and in challenging communal ideologies.

Padma Anagol, further adds to the caveat of the study of the *agency* of women. "However there is a need for a fuller study not only of isolated women resisting patriarchy, but groups and communities of women asserting, resisting and making sense of their lives during the colonial period…."[44] In her recent work Nita Kumar talks about the *agency* of women in the reproduction of patriarchies. She also emphasizes on the women's *agency* in determining the thought process of intelligentsia, nationalist and reformers, steeped in the colonial education system of United Provinces in late nineteenth century . Emphasizing the relevance of women for such studies, she says , "…it is easy to include them in the history of education, where through numerous ways from socialization at homes, to choosing mainstream schooling for their sons, to setting up institutions for girls, the women were key actors. …….Women were formed by men through a discourse of reform and private, and men were formed by women through a discourse of motherhood and family." [45]

Padma Anagol attempts yet, a more ambitious project.[46] Her monograph deals with the period 1850-1920 in Maharashtra which

she prefers to call period of *Early Feminism*.According to her, in Maharashtra, women ingeniously adopted and modernized many of the institutions of the private sphere in order to meet the requirements of the colonial world. The book considers women's interactions with colonial state and indigenous men. *Agency* is construed here as conscious goal driven activities by women, that embrace the possibilities of change. How women in individual and collective ways attended to their material security? How women accessed knowledge of state procedures and law courts in claiming their right to property, livelihood, to remarriage, to mobility and custody of children. Women attempted to remain agents of their lives, through recourse to law courts, for restitution of conjugal rights, divorce, separation and maintenance etc. The study intends to look at how common women have used legal structures to redress their grievances and assert their rights. Other than the conventional sources Padma Anagol has looked into institutional records of women's organization, vernacular plays, literature, folk songs and theatre. Maharashtrian women resorted to a rich vocabulary in Marathi language that epitomize their femininist consciousness. They frequently use terms like *bhaginivarg* (sisterhood), *strihak* (women's right), *strivarg* (womankind) *bandhivasan* (bondage). The core argument is that Indian Feminism grew out of the women's movement in late nineteenth century, reaching maturity in the early twentieth century.

Charu Guptas work on Yashoda Devi highlights the success of a woman ayurvedic practitioner of twentieth century United Provinces, in a male dominated world.[47]She was a prolific writer, who authored more than fifty books on Ayurveda and womens' health, manuals of household advice, social prescriptive texts and medical recipe books. She ran her own printing and publishing house as well.Yashoda Devi also operated in the dynamic sphere of womens' public print culture, using Hindi as her language. She revived and re-constituted the medical tradition of Ayurveda,and also interacted with the realm of western medicine.Her writings seek to define the attitude of Ayurveda on womens' sexual desires, which today is the domain of obstetrics and gynaecology. She not only talked of womens'duties in aiding the process of reproduction but also their desires from a healthy sexual life. "The story of her success is perhaps also a story of womens' network, as she

provided a platform where, away from household structures, women could voice their intimate concerns and complaints, especially with regard to her male partner".[48] Years of interaction with female patients, made her realize that she would be unable to cure female illness without addressing male illness. "Her advice and remedies were then meant to control male bodies as well."[49] She unfolded a discourse in which regulation of body was seen as being important for both male as well as females.

In a more recent monograph Anshu Malhotra delves into the tumultuous life of a hitherto unknown women *Piro* and her little known sect, the *Gulabdasis,* in the middle decades of nineteenth century Punjab, which was equally tumultous.[50] Piro is the extraordinary voice of a low caste muslim and a former prostitute, who re-invents her life as an acolyte in a heterodox sect. Malhotra dabbles with an entirely genre of literature i.e. *autobiography*. According to Malhotra and Shoban Lambert Hurley, "Autobiography is a genre that is inherently confessional ….for it is about self-fashioning…..If we look at the autobiographical practice as a self in performance we begin to appreciate the historical social, cultural milieu in which self was imbricated and what enabled gendered subjectivity and speech."[51] In her *iksausathkafian* (160 kafis), *mand* and other writings including her *siharfis* or acrostic verse, she highlights the social and cultural structure of her society and moreover posits and shows the mentalities of early modern denizen-particularly a woman-who broke the varied disciplinary codes, deeply moulded by Bhakti imaginary and it's effects. The social and cultural constraints, of which Piro speaks with acuity, born of experience, reveals the gendered social and cultural realities of her times, of religious tyrannies and authority figures against whom she is especially caustic. Furthur, a rare voice by flagging and raising alarm about oppression borne regularly gives a glimpse of what a society considers normal, the codes it lives by and repression that is part of routine.

Such studies significantly challenge a historical understanding that view women's existence as completely *'passive',* or prefer to ignore the entirely varying interstices of power relations that determine the social existence of women at any particular time in History. There is a need to study the matrix that determines gender relations in any historical existence. This alone can serves as a

paradigm for discussing moments of complicity, conciliation negotiation, assertion, or even resistance starkly visible even amongst women. This conception of female *agency,* centre's on uncovering the intentions and experiences of Indian women. They asserted their rights, addressed social inequalities and rejected or adopted traditions in an engagement with the world around them. There are difficulties inherent in such studies particularly because most of the existing written sources patronize male dominant point of view. Often the activities of women are considered too mundane and to be recorded in a regular course . But with the inception of printing and publication the, 'scribal culture' was displaced. Writing and reading became private activities and expression by masses, increased. These need to be included amongst the noteworthy sources of study. Nita Kumar makes a strong case for it by saying, "To ask certain questions about women's voices in History is to confront the methodological challenge of 'How shall we find out?' We could keep experimenting and going around in circles if we keep to familiar data and interpretation. But if we were to use literature, folklore, art, or geography or any un-conventional source, I suggest we would find new openings."[52]Further as Vijaya Ramaswamy strongly advocates," One has to look for women in the deliberate silences, canonical exclusions and muffled voices that form the text and sub-texts of our histories. "[53]

Foot Notes

1. Tanika Sarkar (2009), *Rebels,Wives,Saints: Designing Selves And Nations In Colonial Times*(Delhi:Permanent Black), p. 5
2. Partha Chatterjee(1994),*The Nation and its Fragments Colonial and Post-Colonial Histories*(Delhi: OUP)
3. Tanika Sarkar,Rebels…..2009
4. Sanjay Joshi (2001), *Fractured Modernity-Making of a middle-class in colonial North India*(New Delhi:Oxford University Press)
5. Ibid p. 44
6. Ibid p. 18
7. Francesca Orsini (2009), *Hindi Public Sphere: Language and Literature in the Age of Nationalism(1920-1940)*, (Delhi:Oxford University Press) p. 18

8. Ibid p. 46
9. ShobanaNijhawan (2012), *Women and Girls in the Hindi Public Sphere: Periodical literature in Colonial India* (New Delhi: Oxford University Press), p. 4
10. Ibid p. 5
11. Charu Gupta (2012),*Gendering Colonial India: Reforms, Print, Caste and Communalism (*Delhi : Orient Blackswan)
12. Ibid, Wicked Widows: Law and faith in nineteenth century public sphere debates pp 82-109
13. Ibid, Re-inscribing Womanliness-Gendered Spaces and Public Debates in Early modern Keralam pp 136-159
14. Ibid, Print and Bazaari Literature: Jhagrras/Kissas and Gendered reform in early twentieth century Punjab pp 159-188
15. Ibid, Archives and Sexuality:Vignettes from colonial North India pp 317-345
16. Charu Gupta (2001),*Sexuality,Obscenity,Community: Women, Muslims and the Hindu Public in Colonial India* (Delhi: Permanent Black)
17. Anshu Malhotra (2002),*Gender, Caste and Religious Identities: Structuring Caste in Colonial Punjab* (Delhi : OUP)
18. Zoya Hasan (1994) ed. Forging Identity: Gender, Communities, and State in India (Delhi:Kali for women)
19. Nita Kumar (2007), *The Politics of Gender, Community and Modernities: Essays on Education in India*(New Delhi:Oxford University Press) 20 Ibid p. 14
21. Ibid p. 138
22. Nita Kumar (2000), *Lessons from School: The History of education in Banaras* (Kolkata: Sage), p. 153
23. Ibid p. 154
24. Ibid p. 155
25. Nita Kumar (2007) p. 126
26. Ibid p. 139
27. Rosalind O'Hanlon (2014), *At the edges of Empire:Essays in the Social and Intellectual History of India* (Delhi: Permanent Black) p. 303
28. J Krishnamurthy. (ed) (1989), *Women in Colonial India: Essays on Survival,Work and State*, (Delhi: OUP)

29. Nirmala Bannerjee (1989) 'Working Women in Colonial Bengal: Modernization and Marginalization' in Kumkum Sangari and Sudesh Vaid(ed) *Recasting Women: Essays in Colonial History* (Delhi : Kali for women) pp 269-301; Dagmar Engels (1996) *Beyond Purdah: Women in Bengal1890-1930* (Delhi : OUP).

The latter theme is dealt by Sumanta Bannerjee (1989) *The Parlour and the Streets: Elite and Popular Culture in Nineteenth Century Calcutta* (Calcutta,Seagull)

30. Lucy Caroll (1996), Law, Custom And Statutory Social Reform: The Hindu Widow's Remarriage Act of 1856 *Indian Economic and Social History Review* (Delhi:Kali for women); Sudhir Chandra (1998), *Enslaved Daughters:Colonialism, Law and Women's Right's (*Delhi : OUP)

31. Partha Chatterjee (1989), Colonialism, Nationalism and Colonized Women : The Contest in India, *American Ethnologist* 16/4 Uma Chakravarti (1989),' Whatever Happened to the vedicdasi? Orientalism, Nationalism and a Script for the Past in Sangari and Vaid(eds) *Recasting Women* pp 27-87

32. Kosambi,Meera (2000) *Pandita Ramabai in her own words : Selected works* (New York : Feminist Press), Rosalind O'Hanlon (ed) (1994), *A Comparison between Women and Men: Tarabai Shinde and the critique of Gender Relations in Colonial India* (Madras : OUP), Susie Tharu and K. Lalitha (eds) (1991) *Women Writing in India 600 B.C to the Present* (New Yorks : Feminist Press)

33. Padma Anagol, (2006), *Emergence of Feminism in India 1850-1920 (* England: Ashgate Publishing Ltd) 2006

34. Uma Chakravarti (2003), *Gendering Caste through a Feminist Lens* (Calcutta: Stree) p. 12

35. Ibid p. 15

36. Bharti Ray (ed) (1995), *From the Seams of History Esssays on Indian Women,*(Delhi : OUP)

37. Geraldine Forbes (1996),*Women in Modern India: The New Cambridge History of India1V.2* (Cambridge:Cambridge University Press).

38. Aparna Basu & Anup Taneja (ed) (2002), *Breaking Out of Invisibility: Women in Indian History* (Delhi : I.C.H.R). Also see Aparna Basu and Bharti Ray(ed) (1990), *Women' Struggle : A History of All India Women's Conference,1927-1990* (Delhi : Manohar)

39. Meenakshi Thapan (1997),*Embodiment: Essays on Everyday Identity* (Delhi: OUP).
40. Susie Tharu and K.Lalita,(ed) (1991), *Women Writing in India: 600B.C to the Present*,Vol1,and Vol 2 (Delhi: Sage Publications)
41. Meera Kosambi (2007), *Crossing Thresholds: Feminist Essays in social History (*Ranikhet: Permanent Black)
42. Tanika Sarkar(1999), *Words to Win: The Making of Amar Jiban: A modern Autobiography* (Delhi,: Kali for Women)
43. P.K.Datta (1999),*Carving Blocs: Communal Ideology in Early Twientieth Century Bengal* (Delhi: OUP)
44. Padma Anagol (2005),*The Emergence of FeminisminIndia,1850-1920* (Aldershot:Ashgate)
45. Nita Kumar 2007
46. Padma Anagol(2005)…..
47. Charu Gupta (2005),Procreation and Pleasure:Writings of a woman Ayurvedic practitioner in colonial North India, *Studies in History* 21(1)
48. Ibid pg. 34
49. Ibid pg. 32
50. Anshu Malhotra (2017), *Piro and the Gulabdasis: Gender Sect and Society in Punjab* (Delhi : Oxford University Press)
51. Anshu Malhotra and Siobhan Lambert-Hurley (2017)*, Speaking of the Self-Gender, Performance and Autobiography in South Asia.*(New Delhi : Zubaan) p. 1
52. Nita Kumar (2007) p. 20
53. Vijaya Ramaswamy (2011), Gender and the writing of South Indian History in S.Bhattacharya(ed) *Essays on Indian Historiography* (Delhi : Primus) p. 200

Dr. Anisha Srivastava
Associate Professor
Department of History
Sri Aurobindo College (Eve)
(University of Delhi)

❑❑❑

Language in History, History in Language : An Overview

• **Ms. Nishtha Srivastava**

Abstract

The discipline of History has to be understood not just as an account of the past. It definitely focusses on the past, but doesn't stop there. It acquires its true meanings by engaging with the past, but for a larger purpose. History, if understood in a wider perspective, acquires significance as a dialogue between the past and the present, to deal with the future. Thus, it is a social science and needs to be interrogated, in a nuanced manner. Newer sources keep getting unearthed, and approached, as the discipline acquires newer usage. This process of relooking at disciplines is not entirely new. But it took a radical turn from the 1980s and 1990s, when questioning became profound and inter linkages became very evident. In use by not only historians, but all social scientists aware of their academic responsibilities, issues like caste, class, gender, race and language started being used, to develop arguments more authoritatively.

What is language and how is it important for a work aimed at historical investigation? Is language a 'given'phenomenon, with meanings which are universally applicable in human societies? What is the relationship between language and literature at any given point of time? Why has the study of language gained primacy for analyzing social history, nowadays?

At one level, language was of utmost importance to the British Government, in order to understand and deal with an erstwhile alien society. At the other level, language became a terrain to fight the struggle against colonialism. Language was used by the nationalist leaders, in another way, too. It became a tool to be used for *self-definition*, amongst the Indian middle class, the leaders of the

Indian national movement, in the late nineteenth and early twentieth century. Till not very long ago, language studies looked at the empirical aspect of the development of languages, in our society. The perspective of the linguist was dominating literary scholarship. Language, now is interrogated with a sociological lens.

The article, after discussing the rich historiography around this shift tries to talk about two case studies, one of the United Provinces and second of the Central Provinces vis-a-vis language, to bring out certain points of similarities, but moreso differences, as far as the issue of language is concerned. The period of interrogation is the late nineteenth and early twentieth century, when nationalism was the buzzword in North India. Language issues got associated with the effort of nationalist leaders of North India, but there was no unilinearity of approach. For the United Provinces, language got associated to the communitarian identities, by and large. It tried to construct identities of the 'self' vs the 'other' through the medium of language. On the other hand, in the Central Provinces, the issue of language was about building the identity of the 'self', and building it systematically.

Key words: Language, history, sociological, identity, consciousness, 'self', 'other', politics, differentiation, assimilation, nationalism, communalism

Language in History, History in Language: An Overview

In a day and age where meanings of every aspect associated with human existence is not only being written, erased, but also modified according to contextual realities, disciplines have flowered in exciting and challenging ways. The mindset which attributed finality to the notion of a particular discipline, is considered stereotypical, and rightly so. This development has added weight to the contents and perspectives of disciplines. Multidisciplinarity and interdisciplinarity are the buzzwords in academia today. It will be worth the effort to interrogate the linkages between language, literature and History, to impart to the disciplines more analytical attention and to make the discipline more relevant. "Language is not just an academic endeavor that needs to be studied, probed and analyzed, but it is a way of life"[1]

The discipline of History has to be understood not just as an account of the past. It definitely focusses on the past, but doesn't stop there. It acquires its true meanings by engaging with the past, but for a larger purpose. History, if understood in a wider

perspective, acquires significance as it is a dialogue between the past and the present, to deal with the future. Thus, it is a social science and needs to be interrogated, in a nuanced fashion. Newer sources keep getting unearthed, and approached, as the discipline acquires newer usage.

As a society evolves with time, its concerns widen. Thus, the need to keep adding to the sources which constitute it, and to add newer questions to already existing one. This process of relooking at disciplines gained momentum, from earlier on. But it took a radical turn from the 1980s and 1990s, when questioning became profound and interlinkages became very evident. Academia, thus, entered a very vibrant phase. History as a discipline became all-encompassing, as it was at the centre of multiple investigations. In use by not only historians, but all social scientists and with a lot of academic responsibility behind it, issues like caste, class, gender, race and language started being used to develop arguments more authoritatively. This is not to say that such issues were absent from historical studies prior to 1980s. They always were an appendage to other sources, like the economic, political, religious and so on. But with the thrust on inter-disciplinarity, they started being seen as sources in their own right.

What is language and how is it important for a work aimed at historical investigation? Is language a 'given' with meanings which are universally applicable in human societies? What is the relationship between language and literature at any given point of time? Why has the study of language gained primacy for analyzing social history, nowadays? These are only some questions which need to be addressed by academics, who are interested in linguistic studies and the interlinkages between History and languages.

"Studies of nationalism and the emergence and maintenance of nations regularly concur that language and in particular, the existence of broadly shared language is very often a primary and critical component in the successful moulding of a population as a nation."[2]One needs to understand that language was such an important ingredient for sociological study of any society, that the British Government gave it primacy, from the moment they felt they wanted to establish India as their classic colony. In the context of Modern India, "under the leadership of men like Warren Hastings and Lord Cornwallis, Edmund Burke and Thomas Munro, the British had begun by 1800 to lay out ordering principles for what was to become

the most extensive empire since that of Rome".[3]In-depth studies to do with language were carried out by the British Government, from a very long time, as part of this process. J. Z. Holwell's *Religious Tenets of the Gentoos* (1767), N. B. Halhed's *A Code of Gentoo Laws: The Ordination of the Pundits* (1776), H. T. Colebrooke's articles in the *Asiatick Researches* and significant contributions of William Jones, should be seen as attempts by the colonial scholarship, to rule India more definitively and authoritatively.

The ventures carried on by Orientalists should be seen as serious attempts to engage with indigenous texts, and come out with extensive translations. Preparation of census records, gazetteers, linguistic survey reports and such other enumerative practices were carried out by the colonial authorities, on a continuous basis. "Enumeration as a historical practice activated specific political processes of reconstructing the dominant linguistic identities from late nineteenth century onward"[4] Walter Hamilton's *A Geographical, Statistical and Historical Description Of Hindostan and the Adjacent Countries,* 2Vols, London 1820 can be seen as the first extensive effort to produce a Gazetteer of an all- India level. The establishment of the Fort William College in 1800 to train members of the Indian Civil Services in Indian languages and cultures can be seen as an extension of such efforts. Classification, codification, enumeration, familiarity with the dominant Indian language were well thought of processes, theoretically to fulfill the White Man's Burden, but at a practical level, it can be understood as an effort to tighten colonial stranglehold over the people of India. "Between 1850 and 1870, there was consensus amongst comparative philologists in Europe, that linguistic criteria were indeed the most reliable in determining the classification of the various races of mankind."[5]

What is significant to point here is the fact that such processes did not go unnoticed by the Indians. This was perhaps, the first time when definitions were being formalized, as far as various facets of human existence were concerned, in a particular way. This gave birth to a certain kind of consciousness, which gradually gave birth to unprecedented identities. A clear understanding of the late nineteenth and early twentieth century, which is the focus of this article, needs to be emphasized. This was a time when the sentiment of anti-colonialism had got rooted in the minds of the Indian middle class. Language became a terrain to fight the struggle against colonialism.

Language was used by the nationalist leaders, in another way, too. It also became a tool to be used for self-definition, amongst the Indian middle class. “Nationalist activity was as much political as social and economic. It was influenced by societal, educational, cultural, and economic permutations. Simultaneously, it affected these different phenomena. Thus, the national movement cannot be regarded in isolation.” [6]

Linguistic diversity was the abject reality of the Indian society. It was because of colonial policies and practices, as well as processes of self -definition and self-assertion that language became, a very contested terrain in the late nineteenth and early twentieth century. “ Nationalism is not a natural phenomenon, not a product of “eternal” factors at a certain stage of History.”[7] It needs to be added that the spirit of nationalism did not evolve in a political vacuum. It took different forms and acquired various meanings, for the colonizer as well as for the colonized.

By the late nineteenth and early twentieth century, national movement had got associated with the middle classes, inextricably. But we cannot negate the simple fact that the middle class that came up in India was not, solely an indigenous development. At one level the socio-religious reform movements had gained profound importance in the Indian society, and at another level English education and its rapid spread was making the Indian society aware of the contradictions of the Imperial government. The Hindu socio-religious reformers were trying to chart an identity, which would give Indians an exclusive and glorious heritage. This, in turn, would lead to justification of the superiority of Indians (read Hindu) over the westerners. Movements which were attempting to bring social and religious reforms- both reformist and revivalist in nature, played a pivotal role in the process of identity formation of the people, in general and the middle classes, in particular. The middle class was not a monolith category, at this time, as always in India. “ ….. traditional sociological indicators of income and occupation cannot take us very far in understanding the social category of the middle class. Though its economic background was important, the power indeed the constitution of the middle class in India, as perhaps over much of the world, was based not on the economic power, it wielded, which was minimal but from the abilities of its members to be cultural entrepreneurs.[8]

Language was used by the middle classes as part of identity construction of the ‘self’ as well as the ‘other’. It was as much

about self-fashioning, as about defining the other. The middle classes pitched at two directions. At one level, they acquired English education, to become informed about what was happening in the world, gain universal acceptability and also become eligible for employment being offered by the colonial government. At the other, they became critics of the colonial stranglehold, and gave form to one of the most extensive national movements.

Gandhi took up the cause of language very vehemently. Initially and for a very long time, he believed that Urdu, Hindustani and Hindi denoted the same language in North India. He goes on to say that this language could be written in the Persian or Devanagri script. "Ultimately when our hearts have become one and we all are proud of India as our country, ….we shall reach a common language with a common script, whilst we shall retain provincial languages for provincial use. The common language question should be viewed apart from the religious differences."[9]

The fact of the matter is that though leaders were talking about languages as well- defined entities at this time, the languages were also undergoing constructions. Thus the form taken by languages- be it Hindi, Urdu or Hindustani, was a subject of great anticipation. This is where the middle classes started playing a pivotal role, in manoeuvering about the form of Modern Hindi. For them, Hindi became a base on which they could build their socio-political existence. "In a fiercely competitive colonial world in India, languages thus gave enormous impetus to the forging of cultural identities on the basis of social divides, of invariably fed configuration of colonialism and nationalism, class and gender."[10]

The most popular medium through which language reached the people was the print. "….. With the introduction of print and standardization of vernacular languages, an exclusive sphere for each language was created."[11] Though the sphere was created, this should not imply that languages were in a standardized form, at the outset. The players of this story should not be limited to the creators of the linguistic resources, the writer, editor, publisher, printer, only. One cannot ignore the audience, who were equally important in this process. It is not accidental that from the mid and late nineteenth century, one has the production of grammar and dictionaries, which recorded the minutest details of the language. But such developments were not just for the love of the language. It should be understood as part of standardization techniques to make the language more accessible, palatable and convenient, to win newer pastures.

In the recent past, there have been phenomenal scholarship associated with language and history. But this is not to say that languages were not a subject that had been studied beforehand. As mentioned above, the colonial government had studied languages of India, right from the late eighteenth century. But their focus had been on study of language to understand an erstwhile alien society. From the 1940s, linguists like Suniti Kumar Chatterji[12]tried to deal with the issue of languages, keeping in mind the diversity of Indian languages. For him the national language of India was to be simplified Hindi or Hindustani written in a modified Roman alphabet, retaining all naturalized Persian and Arabic words, and borrowing from Sanskrit too.

Around 1970, an important intervention associated to this aspect was that by Jyotirindra Das Gupta [13]who emphasized on the language politics that evolved in India. The book has tried to study political development of modern India by emphasizing issues around language, both during the colonial period and post Independence.

Paul. R. Brass,[14] in his path breaking work has talked about the significant relationship of language, religion and politics as far as North India is concerned. Sisir Kumar Das[15] worked on the Indian literary history. According to him, literary history, to be a viable proposition, has to connect to texts of diverse times, and place each one of them in its context. Christopher R. King[16] in his work 'One Language Two scripts' has talked extensively about how politics around language in North India shaped the discourse of concepts like nationalism and communalism in India during the nineteenth and twentieth century, and one needs to understand the complex relationship between religion and language and how it led to a specific identity-formation. In keeping with this tradition, Vasudha Dalmia[17] in her work, examined the process which led to the construction of modern Hindi, first as the language of the Hindus and later as to how it became the language of all the nationalists in India. Alok Rai[18] tried to problematize the issue of language,keeping the contradictions of the times, at the centre. According to him, though Hindi was the most apt language to aspire for national status, as it got enmeshed with the politics of the times, it came to be associated with the imperialism of the North. Gradually, it experienced resistance from other quarters. He says that the making of the Hindi *bhasha* and the Hindus were related to each other. Veena Naregal[19] has tried to discuss the historical trajectory that British colonialism followed in the nineteenth century, and how it includes ideological and cultural dimensions,

rather than just economic. According to her, the age of Indian nationalism saw a close relationship which developed between language, religion and polity. Francesca Orsini [20] studying the language politics of North India and the role of print in the publishing of Hindi literary journals, charted the development of a novel but limited public sphere, which was desirous of impressing its supremacy. She talks about how public activism worked towards the standardization and institutionalization of Hindi language and literature. Another historian, Sheldon Pollock,[21] tried to reflect upon the relationship between language and human society. Literary cultures and their institutionalization was his focus. At the centre of his argument was the question as to how certain communities came to be made and the role of language in this process.

'India's Literary History' tries to study the nineteenth century, modern literary-historical sensibility, "as part of a gradual sphere movement from merely recording the past to rewriting it within a wider public debate about national origins, linguistic identities and political entitlements."[22]

Anindita Ghosh[23] has tried to look at the question of language and its relations with the existing power relations, prevalent in any/every society. Language, thus represented the status of its speakers and led to the construction of *social* identities.

Another work which deals with the issue of language around book production is that of Ulrike Stark.[24] It tries to study the social, sociological, cultural, political, and material aspects associated with the production of books in nineteenth century North India. Talking about print as it came up as an institution of the urban society, it highlights the multivariate nature of the same

A volume edited by Shobna Nijhawan[25] talks about the need of creating forums by the emerging professional classes of North India, where they could organize themselves, socially, culturally and politically. This need was fulfilled by the movement which began to project Hindi as the language of the nation.

Making an indepth study of the literary world of the Tamil society, A.R.Venkatachalapathy[26] in his book writes about how the world changed from manuscripts to print. He also talks about the difference between printing and publishing, where printing was to do with a technology, while publishing was a wider social practice.

Mithilesh Kumar Jha[27]has talked about language , focus being on Maithili, to study linguistic communities. He has tried to explore

as to how through the usage of Maithili, an erstwhile traditional society had engaged with contemporary modernity,

More recently, Pankaj Jha[28] has written on Vidyapati and the fifteenth century. He has examined the relation between language, literature and politics of the society through the writings of Vidyapati published in Mithila. For him, literary compositions are historical products, which enunciated cultural discourse, most aptly.

This considerably lengthy discussion on the historiography of language studies in India has been included above, for a reason. Till not very long ago, language studies was looking at the aspect of the development of languages in our society. This meant that the perspective of the linguist was dominating literary scholarship. But, the above mentioned discussion is ample evidence of the shift that has taken place, from the late twentieth century. Language, now has been interrogated with a sociological lens. In simple terms, the focus of the study shifted from what was language to the question of what the language was doing to a society, an erstwhile society, struggling under the colonial stranglehold. As the details of works show, that the focus shifted from language per se to people and their histories, vis-à-vis language. Rich historiography also reflects the immense variety and regional differences around the subject. Thus, unilinear understanding is inappropriate to understand the multiple contours around the issue of language.

In keeping with this understanding, the rest of the article tries to take two case studies, one of the United Provinces and second of the Central Provinces vis-a-vis language, to bring out certain points of similarities, but moreso differences. Though, this will not be done very comprehensively, due to constraint of space, the discussion would be adequate to understand the issue, in a contextual way.

As far as the United Provinces was concerned, the issue of language and script became reflective of the contradictions as it evolved in the late nineteenth and early twentieth century. “A series of interrelated vernaculars had begun evolving across a large part of North and Central India from around the thirteenth-fourteenth centuries:*Hindavi/Hindi, Avadhi, Brajbhasha, Khari Boli, Maithli*and *Hindustani* as something like a lingua-franca “[29]

The understanding of Hindi emblematic of the Hindus and Urdu being connected to the Muslim community was also

something which had been propagated in the nineteenth century. Infact, Premchand considered to be the litterateur par excellence of North India of those times, had written most of his earlier works in Urdu. Some significant facts would indicate the direction which the issue of language took in United Provinces. In 1837, Urdu replaced Persian as the language which would be used in the subordinate offices and courts of North India. In 1875, the Muhammadan Anglo-Oriental College was founded in Aligarh , which was to use Urdu, as the medium of instruction. But by the third decade of the nineteenth century, the movement associated with the Hindi language gained primacy. In 1875, Arya Samajwas founded in North India with the motive of helping with the promotion of Hindi. Very soon, Arya Samaj spread its stronghold in many parts of North India. By 1880s, the colonial government started taking an active role in this debate. It was in 1887 that the controversy between *Khari Boli vs. Braj Bhasha* swelled up. In order to work towards the propagation of Hindi language, in a systematic fashion, the Nagari Pracharini Sabha was founded in Banaras in 1893.Within a span of few years, i.e, in 1898 Banaras got its Central Hindu College, and for the first time, Hindi was included in its curriculum. In 1900, government gave Nagari equal status with Urdu script. AnjumanTaraqqi-e-Urdu was founded in 1903. Hindi Sahitya Sammelan was founded in 1910, in the United Provinces with the motive of the propagation of Hindi language and the Nagri script. The issue of the Hindi language as the national language was taken up by Gandhiji, at the national level at Bharauch in 1917. In 1921, Congress accepted the principle of linguistic provinces. Hindi and Urdu became regular degree courses in the universities of United Provinces in 1923. Education and employment are mutually dependent on each other.”The *Urdu-Nagari* controversy was bound up with the question of employment and helped to sharpen, if not at times initiate, a growing division between the Muslim and Hindu literati”[30]Many advertisements of jobs categorically mentioned that knowledge of Hindi was their essential qualification.

Education was also related to the literary publications in the sense of how they were produced, as well as disseminated in the society. Books and journals are produced keeping their clientele in mind. “In the expanding world of North Indian vernacular publications, the once dominant Perso-Arabic Urdu medium was being steadily displaced by *Devnagri Hindi*. Between 1915 and 1940, the total number of titles published annually in the United

Provinces in Urdu went down from 334 to 209: the corresponding figures for Hindi titles went up from 870 to 1548."[31] Engaging with contributions of litterateurs like Mahavir Prasad Dwivedi and political leaders like Madan Mohan Malviya can help us in understanding how this process was shaped in the United Provinces. The process of constructing the 'self' vs. the 'other' should also be included in this account. In the United Provinces, thus, language gave birth to identities created by differentiation. It became a struggle for supremacy, where Sanskritised Hindi was quite successful in laying claim to dominance.

As opposed to the United Provinces, Central Provinces, again an inherent part of the Hindi heartland had a very different trajectory when it came to the issue of Hindi language. The Resolution of 2nd Nov 1861 by which Government of India formally established the Central Provinces says that-

"The Sagar-Narmada Territories conjoined with the Province of Nagpur, form a compact area of about 90,000 sq. miles with a population of more than 6 million souls and revenues amounting in the total to about three-quarters of a million sterling per annum. And although within the limits of this area, some varieties of race, language and custom exist, yet many of the districts, tribes and classes which it comprises, are either quite homogeneous or have a strong resemblance and affinity to each other" [32]

Berar was joined to the Central Provinces in 1903.The decision of the Nagpur session of the Indian History Congress held in 1920 had far reaching consequences. for the history of India. It was in this session that the proposal of linguistic principle becoming the basis for realignment of provinces, was laid down. Provincial Congress Committees were formed, on that basis. This resulted in grouping of the Central Provinces under three Committees, the Berar later called Vidarbha Provincial Committee, the Hindi CP, later called Mahakoshal Provincial Committee and the Marathi CP, which became later the Nagpur Provincial Committee. This had a significant consequence in the growth of the national movement in Madhya Pradesh. Prior to this, all political activity related to Central Provinces were centred at Nagpur, but post 1920s, Jabalpur and Amravati, which were the centres of the other two provincial committees also became active centres, for work being done by the Indian National Congress. The Census of 1881 clearly demarcated the distribution of population of the Central provinces on the basis

of language . Dialects like the *Bundelkhandi, Baghelkhandi, Chattisgarhi* and *Rajasthani* were also prevalent in the Provinces, but they got attached to the Hindi language. This led to the swelling of numbers as far as Hindi language was concerned. This was happening at a time when numbers were very important. People were shifting from dialects to mainstream Hindi as mainstream Hindi offered more advantages to the people. Some important names of famous litterateurs of Central Provinces include Pt. Madhao Rao Sapre, Makhanlal Chaturvedi, Siddhnath Madhav Agarkar, Master Baldev Prasad, Kuldeep Sahay, Ravi Shankar Shukla, Lakshman Singh Chauhan etc. who took up the cause of Hindi as the *rashtra bhasha*. But what is striking is that in Central Provinces, the tone of the language movement was not that aggressive. Efforts were more towards solidifying the language by strengthening its infrastructure, by instituting examinations, competitions, *sammelans*, rather than playing the card of the 'self' vs. the 'other'. There was also an emphasis on simplifying the Hindi language, to make it more popular, amongst the general populace, rather than trying to make it more classical and sanskritised. It is worth mentioning that leaders of Central Provinces had played a pivotal role in the Constituent Assembly to stake claim for Hindi as the *rashtra bhasha*. Even the translation of the constitution in Hindi was supervised by Shri Ghanshyam Singh Gupta of the Central Provinces and Berar. What is profound in all this is the fact that stalwarts of Central Provinces and Berar contributed in the field of language, by following the politics of assimilation

In conclusion, one can say that language assumes immense importance in historical studies because of its omnipresence in the social existence of human beings. But, it reaches its users through varied mediums and has contextual realities. It is an important source for historians, as it is not only a reflection of its society, but also what makes that society. It is as much about people as about being a medium of exchange.

References

1. Papia Sengupta (2018). *Language as Identity in Colonial India,* (Singapore: PalgraveMacmillan), pg. viii
2. Andrew Simpson (2007). *Language and National Identity in Asia,* (Oxford: OUP), pg.1
3. Thomas. R. Metcalfe (1995). *Ideologies of the Raj* (The New Cambridge History of India III.4), (New Delhi: Cambridge), pg. 2

4. Asha Sarangi (Aug, 2009). 'Enumeration and Linguistic Identity Formation in colonial India', *Studies in History (New Series)*, 25.(2), pg.198
5. Vasudha Dalmia (1997).*The Nationalization of Hindu Traditions: Bharatendu Harischandra and Nineteenth Century Banaras,* (Delhi: Oxford India Paperbacks), pg.40
6. Kirti Narain (1998). *Press, Politics and Society- Uttar Pradesh (1885-1914)*, (India: Manohar),pg.283
7. Hans Kohn (1944),*The Idea of Nationalism : A study in its origins and background,*(New York: Macmillan), pg.6
8. Sanjay Joshi (2001). *Fractured Modernity- Making of a Middle Class in Colonial North India* (Delhi: OUP), pg.2.
9. Compiled by Z.A. Ahmad(1941). *National Language for India- A Symposium* (Allahabad: Kitabistan), pg.39
10. Anindita Ghosh (2006). *Power in Print: Popular Publishing and the Politics of Language and Culture in a Colonial Society 1778-1905* (New York: OUP), pp2-3
11. Mithilesh Kumar Jha (2018).*Language politics and public sphere in North India:- Making of the Maithili Movement,* (India: OUP), pp.3-4
12. Suniti Kumar Chatterji (1943). *Languages and the linguistic problem* (Oxford Pamphlets on Indian Affairs No. 11) (London, New York:OUP)
13. Jyotirindra Das Gupta (1970). *Language Conflict and National Development- Group Politics and National Language Policy in India* (Berkeley:University of California Press)
14. Paul. R. Brass (1974). *Language , Religion and Politics in North India,* (New Delhi: Vikas)
15. Sisir, Kumar Das(1991). *A History of Indian Literature 1800-1910, Western Impact : Indian Response Vol VIII,* (New Delhi: Sahitya Akademi)
16. Christopher .R. King (1994). *One Language Two Scripts- The Hindi Movement in Nineteenth Century North India,* (New Delhi: OUP)
17. Vasudha Dalmia (1997). *The Nationalization of Hindu Traditions: Bharatendu Harischandra and Nineteenth century Banaras,* (Delhi: Oxford India Paperbacks)
18. Alok Rai, (2001). *Hindi Nationalism- Tracts for the Times,* (Delhi:Orient Longman)
19. Veena Naregal (2001). *Language Politics, Elites and the Public Sphere: Western India under Colonialism* (New Delhi: Permanent Black Monographs: The 'OPUS 1'Series)

20. Francesca Orsini (2002)*The Hindi Public Sphere 1920-40- Language and Literature in the Age of Nationalism* (New Delhi :OUP)
21. Sheldon Pollockeds, (2003). *Literary Cultures in History : Reconstructions from South Asia* (Berkeley: University of California Press)
22. Stuart Blackburn and Vasudha Dalmia (eds) (2004). *India's Literary History- Essays on the nineteenth century* (Delhi: Permanent Black), pg.2
23. Anindita Ghosh (2006).*Power in Print : Popular Publishing and the Politics of Language and Culture in a Colonial Society (1778-1905)* (New Delhi, OUP)
24. Ulrike stark (2007). *An Empire of Books – The Naval Kishore Press and the diffusion of the printed word in Colonial India* (New Delhi: Permanent Black)
25. Shobna Nijhawan (eds) (2010). Nationalism in the Vernacular: Hindi, Urdu and the literature of Indian Freedom (New Delhi: Permanent Black)
26. A.R. Venkatachalapathy (2012). *The Province of the Book: Scholars, Scribes and Scribblers in Colonial Tamil Nadu* (Ranikhet: Permanent Black)
27. Mithilesh Kumar Jha (2018). *Language politics and public sphere in North India: Making of the Maithili Movement* (India: OUP), pg.2
28. Pankaj Jha (2019). *A Political History of Literature: Vidyapati and the Fifteenth Century* (New Delhi: OUP)
29. Sumit Sarkar (2014). *Modern times: India 1880s-1950s- Environment, Economy, Culture* (Ranikhet: Permanent Black), pg.342
30. Krishna Kumar (1990). Quest for self-identity: Cultural consciousness and education in the Hindi region (1880-1950), *Occasional Papers on perspectives in Indian Development No. XVI* (Delhi: NMML), pp.4-5.
31. ibid, pg.344
32. Dwarka Prasad Mishra (ed) (1956). *The History of Freedom Movement in Madhya Pradesh* (Madhya Pradesh: Nagpur Government Printing), pg. 109.

Ms. Nishtha Srivastava
Assistant Professor
Shivaji College, Delhi University

❑❑❑

The Economic Conditions of Haryana Region During the Eighteenth Century : Revisiting the 18th Century Debate

Dr. Bhupinder K. Chaudhry • Dr. Rajshree Dhali

The scholars working on medieval India has done enormous research on Mughal period and have produced huge corpus of knowledge including on Eighteenth century when the Mughal Empire was fast disintegrating. The nature of Eighteenth century is highly contested domain among historians particularly belonging to Cambridge school, those who concur with them in India and historians lead by a group of scholars from Aligarh Muslim University, India. While emphasis is laid on several parts of the country, Haryana somehow has escaped the attention of the scholars of Medieval Indian History. Let alone social and economic conditions, even political conditions prevailing in Haryana during the Mughal period have not been properly researched. The present paper attempts to throw light on agrarian and non-agrarian economy of Haryana region during the Eighteenth century as a part of socio-economic formation of pre-modern Haryana.

The Eighteenth century in Indian history becomes interesting as its interpretation by scholars have generated an intense debate where some have argued it to be a century marked by political anarchy and economic decline whereas others calling it an era of progress where regional economies, art and culture flourished. The scholars who have researched Eighteenth century can be divided into two camps, one who understood the unfolding of the century under the influence of Mughal Empire and those who studied it in its own term.

Irfan Habib argues that in the first few decades of Eighteenth century the administrative control of Mughal Empire began to crumble and *ijara* system (sale of tax farms) became more and more popular. This in turn increased pressure of land revenue forcing peasants to either flee from land or rise in revolt. This had adverse effect on expansion of peasant settlement an essential feature to increase revenue of the stare. Breakdown of collaboration between Zamindars and Jagirdars created a chaotic situation where decline in agricultural production was imminent.[1] Irfan Habib quotes several studies to establish that in a situation where all factors associated with Mughal Empire were getting weakened, it would be hard to argue that trade and commerce and towns did not decline.

With regard to non-agrarian and trade economy, the East India Company was considered an imposition that destroyed the traditional economy. After the battle of Palassy and grant of *Diwani* of Bengal Suba the British did not require paying in Bullion. As a result the inflow of bullion in India reduced significantly which in turn caused inflation and intensified drain of wealth.[2] Both P.J. Marshal and C.A. Bayly belonging to the group who studied the century in its own terms argued that the economic slump did exist before the takeover of Bengal Suba by the British which in fact began to reverse subsequent to the establishment of the British control. Local markets began to respond to the enormous increase in export from Bengal. They believe that despite worsening of the terms and conditions underwhich the artisans and suppliers worked, the trade, manufacturing or agricultural production of the region showed no sign of deterioration and continued unhindered even after the Company acquired the political power. C.A.Bayly, Muzafar Alam and several others believe that decline of Mughal Empire unleashed the suppressed energies and as a result new classes of intermediaries, townsmen, traders and service gentry emerged and economy agrarian as well as non- agrarian flourished.[3]

Haryana region does not claim the same historical status as Bengal, Punjab or Gujarat. It has always been considered as a sub-region or sub-tract in the historical writings. It is sandwiched between the desert of Rajasthan and Punjab. It is separated from

the Doab region by the river Yamuna. Being closest to the imperial capital, Haryana had to shoulder the responsibility of providing food grains and other material goods to the nobility and the people living in Delhi. Its hinterland covered several important trade routes. In the 14^{th} century a trade route ran from Ghazni and Kabul to Multan and further to Delhi via southern Punjab and Haryana. Ibn Batuta travelled from Ghazni to Delhi via Abohar, Sarsuti (Sirsa) and Hansi. In the seventeenth century two routes from Afghanistan joined at Lahore. From Lahore the routes ran across North-eastern Punjab and Northen Haryana. Before turning south at Ambala, it marched parallel to Yamuna before reaching Delhi. Most of the towns of Haryana sprang on these routes. Throughout the Sultanate and Mughal periods Haryana region acquired a strategic significance from trade and defense point of view. All invaders from North-West frontier passed through this region. Despite resistance, they had to capture the region in order to reach Delhi.

In Ain-i-Akbari Haryana region is shown to have comprised of seven *sarkars* and sixty nine *parganas*. These *Sarkars* were those of Delhi, Hissar-Firoza, Tijara, Sehar, Sirhind, Narnaul and Rewari. The major part of Haryana fell in Delhi and Agra *Subas*. The land of Haryana region can be divided into three belts on the basis of the nature of soil. They are Southern belt, comprising of the *pargana* of Palwal, Hodal, Faridabad, Gurgaon and Rohtak. The Western belt comprised of the *pargana* of Hissar, Sirsa, Hansi, Fatihabad, Chalkalyana and some parts of *sarkar* of Narnaul and Rewari. North-Eastern belt included the *pargana* of Karnal, Panipat, Ambala, Shahbad and Kaithal.

With the disintegration of the Mughal Empire in the early eighteenth century, like other provinces, this too witnessed political turmoil. The central command and control vanished. The region was run over by Marathas and Sikh depredators, who either looted the people, went back or began to rule certain parts of it. The declining Mughal Empire provided a breathing space to the erstwhile zamindars and mansabdars to realize their desire to be independent rulers. New princely States began to emerge. The withdrawal of one big umbrella Empire gave birth to numerous principalities and kingdoms. Haryana too witnessed the formation of several principalities. Bahadurgarh, Ballabhgarh, Dujana,

Farrukhnagar, Jhajjar, Loharu, Pataudi, Chhachhrauli, Jind were some of the princely States born in the aftermath of the Mughal Empire. The Eastern region was controlled by independent principalities of Ambala, Thanesar, Buria, Ladwa, Kaithal and Kalsia. After the second Anglo-Maratha war these princely states were taken over by the British.[4]

Agricultural Production and Political Developments :

The social and economic structure of medieval India was overwhelmingly based on agrarian economy. A major section of society was engaged in the agrarian production process and formed the most important component of the village society of medieval India. The decline of Mughal Empire caused by brewing tension between highly organized revenue collecting machine and increasing incapacity of the peasants to pay leading to numerous revolts lead by the zamindars could not be a smooth process. This must have caused colossal political and social upheaval leading to disruption of agrarian and trade activities in the region. Insufficient archival sources make it difficult to establish it by giving year wise data of agricultural production and trade volume. Nevertheless, a broad trend can be established by limited data available for the region and extrapolating it along with the scenario that was developing in neighbouring *parganas* of Braj, Mewat and others belonging to Amber state. The archival sources of some *parganas* belonging to Haryana suggest decline in agricultural production and trade activities in the region during the period under study.*Batai-Jinsi* (Revenue collected in kind) and *zabti* (Revenue collected in Cash) were two dominant system of revenue assessment in the region. Food crops were mainly assessed under *Batai-Jinsi* and Cash crops under *zabti* system.[5]From the year 1761 to 1766 area under *zabti* systemin *Pargana*Narnaul increased suggesting increase in area under cash crops and vegetables. The decline in food crops might have been caused owing to uncertainty of trade as most of the food crops were sold in the grain markets of Delhi and exported to other regions through trade routes passing through Haryana.[6] The vegetables and cash crops on the other hand could either be sold in the local markets or consumed locally. The records available for the year 1761 to 1771 show the shift in the crops grown from

cereal crops to cash crops. 69.7 percent of the *zabti* land in *Pargana* Narnaul was cultivated under vegetables crops during the Rabi season.[7] The evidences of 1765 shows the predominance of vegetable crops in *bighas* (unit of land) assessed under *zabti* system. The area under vegetable crops in 1765AD constituted 92.2 percent of the total cultivated area. Area under cash crops which was 27.2 percent a year ago declined to 7.2 percent this year. The area under cereal crops also decline suggesting a secular decline in agricultural output.[8] Both in the years 1770 and 1771AD the area under vegetable cultivation grew significantly. In the year 1770AD 89.1 percent and during 1771AD area under vegetable cultivation was 70.4 percent.

Table : **showing revenue collected in Mounds from** Page 00

The data of the area cultivated under *zabti* system during the seventh decade collated in the table below establish a steady decline in the revenue collected in kind under *batai-jinsi* system. This decline explicitly shows that either the area under *batai-jinsi* system had declined or the revenue collected in kind did not reach the state in full. This could not have been possible if political turmoil in the region was not underway. The fact that Haryana region was also not aloof from the ongoing social and political upheaval is partially indicated from scanty sources of peasants or zamindars not paying the revenue or had revolted. *Pargana* Narnaul was declared "*Jortalab*" (Rebellious)and was given on *Ijara* in the year 1768AD. The revenue collected through *Ijaradar* was Rs. 9342 and 4 *Annas*.[9] The document records that the *bhomia* (zamindar) of one village Bhakhri had embezzled the revenue of the village.[10]It seems that during this period of trouble the area under cultivation might have declined.

During the early seventies of the Eighteenth century the crops under *zabti* and *batai* areas were almost equal in numbers.[11] The total number of crops during these years had declined considerably.[12] The number of crops during the year 1764AD in the *Pargana* Narnaul was 12 in the *kharif* harvest and 17 in the rabi.[13] But the *kharif* and *rabi* crops sown in 1772 AD were only 10 and 7.[14] The same trend is visible during 1773 when only 10 crops were sown in the *kharif* harvest and at the time of rabi the *pargana* was given on *Ijara.*[15] This declining number of crops in the *pargana* and in the end giving the charge of the *pargana* to *Ijaradar* indicates some kind of disturbance. The *bhomias* of the *pargana*

Table showing revenue collected in Mounds from *Batai-Jinsi* areas.

Year	Wheat	Barley	Bajara	Jowar	Ghaghlo	Mustard	Gram	Gochani	Moth	Til
1761	2875.75	5337.4	–	–	–	22 sers	58.12	1.32	–	–
1764	3379	10299.1	288.4	1739.5	–	15	106	42.5	662	3
1765	167	511.27	626.19	3178.3	128	–	7.6	–	21.17	2.1
1766	3385.1	7422	1286	2420	–	17.2	29	–	333.1	1.1
1770	2673	5934	19.15	149.29	41.38	37	–	–	18.10	–
1771	1959	4876	759.28	2402	14.25	11	43.32	–	308	5.1
1772	985	2869	109.26	809.36	–	–	9.11	–	113	3
1773	–	–	126	956	37.29	–	–	–	–	–

might have refused to pay the state's share and become rebellious. previously also the *pargana* was handed over to the *Ijaradar* and out of total of 175 villages of the *pargana* 22 villages were declared rebellious (*zortalab)*.[16]

Due to the increasing trouble, the state's share in the area under *batai-jinsi* declined as shown in the table. The number of crops had declined. In the year 1766AD the state's share in wheat production in the *pargana* Narnaul was 3385 *mans* and 16 *sers* (man and ser were Units of weight). But in 1772AD it was reduced to 985 *mans* only. Similarly in the case of barley the state's share was reduced from 10299 *mans* in 1764 AD to 2869 *mans* in 1772 AD. In the case of Jowar state's share came down from 1739 *mans* in 1764 to 956 *mans* in 1773 AD.

One can speculate on the reasons for the declining share of the state in agricultural production as discussed by Irfan Habib in his book, Agrarian System of Mughal India**.** Jagirdars during the mughal period could not manage the jagirs as they pleased and had to conform to imperial regulations. But in the later part of the 17th and early 18th centuries there seem to have been a tendency, increasing in its effect with passage of time, to raise the revenue demand to a still higher magnitude derived from the very nature of the jagirdari system. Under these conditions, it must have been inevitable that the actual burden on the peasantry became so heavy in some areas as to amount to depriving it of the means of survival. The collection of revenue of this magnitude from peasants who had no possession or assets from which to pay could not be healthy development. When "*arrayatis*" (Raiyat-peasants) could not pay the revenue, they were subjected to punishments. Ultimately the peasants either started abandoning the lands to migrate to those parts of the country where repression was less, or took up arms largely under the leadership of zamindars (*bhomia)*. This ultimately led to the decline of agricultural production. Consequently share of the state also declined. The embezzlement of the entire revenue by the *bhomias* of their respective zamindaris can be another reason for the decline of agricultural production. Since *bhomias* had close social ties with the peasantry owing to their social customs and caste factors and they needed money to maintain an army or built a fort, it became easy for them to extract revenue from the peasantry and use it for their fight against the imperial forces. In Narnaul *pargana* during 1768 AD the peasants under the leadership of *bhomia* became rebellious and the

bhomia had embezzled the revenue of a village.[17] Paucity of the sources, however, limits our understanding of such developments in other parts of Haryana. But if one looks at the adjoin regions in the eastern Rajasthan numerous evidences of embezzlement of revenue by *bhomias* and peasants rising in revolt are available.

During the period under study, Rajputs, Jats, Meos, Khanzadas and Minas were the zamindars (*bhomias*) in Mewat Region.[18]The most recalcitrant element among the Zamindars was the Naruka segment of the Kachhwaha clan. There are numerous references of the seditious activities of the Naruka Zamindars. In a number of documents they have been accused of forcibly collecting the land revenue and its misappropriation at the cost of jagirdars. They embezzled entire *hasil* of Twelve and half villages in *pargana* Toda Bhim[19] and thirteen villages in *pargana* Hasanpur[20]and all villages in *pargana* Khohri.[21]The imperial jagirdars complained to the Mughal court that the *Narukas* plundered 4 lakh rupees from 14 *parganas* of Alwar *sarkar*. The imperial jagirdars even after using the military force could collect only 3000 mounds of food grains.[22]The attitude of other Rajput Zamindars was almost similar to that of the Narukas. We find that land revenue of 84 villages in *pargana* Gijgarh, Salawad, Udai and Hasanpur was embezzled by the Panchnots and Chauhan zamindars who refused to pay arrears of revenue to the zamindars.[23] Saifu Khan, an imperial manasabdar was informed by the *vakya newis* (News Writer) that his Jagir was plundered by the Panchnot Rajput zamindars. They carried away food grains, horses and Rs.20,000/- with them. Jaswant Singh Kalnot an *ijaradar* of the village in *pargana* khari embezzled the land revenue to two villages.[24] The Jat zamidars were also actively indulging in robbery and plundering in the *sarkar* of Alwar and *Sahar* and whole region between Akbarabad (Agra) and Shahjahanabad (Delhi).[25] *Pargana* Khori was also captured by Jat zamindars. The imperial jagirdar lodged a complaint in the mughal court that the Jat zamindars, Churaman Badan Singh and his allies had not deposited the land revenue of 75 villages in pargana Khori and Pahari.[26]

Non-Agricultural production and Trade :

The artisans and traders formed an important section of the village society in medieval India. The peasants in the villages did most of the work of agriculture proper and their wives carried out the house –hold chores. But the work requiring special skill such as iron-smithy, carpentry or leather work, weaving or dying or work

meant for the whole village was performed by men of the castes whose special occupation it was and they were usually paid in kind.[27]Almost all the implements were made by the village carpenter, blacksmith and leather worker in return for their customary dues. The cost of making and repairing various articles concerning agriculture was borne by the peasant. The zamindars had to pay only the cost price of the material used unless he provided it himself. Sometimes even the cost price of the material was not paid.[28]There is little reason to doubt that the bulk of the rural manufacturers in this period were produced by the hereditary artisan castes bound to the dominant agriculturist castes by traditional ties of the client-patron relationship and collectively maintained like their fellow service caste groups. Hereditarily fixed share of the village produce constituted their main income.[29] Haryana region during the Eighteenth century had very few manufacturing industries. There were no factories beyond the cotton ginning at Hansi, Bhiwani and Hissar *pargana*.[30] A large income was generated by the sale of cattle in these *parganas*, a point that was not overlooked in the assessment imposed on the peasantry. In Narnaul *Pargana* shoes, silver buttons, nut crackers, and '*payas*' (legs) for bed were manufactured. All these articles were for local trade.[31] The '*Phulkari*' or silk embroidery of the village maidens of Hissar and other Parganas was considered excellent.[32] Some manufacturers in the villages of Karnal *pargana* in the North-eastern belt were weaving in cotton and wool soap making and also pottery and bricks and minor handicrafts such as the making of baskets and mats.[33] The city of Karnal was famous for the manufacture of copper and brass vessels and skin jars (*kupa*) for holding '*ghee*' and oil. These copper and brass vessels and skin jars were exported from the city in considerable numbers. Apart from all these, there also existed a glass foundry.[34] Apart from the inter *pargana* trade Haryana's hinterland covered many important trade routes. Two such major routes passed through Haryana region were Surat to Qandhar via Panipat, Ambala, Lahore and Kabul and from Surat to Qandhar via Hansi, Hissar, Bhatnair and Kabul. Kabul had for ever been a great commercial center, a meeting place for merchants from Iran and countries to the North and a depot for goods entering the Punjab via Khaibar pass and then down the Grand Trunk road to Lahore and further to Delhi via Panipat and Karnal in the Haryana region. Trade of various *parganas* of Haryana with other parts of the Empire in various

commodities supported the economy of the region considerably. Some of the articles like Metals, Tobacco, Drugs and Spices etc. were imported in the *pargana* of Sirsa from Delhi and Bikaner.[35]

During the Eighteenth century Haryana region passed through what might be called an intermediary economy which functioned neither at the level of *bazars* of the large towns nor in the village periodic marts (*hatts*) where peasants exchanged petty commodities amongst themselves but in the fixed gentry seats (*qasba*) and the fairs organized from time to time. It were the traders and manufacturers who flourished in this intermediary economy. Attendance in fairs or 'melas' which combined devotion and amusement constituted one of the few pleasures of the ordinary peasants. Some of the important fairs that took place regularly included fair in honour of '*Massani Devi*' Goddess of Small pox. At Gurgaon, well attended fair twice a year at Beri and several cattle and donkey fairs at Jahazgarh, Beri and Dujana were held.[36]

Traders and artisans who traded or sold their goods in these fairs were taxed till they were abolished by Aurangzeb. Aurangzeb ordered the remission of the '*rahdari*'(toll) which was collected on every highway (*guzar*) frontier and ferry. He also remitted the '*pandari*' a ground or house cess, which was paid throughout the imperial dominion, by every tradesman, dealer, jeweler and banker. They were collected from the fairs held at festivals of Muhamadan saints, at the '*Jatras*' or fairs of Hindus held near temples throughout the country far and wide, when lakhs of people assembled once a year and where buying and selling of all kinds took place. Although, these taxes were remitted and orders were issued strictly prohibiting their collection, the avaricious propensity of men prevailed, so that with the exception of the '*pandari*' which being mostly obtained from the capital and the chief cities felt the forces of abolition, the royal prohibition had no effect. The faujdars, and jagirdars did not withhold their hands from these exactions. Since no inquiries were made, the zamindars also extracted more money on roads within their boundaries than what was collected on roads under loyal officers.[37]

During the eighteenth century the jagirdars and other administrative officers exploited the traders and merchants of this region by extracting certain cesses which had been abolished by the imperial regulations. And they extracted a bigger amount in the form of cesses than what was legal according to the imperial

regulations. After its re-imposition during the eighteenth century when the decline of the Mughal Empire started, the peasants, largely under the leadership of zamindars rose in arms against the imperial rule and this created insecurity for the traders.

The zanindars had been in intermittent revolt against Mughal suzerainty. In 1779 A.D. after the elapse of twenty years of Shah Alam's reign, in every corner of the empire people aspired to exercise independence. Allahabad, Oudh, Etawah, Shukohabad and the whole country of Afgans (Ruhillas) had been subjected were in the possession of the Nawab Wazir Asafu-d-daula and the whole country of Bengal had been subjected by the strong arms of the '*Firangis*'. The country of Jatswas under Najaf Khan and the *Dhakin* was partly under Nizam Ali Khan and partly under Marathas. The Sikh had almost the whole *suba* of Punjab, Lahore and Multan. Haryana was subjected to the plundering activities of Sikhs, Bhattis and Marathas. The *pargana* of Hissar and the northern belt of Haryana were perpetually over-run by the Sikhs during the Eighteenth century despite the resistance of the combined forces of Bhattis and imperial forces. The Maratha during the period brought forcibly under their subjugation the territory of the *Dakhin* and the provinces of Gujarat and Malwa and carried the process of subjugation to such a pitch as to pillage and lay waste the cities, towns and villages around Agra and Delhi and to leave the good name and property of none, whether high or low, unmolested.[38]

In this state of political disorder the traders and trade routes became more and more exposed to the predatory attacks of rebel zamindars and other invaders like Bhattis, Sikhs, and Marathas. The decline in trade can be perceived from the fact that the traders during eighteenth century started deserting the Haryana region due to the political disorder and trade insecurity. Due to the political disorder and trade in the eastern Rajasthan the traders of *pargana* Nohar, an adjoining region to Haryana, migrated to settle across Jamuna river near Bareilly and Rampur.[39]

Foot Notes

1. Alavi Seema, eds., *The Eighteenth Century in India*. New Delhi: Oxford University Press, 2002, pp. 60-61.
2. Habib Irfan, "Studying Colonial Economy without Colonialism", *Modern Asian Studies*, Vol.19, part 3, July 1985, pp. 355-81

3. Alavi, eds., *op. cit* pp. 28-29
4. Yadav K.C., *1857, The Role of Punjab Haryana and Himachal Pradesh*, New Delhi, NBT, 2008, pp. 124-125
5. Batai-Jinsi was a system where a designated portion of food crops were collected as revenue whereas under Zabti system revenue collection was done in cash
6. Elliot H.M. & John Dowson, *History of India as told by its historians*, Vol. III, Allahabad: KitabMahal Pvt.Ltd.,1964. p. 149
7. *Arsatta*; Pargana Narnaul, V.S. 1818,1821to1823,1827,1828/ 1761,1764-1766,1770-1772 A.D. Rajasthan States Archives, Bikaner. (Henceforth RSAB)
8. *Ibid*
9. Arsatta, Pargana Narnaul, VS 1825/ 1768AD, RSAB.
10. *Ibid*
11. *Arsatta*, Pargana Narnaul, VS 1827,1828, 1829/1770,1771,1772 AD,
12. *Ibid*
13. *Ibid,* VS 1821/1764AD, RSAB
14. *Ibid, VS1829/1772AD, RSAB*
15. *Ibid, VS 1830/1773AD, RSAB*
16. *Ibid*, 1825/1768AD
17. *Arsatta*, Pargana Narnaul, VS 1825/1768 AD, RSAB
18. *AbulFazl, Ain-i-Akbari, Vol.II.* translated by Col H.S. Jarrett, third edition, New Delhi 1978, pp 203-205
19. *Arzdasht*, dt.Katik Vadi-14, VS1744/1687AD, RSAB
20. *Arsatta*, Pargana Hasanpur, VS 1747/1690AD, VS 1770/1713 AD, RSAB
21. *Fhirhashti-Dehai*, Pargana Khohri, VS1775 to 1807/1718 to 1750AD, RSAB
22. *Arzdasht*, dt. AsadhVadi 5, VS 1742/1685AD, RSAB
23. *Arzdasht*dt. MangsirVadi 2, VS 1774/1687AD, *Arzdasht*dt.Asadh Sudi 6, VS 1774/1687AD, *Arzdasht* dt. Fagun Sudi 1, VS 1746/ 1689 AD, *Arzdasht*dt. Mangsir Sudi 2, VS 1740/1683 AD. *Arzdasht* dt.Katik Sudi 6, VS 1746/1689 AD.
24. *Fhishsashti-Dehoi*, Pargana Khori dt., VS 1768/1711 AD, VS 1770/ 1713 AD, VS 1771/ 1714 AD, RSAB
25. *Fhirahshti-Dehai*, Pargana Khori, dt. VS 1768 to 1807/ 1711 to 1750 AD., *Arsatta* Pargana Khori VS 1773/1716 AD, *Chithi*,

ParganaKhori, VS 1784/1727 AD, *Chithi*, ParganaKhori, VS 1785/1728 AD, *Chithi*, Pargana Khori, VS 1786/1729 AD, *Chithi*, ParganaKhori, VS, 1789/1732 AD.RSAB

26. Ibid
27. Wilson J., *Final Report on the Revision of Settlement of the Sirsa Distt. in Punjab-1879-83*. Calcutta Central Press, p. 180
28. Chaudhary Tapan Roy and Irfan Habib, *Cambridge Economic History of India*, Vol.1, London: Cambridge University Press, 1982, p. 266
29. Tapan Roy Chaudhary and Irfan Habib, *Op. Cit*. p. 279
30. Townsand C.A.H., *Third Revised Settlement of Hissar Distt.*, 1906-1910, p. 3
31. Nijjar B.S., *Punjab under later Mughals*, Jullundhur: New Academic Publishing Company, year p. 223
32. *Ibid*
33. Ibbetson D.C.J., *Report on the Revision Settlement of the Panipat Tehsil and Karnal Pargana of Karnal Distt.*, Allahabad: Pioneer Press, p. 199
34. *Ibid,* p. 200
35. J. Wilson, *op. cit*., p. 193
36. Channing F.C., *Land Revenue Settlement of the Gurgaon Distt,* Lahore: Central Jail Press, p. 38 and Punjab Govt., *Punjab Distt Gazetteer*, Vol. II, Rohtak Distt.-1910, Civil and Military Gazetteer Press, p. 67
37. Elliot H.M. and John Dowson, *History of India as told by its own Historians*, Vol. VII, Kitab Mahal Pvt. Ltd., pp. 274-78
38. Elliot H.M. and John Dowson, *op. cit*. Vol?? p. 73
39. *Ibid*

Dr. Bhupinder K. Chaudhry
Associate Professor
Maharaja Agrasen College
University of Delhi

Dr. Rajshree Dhali
Associate Professor
S.G.T.B. Khalsa College
University of Delhi

❑❑❑

Gender Identities in Popular Hindi Films: From the 70s to the 90s

Pankaj Kumar Jha • Sneh Jha

The conditions for the exercise of patriarchal authority have to be continuously reproduced through a "popular-cultural" regime that manufactures consent.[1] Of the many domains of popular culture, none probably is as ubiquitous and as powerful in post independence India as the mainstream/malestream cinema. This paper primarily intends to examine four Hindi films: Maine Pyar Kiya (1989), Hum Apke Hain Kaun (1994), Dilwale Dulhaniya Le Jayenge (1995) and Kuchh Kuchh Hota Hai (1998) with a view to uncover the gender grid that lies underneath them. I try to do this by examining what the films depicted and by looking at what the films suppressed.

To say, however, that the mainstream Hindi commercial fare reinforces a set of patriarchal values is to state the obvious. As a historian, I am more concerned about the changing forms of male dominance, and the ways in which shifts in visual, poetic and musical aestheticisation of story telling is deployed to invisibilise a relation of power or present it as benign. Hence, the paper seeks to uncover the manner in which 1970s and 1980s established certain trends for negotiating the gendered aesthetics in Bollywood. It then tries to tentatively set out the changes that the aforementioned films of the 90s brought, in so far as their construction of specific male and female subjectivity is concerned. My exploration shows that the changes were mediated by the new economic opportunities as well as technical advancements available in the 1990s. It goes without saying that my analysis is exploratory and tentative in nature, and in no way claims to be authoritative. It is also narrowly focussed on only four most successful films of the 90s, though

dozens of other films are also referenced and surveyed for background and contextualisation.

Hindi Commercial Cinema in the 1970s

A quick survey of the most successful films of the 1970s broadly demonstrate (a) a preoccupation with themes of disillusionment in the aftermath of the shattering of the Nehruvian dreams and the emergence of the Naxalite movement (Roti, Roti Kapda Aur Makaan, Sholay, Deewar, Zanjeer and several other films showcasing the emergent star-image of Amitabh Bachchan as the Angry Young Man, e.g. Trishul, Kala Pathar, Muqaddar Ka Sikandar); (b) ascendancy of 'brooding' films that revolved around metaphysical issues such as the nature of the world, life and death (e.g. Anand, Koshish, Mili, etc.); (c) a continued dabbling in the time-tested plots that revolved around love and family lost and found (films such as Andaz, Johny Mera Naam, Bobby, Yadon Ki Baraat, Aandhee, Julie, Kabhi Kabhie, Amar Akbar Anthony, etc.). One of the biggest grossers of the decade, along side Sholay of course was Jai Santoshi Maa, released the same year (1975) as Sholay and Deewar. In this disparate group, there are a few commonalities that may be noted. Firstly, though the patriarchal family is treated as a sacred institution, it remains in the background. The 'action', as it were, took place in the public sphere though the metaphors connecting the private and the public were often prominently played out. Hence, the mother in Deewar stands for harmony, but she also prioritises all the virtues necessary for a good citizen at the cost of her love for the 'misguided' elder son.

Secondly, most films were a contest between good men and evil men with women providing the romantic relief (Sholay, Deewar, Trishul, Yadon Ki Baraat, Amar Akbar Anthony). Or they portrayed the vaguely socialistic struggles of the unemployed male youth seeking a corner for survival (as in Roti, Roti Kapda Aur Makaan) for themselves and for the women in his family. However, one may note a very pronounced emphasis on a more aggressive masculinity. The image of a virile blood-thirsty Dharmendra took shape during this period.[2] The decade also saw the emergence of the lonely, if violent, crusader who was young, very angry and

very, very 'male'. What was he so angry about is a different matter altogether. But he almost invariably expressed his anger by physically eliminating the evil-doers. It is in this context, that we must locate the emergence of voyeuristically shot fight sequences in the films from 1970s onward, a trend that hasn't stopped since. This was a development whose success may be gauged by the fact that the audience bred on this fare found the 'heroes' of the earlier era (Rajendra Kumar, Pradeep Kumar, etc.) almost ridiculously feminine.

In this saga, there were bad men and there was a good man, or two.[3] Where were the women? The women, though seldom given much space on screen, were always there, quietly providing the moral strength to the fighting man, as mother (Deewar, Trishul) or as lover (Sholay, Zanjeer, Roti, etc.). Sometimes they could also be a liability for the men and a distraction: witness Zeenat Amaan singing '*do takiyan di naukri mein mere lakhon ka saawan jaye*' in Roti Kapda Aur Makaan.

Two films however that could boast of ubiquitous female characters were Jai Santoshi Maa and Aandhee. Jai Santoshi Maa was a mythological that brought a little known goddess to the homes of every middle class urban family.[4] By constituting the 'ideal' of a devout fasting-for-husband woman, the film helped constitute the 'other' of the angry young man. In the ideal family of the silver screen in the 70s then, the sexual division of labour was neatly laid out: the men went about fighting the big bad world and saving the nation whereas the women stayed back and prayed for his safety.

The *saree* clad Suchitra Sen of *Aandhee* provided a contrast to this stereotype. She played a career woman who wanted to make big in politics. What did her husband do? He was neither the moral strength behind her nor a distraction. He constituted the quiet and sane voice in a world that was too big and too intriguing for a woman. No wonder, she was always in self-doubt, on crossroads as it were. The memorable lyrics by Gulzar put to melodious music by R.D. Burman immortalised her dilemma: *Is mode se jaate hain, kuchh sust kadam raste, kuchh tej kadam rahen*. One may look at Arti Devi of *Aandhee* as portraying the plight of an independent woman in a patriarchal set up. Nothing in the cinematic presentation of the narrative forecloses that possibility. Nothing in

the film encourages the audience to view her like that either. Indeed, within the given context of the 70s cinema, it would probably have been seen more as an exception proving the rule: this is what happens if women step out of the household. That in fact was also the lesson that the 1971 hit Hare Rama Hare Krishna also brought home. The world is too bad for women to step out on their own. She would be unable to resist the temptations of drug and sex until a man (a brother in this case) decides to rescue her.

1980s: Visibility vs Personality

The historical backdrop to the 80s was provided by the aftermath of the emergency and the exemplary failure of the Janata Party alternative. The vaguely conceived 'Total Revolution' by Jay Prakash Narayan in a way had replicated in real life the vague socialist ideals of the male protagonists in the seventies. The turn of the decade marked disillusionment from both.

The eighties' cinema witnessed much less ideological engagement with issues of livelihood and was much less ambitious in terms of seeking to constitute metanarratives. (That space, one may argue, was increasingly vacated for the emergent new wave cinema led by the likes of Shyam Benegal, Gautam Ghosh, Mani Kaul, Govind Nihalani, et al.). The good vs. evil trope continued but in a much more superfluous manner.

The angry young man saga continued: the man was no longer that young though he continued to be angry. However, instead of targeting specific issues within elaborately laid out stories, he would now get angry on flimsiest of excuses.

The eighties also offered a series of Jitendra-Sridevi starrers almost all of which were super hits: Himmatwala, Mawali, Tohfa, Justice Choudhary, et al. These films exploited the Eastman colour technique to the hilt by saturating the screen with a splash of sensuous colours: the camera, unabashedly representing the male gaze, hovered in a close-up, on the curves of the heorine's body as she danced around in tight fitting and revealing dresses. The success of these films was secured by a series of song and dance sequences wherein a large number of extras, men and women, made a perfectly symmetrical spectacle behind the foregrounded bodies of the male and the female protagonists. Neither the men nor

the women had much to do in these films. The foregrounding of the male and female bodies however, were not gender neutral. The woman's body was almost always framed, through the selective and voyeuristic focus of the camera, as an object of male desire and nothing else. The male body on the other hand represented the active agent, the connoisseur's eyes appreciating an aesthetic marvel on behalf of an imagined male audience.

Two exceptional films by Shekhar Kapur illustrate the variety of cinematic sensibility that marked the eighties: Masoom and Mr. India. Masoom was the tale of a happy middle class family whose peace is disrupted by the discovery that the husband had fathered a son outside of the marriage through a chance encounter that had ended up in a one night stand. Ultimately, it is the generosity/ sacrifice of the female protagonist in accepting the step son that restores the happiness for the hapless family. Though sensitive in its camera work and lyrics, the film fails to interrogate the unequal burden that the wife has to carry for the larger common good, so to speak. One may press the point further by pointing out how films have never 'dared' to tell the reverse story, i.e. what happens if a happily married woman mothers a child outside of the family.[5]

Mr. India (1987) on the other hand is a science fiction comedy that moves in several registers simultaneously, affording the film an unusual self reflexivity. The female lead in the form of a news reporter is only a sidekick. But the film also caricatures its own stereotype by casting the reporter in the guise of Ms Hawa Hawai and making the villain look ridiculous in the guise of the exotically named Mogambo.

Two films that added to the said diversity and complexity of the eighties' Hindi hits were Insaf Ka Taraju and Umrao Jaan. Insaf Ka Taraju was a film that sought to make an issue of rape as a social evil in the aftermath of the much reported Mathura and Maya Tyagi rape cases[6] and the amendment of the Rape law.[7] The film highlighted the issues of 'consent' in rape, especially the refusal of the existing laws to recognise that it is difficult for victims of violence to make consistent statements, as well as the fact that passive submission and consent should not be equated. Yet, the film's overall treatment of the question failed to take it beyond the obvious 'social evil' and 'terrible thing to happen to a woman' tag.

In fact, the three rape scenes are shown with voyeuristic relish, notwithstanding its rhetoric against it.[8] What is remarkable about the film, however, is that there is no hero in it, only the villain and the heroine fighting out her own battle.

Umrao Jaan provides a different vantage point for understanding the gendered 'paradox' of the independent woman. The film depicted the travails of the courtesan and poet, Umrao who seeks to run away from the claustrophobic world of the dancing and singing girls only to find that she is not welcome anywhere else. What Aijaz Ahmad says about Rusva's novel is equally applicable in the case of the film; 'the scandal of Rusva's text is its proposition that since such a woman depends upon no one man, and because many depended on her, she is the only relatively free woman in our society.'[9] The lessons brought home reminds one of Aandhee: that the 'free' women are to be found only on crossroads or kothas. Worse still, this is what freedom entails for a woman.

Thus, while physical invisibilisation of women continued in some of the films in the eighties, in others it was giving way. However, even with reference to the latter, most of the time the camera tended to foreground her body as an object of male desire. Occasionally they did recount her travails but always in a way that failed to interrogate the cause of her predicament, or worse still seemed to hint that it was the result of her being displaced from her 'natural' abode within the household.

1990s: Several Transitions

The decade of the 1990s has had a transitive character in a number of ways within as well as outside India. For, the last years of the 80s saw the disintegration of the Soviet Union and the fall of the Berlin Wall. For its part, India was firmly on the path of liberalisation by 1991 when the Narsimha Rao government came to power and Dr. Manmohan Singh became the Finance Minister.

These developments had several consequences for Hindi film industry. As the foreign exchange regulations were loosened, Bollywood producers could now afford to import expensive western technologies: Dolby technique helped accentuate the sound

effect and acoustically suppress or even romanticise the potential tensions in the plot; and if that did not succeed, the new age digital colour would do the rest. More importantly, the new breed of directors like Sooraj Barjatya, Aditya Chopra and Karan Johar could now afford to shoot whole films in various posh locations in Europe. Secondly, the period also saw the beginning of corporatisation of the film production process, as the Government of India officially granted industry status to film making thus paving the way for banks to finance and even insure an increasing number of them.

If the 80s witnessed shrinking space for ideological issues being explored, this space practically disappeared in the 90s, as the virtual world of silver screen simply decided to celebrate light and sound effects with simplest of plots.[10]

With regard to four of the most successful Hindi films of the time, I would like to demonstrate that this celebration was far from value-neutral or simple. Let us start with a film that was actually released three days before the 90s set in: on 29th December, 1989, Maine Pyar Kiya was released by Rajshri Productions. In a rehashed version of poor girl meets rich boy, Suman was the pretty daughter of a countryside mechanic (Alok Nath) who falls in love with Prem (Salman Khan), son of a rich businessman in the city. Though the two fathers are childhood friends, Khan's father objects to the marriage. The hero rebels and deserts his father for his love. However, his sweetheart's father refuses to part with his daughter till he can 'afford' a wife. Throughout the movie, Bhagyashree is a ubiquitous figure, yet all she does is fall in love, sing, smile, sob and smile some more and wait. She is the 'object' the film revolves around. But she has no voice and she comes forth as the human counterpart of her mute pigeon-friend that – despite its wings – hitches a ride in a car to deliver a letter.

The film takes the patriarchal arrangement for granted and presents it as natural. The pathetic predicament of Suman is effectively hidden from the audience under the splashes of colour, trendy dresses, romantic songs, a superficial class divide and the overall oh-so-beautiful-world ambience. This ambience was created with artificial aides, especially a rich spectrum of advertising imagery that had just come to India in the wake of television

revolution in the mid-80s: the cooks wearing red check coats, lush green fields full of myriad coloured footballs, close-up shots of ice falling into glassful of delicately bubbling coca cola, etc.

The visuals in the film were carefully crafted for another purpose. The delicate frame of the heroine, Bhagyashree was repeatedly contrasted with a muscle-flexing hero, Salman Khan. In a number of scenes, the hero is shown doing well-nigh impossible push-ups while the heroine is just smiling and chatting away. Interestingly, while the female persona is aesthicised with smiles galore, the raw male power strikes a contrast with bare bodied muscles.

Director Suraj Barjatya repeated the success of MPK with Hum Apke Hain Kaun in 1994. Adapting the plot of Nadiya ke Paar, another Rajshri production of the eighties that was set in a rural backdrop, to an urban setting, Barjatya harped on the theme of the patriarchal joint family, and the oodles of happiness that apparently lies in store there for everyone. Puja (Shahane) represents the ideal woman: she is an obedient daughter, a caring sister, a dutybound daughter-in-law, a maternal bhabhee, an ever-at-your service wife and an ideal *devi samaan maalkin* for her servant. In short, she is everything but herself. A *pallu* on her bowed head and a perpetual smile stuck on her face, she epitomises the family *izzat*.

Nisha (played by Dixit), her teenage sister, not yet tamed, is allowed a few friendly pranks through the first half of the film. But when Puja dies in an accident, Nisha is absorbed instantly and imperceptibly into the role of her deceased sister. Her happiness lies in the happiness of the family, nay, in conforming to the decision of the (male) elders who decide to marry her to her now widowed *jeeja*. Through pleasing aesthetics, Hum Apke Hain Kaun played to perfection the urban male's fantasies of womanhood and reinforced this 'ideal'. That, above everything else, was its unique selling point. Yet the soft ideological underbelly of solid and clean entertainment is carefully hidden from the audience. Securely defined as a bundle of claims, duties, pranks and smiles, the woman in HAHK has only one worry: to be careful while walking down the stairs so that *bechari* does not fall and die. The movie won three of the most prominent filmfare awards: Best film, Best Director and Best Actress in a Leading Role.

Our third film is Aditya Chopra's Dilwale Dulhaniya Le Jayenge. Set in England between two emigrant Indian families, the film evokes images of a modern and sophisticated milieu. As the hero Shahrukh and heroine Kajol fall in love, obstacle to the impending marriage is provided by the girl's father Amrish Puri. In a fleeting scene in the middle, a sobbing Kajol asks her sympathetic mother why she cannot decide her own fate. The mother says that's the way it has always been and that in the end everything will be alright. When she is taken back home to Punjab from England, the hero follows her there. What would the hero do now? Run away? No, he is the rational new age man after all, not a sentimental Majnu! In fact, he refuses to marry her against her custodian father's wishes. He would prefer to sacrifice his love rather than indulge in the *unmanly* act of subverting patriarchal authority. He vows instead to 'win' her from her father and goes through a protracted ordeal to do just that. So all that the heroin does is sing, sob and smile patiently, waiting to be won.

In the dramatically picturised dénouement, she is released from the real and symbolic grip of her father's hands to go running into the arms of her exhausted hero who had practically given up and boarded a moving train. The narrative of the film easily absorbs the passing worry of its female lead about her predicament. The hero won his heroine and the director ended up winning ten Filmfare awards and one national award (Best Popular Film)!

The invisible gender grid that underpinned MPK, HAHK and DDLJ was laid out elaborately in Karan Johar's 1998 venture KKHH. Another teenage love story, this one cast two heroines against Shahrukh Khan. Anjali is the 'tomboy' girl and great friends with (Rahul) Shahrukh who is depicted as a flirt. Dressed in track suits with short hair, she always beats Rahul in basket ball. And then comes the foreign returned Tina who can sing Om Jay Jagdish Hare and also show off her waxed legs in a short dress. This is the latest modern girl on the block with western attire and Indian heart! Rahul marries her but she dies soon after giving birth to a daughter who is also named Anjali. As the junior Anjali grows up, Rahul and senior Anjali, now saree clad, meet again. In a telling scene towards the end, Rahul finally dis-covers senior Anjali's feminity and his own emotions for her when she can no longer beat him in basket

ball and when a blowing wind takes her saree off her blouse. Obviously the director seems to have known with certainty where exactly the feminine resides: in the body and beneath the saree, but also in the ability to sing Om Jay Jagdish Hare and in the inability to beat the men in the symbolic game of basket ball. The two agree to marry and live happily ever after!

The four films I have talked about were very carefully crafted works that took for granted, played upon and naturalised afresh certain normative codes of patriarchy for the Hinglish speaking urban youth. This was done not in the traditional household setting of Main Tulsi Tere Angan Ki or the mythological mould of Jai Santoshi Maa or lower middle class world of Roti Kapda Aur Makaan. It was done in the familiar setting of a state of the art college, or the London to Ludhiana milieu of the upper middle class or the mythically prosperous world of an infallible joint family.[11]

The specific ways in which they constituted the feminine and masculine were very different from the way seventies or eighties constituted these. Late eighties onwards, we see a clear separation of the aesthetic and the psychological from that which is social, a technique that Raymond Williams understood as a bourgeois ploy.[12] What is equally interesting is that certain typically Bollywood conventions of cinema came very handy in the nineties. If the Hindi film is conceived as an 'assemblage of pre-fabricated parts including the story, the dance, the song, the comedy scene and the film text as a whole', this convention was exploited innovatively in the 90s to put together truly and literally 'sparkling' films with the help of latest technological devices.[13]

One institution that remained formidable and continued to be romaticised was the family alongside the male-kinship ties.[14] By putting the rapidly 'modernising' women in the post liberalisation India back into the 'safe' habitat of the family, the films we have analysed successfully invisibilised the ideological paraphernalia that sought to secure wilful submission of women to male authority.

Looking Beyond: Towards Metrosexuality

The technical and ideological world of Hindi cinema has taken huge strides in various directions in recent times. One of the less remarked developments has been the steady but deliberate and bold

attempt on the part of a few producers and directors to sketch characters not in sync with the received stereotypes about male and female role expectations. I leave you with three examples: Witness Saif Ali Khan in Salaam Namaste: he loves cooking; he cannot go to bed unless he has cleaned up the mess in the kitchen and put everything back to their places in the living room; he does not think that his manliness is threatened by the dagger and pistol wielding cowboy; worst of all, he is scared of the sight of blood. Witness also Shahid Kapur in Jab We Met: Having lost his way in life, he is about to commit suicide but is accidentally saved by the heroine; he goes on to learn his lessons in life and much more from her; worse still he is able to understand and empathise with a mother who falls in love with another man. And finally, Irfan Khan in Jane Tu Jane Na, essays the role of probably the first romantic hero in the history of Hindi commercials who is so consciously committed to non-violence (In the end, though, he has to prove his manliness by shoving in a few punches in style). These are the changing faces of Hindi commercial films' heroes.

Apart from the fact that these men do not, at least ostensibly, fit into the cinematically established tradition of masculinity, there are other things they share. They are almost always immaculately dressed; they have designer bodies with discretely countable muscle-packs that may not represent raw energy but remind you of five star diet charts and seven star gymnasiums; they have toned skin and a wallet full of cash, nay, credit cards. Are they substantively subverting the stereotypes or also in the process of constituting new ones? Do they represent gender equality? Or are they examples of the moisteurised masculinity epitomised by the metrosexual men as understood by Mark Simpson?[15]

Bibliography

Datta, Sangeeta. "Globalisation and Representation of Women in Indian Cinema". *Social Scientist*. Vol. 28, nos. 3/4, 2000, pp. 71-82.

Desai, Jigna. "Sex in the Global City: The Sexual and the Gender Politics in the New Urban, Transnational and the Cosmopolitan Indian Cinema in English", in Desai, *Beyond Bollywood: the Cultural Politics of South Asian Diasporic Films*, pp. 193-210.

Haskell, Molly. *From Reverence to Rape: the Treatment of Women in the Movies*. Chicago: University of Chicago Press, 1974.

Jha, Priya. “Lyrical Nationalism: Gender, Friendship and Excess in 1970s Hindi Cinema”. *The Velvet Light Trap*. Vol. 51, 2003, pp. 43-53.

Kannabiran, Kalpana and Vasanth Kannabiran, *De-eroticizing Assault: Essays on Modesty, Honour and Power*. Calcutta: Stree, 2002

Parkin, Robert and Linda Stone. Eds, *Kinship and Family: An Anthropological Reader*. Malden: Blackwell Publishers, 2004.

Prasad, Madhav. *Ideology of the Hindi Films: A Historical Construction*. New Delhi: Oxford University Press. 1998.

Prasad, Madhav. ‘Indian Movies Speak to a Global Audience’, *International Herald Tribune*, 20 October, 2000.

Rajadhyaksha, Ashish and Paul Willemen, *Encylopaedia of Indian Cinema*. New Delhi: Oxford University Press, 1995.

Rosen, Marjorie. *Popcorn Venus: Women, Movies and the American Dream*. New York: Coward, McCann and Geoghegan, 1973.

Uberoi, Patricia. *Social Reform, Sexuality and the State*. New Delhi: Sage, 1996.

Vasudevan, Ravi. “Addressing the Spectator of a Third World National Cinema: the Bombay Social Films of the 1940s and 1950s”. *Screen*. Vol. 36, no. 4, 1995, pp. 305-324. The paper was reproduced in *Asian Cinemas: A Reader and A Guide*, edited by D.Eleftheriotis and G.Needham, pp. 295-316.

Virdi, Jyotika, “Reverence, Rape – and then Revenge: Popular Hindi Cinema’s Woman’s Films”. *Screen*, vol. 40, no. 1, pp. 17-37.

Walby, Sylvia. *Patirarchy at Work*. Polity Press, 1986.

Walby, Sylvia. *Theorizing Patriarchy*. Malden: Blackwell Publishers, 1990.

Williams, Raymond. *Marxism and Literature*. Oxford: Oxford University Press. 1977.

Footnotes

1 The term 'manufacturing consent' was popularised by Edward S. Herman and Noam Chomsky in their co-authored book, *Manufacturing Consent: The Political Economy of the Mass Media*, New York, Pantheon, 1988. Herman and Chomsky used the phrase to study the print and television reporting driven by the profit motive. However, I deploy it more in the sense in which cultural objects draw upon what Raymond Williams called "lived system of meanings and values". See, Williams, *Marxism and Literature*, Oxford: Oxford University Press, 1977, p. 110.

2. Veeru (Dharmendra) in Sholay, shouting at the villain, "*Kuttey, main tera khoon pee jaoonga*", became part of cinematic folklore and left its stamp on most other characters played by Dharmendra later. In the star-image driven Mumbai film industry, the dialogue had a resonance far beyond the specific context of the film in which it was first uttered.

3. At least one scholar has remarked, though in a different context, on the phenomenon of Hindi film songs celebrating brotherhood and friendship between men. See, Priya Jha, "Lyrical Nationalism: Gender, Friendship and Excess in 1970s Hindi Cinema". *The Velvet Light Trap*. Vol. 51, 2003, pp. 43-53. Jha discusses the famous song from Sholay, 'ye dosti hum naheen…'. There are others one may cite: 'meri dosti mera pyar…' (Dosti), 'baney chahe dushman….' (Dostana). The examples can be multiplied. One may also note the complete absence of any celebration of friendship among women and there is rarely any sense of sorority emerging. Is it that in the tinsel universe of Bollywood, only men are capable of forming solidarities?

4. Veena Das, 'The Mythological Film and its Framework of Meaning: An Analysis of Jai Santoshi Maa', *India International Centre Quarterly*, 1981, vol. 9, no. 1, pp. 43-56. Another useful study of the film explores the framing of caste hierarchy in it. See, Philip Lutgendorf, 'A Superhit Goddess: Jai Santoshi *Maa* and Caste Hierarchy in Indian Films', *Manushi*, no. 131, July-August, 2002, pp. 10-16.

5. An exception however can be found in the intricate, unpopular and 'dark' world of the so-called Art Films of the eighties: *Ek Pal*, directed by a Kalpana Lajmi did portray Shabana Azmi giving birth to a child during the long absence of her husband (Naseeruddin Shah). More recently, another 'off-beat' film, Astitva (2000) also tried the plot in a fairly sensitive way.

6. It was as a result of the feminist outcry against obvious injustice of the judgments in the Mathura Rape case (Supreme Court, 1978) and the Maya Tyagi Rape Case (Supreme Court, 1980) that the Rape Law was amended in 1983. See, Geetanjali Gangoli, *Indian Feminisms: Law, Patriarchies and Violence in India*, (especially the Chapter titled, "Custodial Rape and Feminist Interventions", pp. 79-98). Hampshire: Ashgate Publishing, 2007.
7. Susie Tharu provided an interesting study of the film in her essay titled, 'On Subverting a Rhetoric: Media Versions of Rape', in *Olympus*, 9th August, 1981.
8. One rarely comes across a rape scene that is "sensitively" shot in Hindi cinema if such a thing is at all possible. Bandit Queen (Shekhar Kapur: 1994) has one such scene that has led at least one scholar to note that it would be "somehow disingenuous not to acknowledge the difference of seeing the man's 'private' skin exposed at a moment when he is in fact vulnerable". See, Priyamvada Gopal, "Of Victims and Vigilantes: The Bandit Queen Controversy", in Rajeshwari Sunder Rajan, *Signposts: Gender Issues in Post Independence India*, New Delhi: Kali for Women, 1999, pp. 298-299.
9. See Aijaz Ahmad, quoted in *Encyclopaedia of Indian Cinema*, edited by Ashish Rajadhyaksha and Paul Willemen, New Delhi: Oxford University Press, 1995, p. 421.
10. See Saibal Chatterjee, '1990-2001: Designer Cinema', in *Encyclopaedia of Hindi Cinema*, New Delhi: Encyclopaedia Britannica Inc., 2003, pp. 117-31.
11. If we keep in mind the fact that the 'cultural' setting of these representations is almost always 'brahmanic', we have a case here for what Mohan Rao in another context has described as 'karva chauth capitalism'. See, Mohan Rao, 'Karva Chauth Capitalism', *Times of India* (edit. page), 26 October, 2006.
12. See, Williams, *Marxism and Literature*, p. 128.
13. Prasad, Madhav. 'Indian Movies Speak to a Global Audience', *International Herald Tribune*, 20 October, 2000.
14. Ravi S.Vasudevan, "Addressing the Spectator of a Third World National Cinema: the Bombay Social Films of the 1940s and 1950s", in *Asian Cinemas: A Reader and A Guide*, edited by D.Eleftheriotis and G.Needham, pp. 295-316.
15. See, Mark Simpson, "Metrosexual? That rings a bell" in *Independent on Sunday*, 22/6/2003. This is what Simpson, the alleged inventor of the term, had to say about the emergence of

the metrosexual men: “It was clear however even in the early Nineties that old-fashioned (re)productive, repressed, unmoisturised masculinity was being given the pink slip by consumer capitalism. The stoic, self-denying, modest straight male didn’t shop enough – his role was to earn money for his wife to spend – so he had to be replaced by a new kind of man, one less certain of his identity and much more interested in his image, that’s to say one who was much more interested in being looked at; because that’s the only way, these days, you can be certain you exist. A man, in other words, who is an advertiser’s walking wet dream.”

Pankaj Kumar Jha
Lady Shri Ram College for Women, Delhi

Sneh Jha
Miranda House, Delhi

❑❑❑

Tracing The Life and Culture : Muthuvans of Kannan Devan Hills On The Eve of Europeanisation

Dr. Sebastian Joseph • Dr. Jijo Jayaraj

Summary

The Muthuvanslived in the interior forest of these regions from prehistoric period onwards. In the early days they kept aloof from the mainstream population and had followed peculiar life world practices. The historical records about the adivasis were constructed as a part of the official discourses by the imperial government. This article attempts to articulate the social and cultural structures underpinned in the life world of the Muthuvans who were the original inhabitants of the forest of Kannan Devan Hills in the erstwhile Travancore state on the eve of the opening of plantations by the European planters.

Keywords

Muthuvan-tribe-adivasi-colonialism-modernity–kani (Head man)-kudi (settlement)-culture-matrilineal-settlement-tradition

Introduction and Scope

The Kannan Devan Hills today known as Munnar the confluence of the three rivers has been the abode of a number of adivasis. The place now famous for tea plantation industry was once a semi tropical evergreen forest with large number of diverse flora and fauna. The adivasis like Muthuvan, Mannan, Urali, Paliyar, Pulayar etc., lived in the forest for many generations with least environmental impact on the ecosystem. Most of the tribal settlement has unique beliefs, traditions, language and culture.

Their ignorance in the modern farming methods and inability to invest large sums of money was utilized by the foreigners who occupied all of their areas in the latter half of the 19th century. The establishment of the Forest Department augmented the process. The modernity as supposed by the modern society is forcibly imposed on the adivasis. The result was the loss of inherent identities of the group. The process got accelerated in 20th century and every attempt of the government damaged their custom and native form of technology. The tales about the population is first seen in the official reports and travel diaries of the colonial officials. It was an official perspective that depicted the Muthuvans as coyish, as the shy, indifferent, barbaric community. This article intends to throw light on the original life world of the Muthuvans that got evolved on the hills that was to witness structural transformation with the establishment of the planter world.

Etymological Origin and Myth

The Muthuvans constitute the major tribal community in Munnar.[1] According to Legend, the Muthuvans were the loyal subjects of Madurai. They were not indigenous to the hills but were cultivators from the plains of Madurai, forced to seek refuge in the mountains during the wars of the Pandyan Rajas, that is about nine hundred AD.[2] On their way, the Muthuvans carried the idols of Madurai Meenakshi on their back, who was the Chief deity of the Royal family.[3] According to yet another belief, they climbed the ghats from the eastern side with their children carried on their backs. The word 'Muthuvan' believed to be originated from the word *Muthuku*, which means 'Back' in Tamil as well as in Malayalam. Interestingly a third version also exists; by this, they followed Kannaki, the legendary heroine of Madurai, into the hills, after burning Madurai.[4] They retreated to the hills due to the political upheaval and settled in the forests of Munnar, which was long away from threat.

Social System of Clan Administration

Kingship

The Muthuvan society is divided into number of *kudi's*or settlement.[5] The head of each *kudi* decides the life style of them. The entire kudi selects a head. He will be the centre of all kudies.

He is called '*kani'*or Head.[6] The head would have special position and honour. His wife also has power among women. In the beginning the head were called *muthan*[7] (male elder) and *muthi*(Female elder).[8] But the direct intervention of forest officers changed the name into *kani*. So it abolished the name *muthan* and *muthi*.[9] The position of *muthan* and *muthi* is hereditary. It is specialised in one family. But the law of *kani* introduced by the forest officers changed the hereditary system. The selection of *kani* is very lucid. The *kani* should have knowledge in medicine, incarnation, the faith in religious matters etc.

Law & Order and Justice

Matrilineal System

Kani, poojair (priest), manthrakaran (magician)[10] were the highest people in *kudi*. Eldest people also considered as honoured. The men joined together in chavadi for the discussion of common matters. These people follow matrilineal system among their community. The children inherits mothers lineage of clan. Women led an active role in agriculture, cooking of food, protection of child etc.[11] the female members of the clan got greater social dignity and prestige. There is no *poojarini* and *manthravadini (female magician)* and is restricted their role in social programmes. Women got equal representation in festivals. They did singing and dancing in the festive occasions.

Ooruvilakku or Isolation

Ooruvilakku[12] is a punishment system existed among Muthuvans. It was given by the*kootam*headed by the *kani*. *Kootam* literally means 'Isolation'. It is imposed on those who marry from the outside community, for having extra marital relationships with people from the same clan. Marriage within the same clan is strictly prohibited and they will be sent outside the forest. The family members of those who are under *Ooruvilakku (ban from village)* are not allowed to contact their other relatives.[13]

Major Rituals and Ceremonies

Urumalkettu

Urumalkettu[14] is the ceremony conducted for a boy when he

reached the age of 10. Traditionally the men never used to cut their hair .They used white cloth for this purpose. During this occasion the boys are made to wear the long white cloth over the hair. They used to tie their hair under 3-4 meter long cloth worn over the head which is called *Thalappavu (head knot)*.[15] If Muthuvan removes the *thalappavu (cap)*, it meant some sad thing has happened in the *kudi*, like death.[16] But now men cut their hair.[17]

System of Marriage

Normally the marriage took place between the cross cousins. Traditionally the first girl child should go in marriage to paternal sister son. *Kooth* (harvest) is the main fest during the time of the marriage.[18] Long celibacy among the male members of the clan is not common. The widow can repeat her choice of partners as often as she likes but only with the consent of the clan. The Muthuvan did not buy dowry.[19] They gave importance to gender equality. The place of marriage might be either *kovil* or *chavadi*. The priest would be *kani* or *manthravadini* or *karanavar*. The ceremony begins when the bride's friends hide the bride in the forest. The groom and his friends should find her out. In the evening the bride's father arranges a dinner at his *kudi*. The Muthuvan did not use tali in-spite of this they use *Pasimala*[20] for wedding.

Ceremonies Related to Death

The Muthuvan community strictly believe in life after death. It is the duty of *Dandakaran(person performing the last rites)* to inform all members of the *kudi*(settlement)if any death has taken place. They place a white cloth over the house of dead person. They use white as a symbol of sadness. When there is an incident of death in the *kudi*, everyone in the *kudi* gathers and mourns for the death. The mourning of women for dead person is called *pathamparayuka*[21]. They speak about the good nature of the dead person. The Muthuvan would not go outside for three days.[22] The *kani* of neighbouring kudi's come for funeral. Only after the messenger reach back to the *kudi*, they would take the body to the burial place which is referred to as *idukkad* or *kollikadu*.[23]

Agriculture and Farming

Agriculture was the main occupation and main way of life.

Most of the Muthuvans do not have their own land for cultivation. They cultivated paddy, wheat, maize, *thenachennattupullu* and is called *virippu*.[24] The wild animal, honey, folk tuber, were the main food items they used during the cultivation period. The ashes were the manure for them. They grow two round of paddy in a year. They started cultivation during the month of *meenam (English month March)* and *medam(English month of April).*[25] Both male and female participated on it. They normally followed shifting cultivation. Every year they move from one place to another. The crops which they used for cultivation are *Arimodan*, *Chomalaperuazha*, *Adimoda*, *Idakadu*, *Maxchaperumala*, *Choramodunellu*, *Manumarigora*, *Kozhimaragora*, *Kozhimala (crop varieties)*[26] etc.

Along with agriculture Muthuvans collected the wild tubers and honey from the forest. For protecting their cultivation from the animals and forest fire they had made fire pits besides their yielding lands. There was a tradition in which particular share of harvest being offered to Goddess. The bamboos were the main trees which they cut down for cultivation land. All of the Muthuvan, both women and men participate on it. They had followed seven steps for cultivation, such as *uzhavuvettuvithachukila*, *kalaneekal*, *kaval*, *koyth*, *methi*, and *vilavedupuultsavam*.[27]

Religion and Faith

Muthuvan had followed the Hindu Gods. *Siva* and *Vishnu* and *bhadrakali* are the main gods worshipped by them. They had also venerated natural gods, called *Maladaivangal and Madurai Meenakshy*. They believed that *Maladaivangal* protects the hill, forest and rivers.[28] It is very ancient type of practice. They believe in life after death and offered normal foods for their ancestors during the *pooja* time. Each *kudi* has separate *kovil*.

Kovil

Kovil is an auspicious place for Muthuvan like *chavadi*. The *kovil* is roofed with grasses. The *mandapa* is a place related with *kovil* and is near to *kovil*. *Kovil* has a *Poojari* who offer prayers. *Kovil* has a large courtyard. There is no particular time for offering prayers. Normally the adoration of *Maladaivangal* (hill god) does

not allowed in the *kovil (temple)*.[29] It is done in the forest. All members of the *kudi*comes for offering prayers. [30]

Handicrafts

They had possessed special skill in creating bamboo mats and handicrafts items with various designs which is unknown to the outside world. Their mats are so nice that one can sleep on it and if properly kept, it could be used for a very long time. They call the mat *kannadipaya*[31] due to its nice surface. Bow and arrow, *undavillu*, *thettali*, *mulamkuntham* are the main hunting tools used by them. The Muthuvan woman werespecialized in making cottas by bamboo.

Concluding Remarks

Thus one can understand that the Muthuvans had a very rich culture. From the time immemorial they have adopted a life style that is in harmony with the nature. Their lifestyle was full of differences from that of the rest of the population. They had adored the forest and never tried to alter its nature. These characteristics can be seen throughout their culture. This tribal society has undergone many changes with the colonial occupation. The Muthuvan preferred to live a secluded life, separated from the main stream land. Col. Ward and Conner in their Trignometrical Survey in 1817 and later Col. Hamilton in 1891 and J. D Munro provided first information on the existence of these populations in the Kannan Devan Hills of Munnar. These reports vividly draw exciting narrations about the population. What attracted the foreigners was their distinctive differences. Munro referred these people as ‘a handsome race’. Hamilton in his description also presented them as too shy. It is in this background that many of the later legislations take place. The marginalization of the tribal population is very clear.

Racial segregation was a bi product of the plantation and the most affected community was the adivasis, especially the so called Muthuvan community. Their methods of building houses out of bamboo and clay, food habits, their attitude towards the animals and forest etc., all are examples of their way of life in harmony with the forest. The planter world structurally affected their life

world and hereafter certain changes in their ecological approach is visible. They came to hunt even the animals like tiger and elephant which they never hunted in the pre planter days as they believed for instance in the organic links these animals had with the forest ecosystem. Tiger was a reverential beast for them and the called it as Kadavool meaning God. They got addicetd to new kind of foreign liquor which was supplied by planter contractors with support from the native government. In some sense their life world was brought under the system rationality of the planter industrial world to which they were affiliated as forest guards, coolies and workers.

Endnotes

1. Kanchiyar Rajan, *Athijeevanathinte Gothra Padangal*, Z-Library, Trivandrum, 2011, p.78.
2. Ibid., p.79.
3. *District Hand Book- Idukki*, Department of Public Relations, Government of Kerala, Trivandrum, 1998, p.10.
4. KanchiyarRajan, *AthijeevanathinteGothraPadangal*, op. cit., pp.20-21.
5. *Kudy* – meant hamlet in the Muthuvan language
6. *Kani*-Head of the kudy
7. *Muthan*-Male head of the Muthuvan
8. *Muthi*-Female head of the Muthuvan
9. Kanchiyar Rajan and V. B Rajan, *Idukkiyile Gothrakalakalum Samskaravum: A Study of folklore in Idukki District*, Idukki District Panchayath, Kattappana, 2000, p. 69
10. *Manthrakaran* - Hindu priests, who often recite prayers in the ceremonies
11. Personal interview with Mr.Veeran, aged 46, KDH, Munnar
12. *Ooruvilakku*- Excommunication or isolation
13. Personal interview with Mr. Veeran, KDH, Munnar
14. *Urumalkettu*- A ritual when a boy is made to cloth knot ever the head for the first time
15. *Thalappavu*- turban
16. P.K. Muralidharan, *Idamalakkudy - Oorum Porulum*, Sahithya Pravarthaka Co-operative Society Limited, Kottayam, 2014, p. 29

17. Personal interview with Mr. Veeran, KDH, Munnar
18. *Idukki Mannum Manasum*, Nallapadam, Eastern Newton School, 2017, p. 31
19. Kanchiyar Rajan, *Athieevanathinte Gothra Padangal*, Z - library, Thiruvananthapuram, 2011, p. 33
20. *Pasimala*- Tali
21. *Pathamparayuka*- The mourning of the widow
22. Personal interview with Ms. Valsa, KDH, Munnar
23. *Idukkad*or*kollikadu*- The burial place
24. *Virippu*-Traditional farming practice of Muthuvan
25. Personal interview with MrVeeran, age, nil, KDH, Munnar
26. The traditional farming seeds
27. KanchiyarRajan, *AthijeevanathinteGothraPadangal*, op. cit., p. 93
28. Personal interview with Mr. Soman, aged 40, Tribal Promoter, KDH, Munnar
29. Ibid.
30. Ibid.
31. *Kannadipaya*- Mat made of bamboo

Dr. Sebastian Joseph
Associate Professor, Research Guide in History,
P.G Dept. and Research Centre in History, UC College,
Aluva Ernakulam Kerala,

Dr. Jijo Jayaraj
Assistant Prof. on Contract,
P. G Dept. of History, Pavanatma
College, Murickassery, Idukki, Kerala,
jijojayarajan@gmail.com

❑❑❑

Yoga for Improving Sedentary Professionals' Work Performance

• **Dr Seema Singh**

Abstract

The computers have helped mankind improve their life by providing ways to improve efficiency and productivity. However, asmost work is now done in sedentary postures, the instances of physical and mental ailments (musculoskeletal discomfort) have increased. A study was conducted to see if Yoga can help reduce these ailments and thereby improve work performance. This study was conducted on 100 female students who were regular computer users. The experimental group attended the yoga class of one hour daily and Controlled group continued with their daily routine. Using various instruments, the working capacity of the both groups was ascertained before and after the Yoga regime of sixty days. After attending sixty days of yoga classes the experimental group have reported decrease in the musculoskeletal discomfort, the flexibility of the lower back and hamstring muscles, the performance indicators like tapping speed and hand grip too have shown the improvement. On the other hand, the musculoskeletal discomfort of the controlled group has increased. The experimental group was able to handle the mental pressure and workload too more efficiently.

Key Words – Computers, Musculoskeletal discomfort, Workload, Yoga, Performance.

Introduction

Computers have helped mankind improve their life. They have helped create ways, methods and processes to improve efficacy, efficiency as well as productivity in almost all walks of life. Computers have helped us perform a number of tasks while sitting

at the comfort of our desks instead of physically moving or supervising them. Accordingly, most people spend a lot of time in sedentary postures while working. Consequently, the emergence of sedentary work related physical and mental ailments like pain in the back, neck and other body parts, lack of concentration, weak eye sight etc. have increased. As these ailments set in, efficiency at the workplace is bound to get affected.

Researchers in past have tried to understand, analyse and underline the role of yoga in providing possible solutions to some of these ailments and tried seeing if regular yoga practice can help improve the mental or physical efficiency for doing sedentary work either by preventing the above mentioned discomforts or by alleviating their negative impact on work productivity.

This paper tries to analyse the effects of Yoga on improving performance on three aspects viz. tapping speed, flexibility and grip strength. These three aspects are taken as indicative of the well being of our fingers, wrist, arm and our back thereby acting as key performance influencers for people with sedentary work roles.

Past researches

Denise Rizzolo, Pinto Zipp and Doreen Stiskal [Dec 2009] have suggested that the reading, humour and yoga techniques will help to reduce the stress among students of doctor of physical therapy and master's of occupational therapy. In their research, the Daily Stress Inventory (DSI), systolic blood pressure (SBP), diastolic blood pressure (DSP), and heart rate (HR) were used to measure the stress. Results of this study showed that 30 minutes reading, humour and yoga had similar effects in reducing stress comparatively in a short duration of time.

Malathi and A. Damodaran [May 1998] conducted a study on fifty Ist year MBBS students to find how yoga benefited the students to reduce their anxiety level. Spill Berger's Anxiety Scale was used to measure the anxiety level of the experimental and controlled group. It was found that the beneficial role of yoga helps in reduction of basal anxiety level and also helped reduce increase in anxiety score in stressful situations such as exams. In the exam results it was shown that a statistically significant reduction in the number of failures in the yoga group as compared to the control group.

Saroj Maroik, Chandra Sankar Hazari, and Bhim Chandra Mondal [March 2017] in their research on effect of yoga on health found that yoga may improve physical fitness, group coordination, self capabilities and that it is a stress buster as well as helps to reduce medical problems as well. They further suggested that there is a need to move more in the scientific direction and yoga may be helpful in the prevention and cure of disease

In one of their surveys in 1997, the National Institute for Occupational Safety and Health (NIOSH) estimated that approximately 20% of the workers in the United States of America (USA) have developed pain in the upper extremities. In another survey in India, conducted on 500 computer professionals in 2017, results showed that approximately 38% of them had developed pain in the upper extremities. Through these surveys it has been identified that most concerns are in the upper extremities i.e. upper portion of the body. The cause of these has been long sitting hours and repetitive movements in only one direction. To overcome this problem, a variety of exercises and health awareness strategies have been planned and tried. Regular yoga, certain physical exercises and acupressure have shown a positive result in helping overcome or reduce the pain in the upper extremities and other body parts. The psychosocial factors too are very important besides physical factors and workplace situation, in the control of work – related musculoskeletal disorders.

It has been found that musculoskeletal discomfort and pain in the lower back, neck and shoulder could have been caused by factors like being overburdened by workload and mental pressure. As it has been shown in other studies too, pain in neck and back can arise because of mental pressure too. Additionally, upper body discomfort may be associated with an increased physical workload.

Methods :

The present study was conducted on 100 students of B.Sc. Computer Science course in a Delhi University college. These students are regular computer users i.e. use computers for more than 5 hours per day. The specific yoga schedule for sixty days has been prepared for them to attend to their special requirements.

Sampling:

Samples were chosen on the following basis:-

1. Only female participants in between the age group of 18-23 years.
2. Computer users of at least 5 hours daily.
3. All participants were right-handed.
4. No significant musculoskeletal problem was reported by any participant at the beginning of the study.

A total of 100 participants selected for the study were divided into two group of 50 each for Experimental group and the Control Group. The experimental group attended the yoga class of one hour daily whereas the controlled group continued with their routine day–to-day work as they used to on a regular basis. Both groups were assessed on the first day and then after sixty days.

Assessment :

The following instruments were used to assess the working capacity of the both groups :

For Tapping Speed :

The Lafayette instruments Model no. 320/2 Indiana; USA was used by the subjects to test their both hands tapping speed. Subjects were asked to tap the apparatus as fast as possible with both the hands on alternate basis. Tapping speed was assessed in three contiguous periods of 20 seconds each with 5 seconds rest.

Lower Back and Hamstring Flexibility :

The flexibility of the hamstring muscles and lower back were assessed by using sit and reach apparatus. For this test, the subjects were required to sit on the floor with straight legs, without bending their knees and placing their soles flat against the box. The subjects had to be bare footed. The hands were to be placed on top of each other and the palms were facing the floor. The upper body was to reach forward along the measuring line as far as possible. Sliding a plate with a marker, along the scale as far forward as possible, there should not be any jerk while performing and fingertips will remain at the same level. The subject reaches forward along the measuring line as far as possible, sliding a plate

with a marker along the scale as far forward as possible. After one practice reach, the second reach is held for two seconds while the distance covered will be counted.

Grip Strength

To measure the grip strength the hand-held dynamometer is used. The dynamometer is to be squeeze by hands with all their strength, it should be done three times with both hands and average score can be calculated. Hand grip strength can be quantified by measuring the amount of static force that the hand can squeeze around a dynamometer. The force is measured in kilograms. Primarily the muscle strength of the flexor muscles of the hand and forearm are measured.

Intervention:-

The yoga sessions of an hour daily for the experimental group were taken by a qualified yoga instructor. An hour yoga class was divided into five parts - 10 min warm up with surya namaskar repetitions, 10 min. meditation exercises, 30 min. asanas for joints and flexibility, 5 min. stretching and 5 min. relaxation.

Past researches were consulted to identify various asanas proven to be effective in overcoming the problem of musculoskeletal.

Findings :

Variables	Hand	Experimental Group (Yoga)				Controlled Group			
		Day 1	Day 1	Day 60	Day 60	Day 1	Day 1	Day 60	Day 60
		x	σ	x	σ	x	σ	x	σ
Tapping Speed at 10 sec	Right	31.5	7.9	33.3	7.2	31.7	7.5	30.6	6.9
	Left	34.5	7.0	35.4	6.6	34.7	6.2	34.6	6.0
Tapping Speed at 20 sec	Right	31.7	9.0	33.9	7.5	31.2	7.5	31.1	7.8
	Left	34.5	6.9	35.6	6.0	34.2	6.0	32.9	5.5
Tapping Speed at 30 sec	Right	30.4	7.3	32.8	6.8	29.0	7.4	29.8	6.5
	Left	32.7	5.5	34.2	6.3	32.4	6.4	31.8	5.5

Table 1 : Tapping Speed Results - Experimental Group and Controlled Group

Table 1 : indicates the descriptive statistics for experimental group and controlled group on tapping speed of right and left hand of both groups. The table includes the number of participants i.e 50 in each group. The mean and standard deviation were calculated. The table reflects that the right hand tapping speed after 10 second mean score for the experimental group was 31.5 on day 1 and

improved significantly to 33.3 (an improvement of 5.83%) on day 60, controlled group tapping speed mean score was 31.7 on day 1 and 30.6 (a decrease by 3.61%) on day 60.

The table indicates that the right hand tapping speed after 20 second mean score for the experimental group was 31.7 on day 1 and 33.9 (an improvement of 6.96%) on day 60, controlled group tapping speed mean score was 31.2 on day 1 and 31.1 (almost the same) on day 60. Left hand tapping speed after 20 second mean score for the experimental group was 34.5 on day 1 and 35.6 (+3.4%) on day 60, controlled group tapping speed mean score was 34.2 on day 1 and 32.9 (-3.91%) on day 60.

The table further shows that the right hand tapping speed after 30 second mean score for the experimental group was 30.4 on day 1 and 32.8 (+7.9%) on day 60, controlled group tapping speed mean score was 29 on day 1 and 29.8 (+2.63%) on day 60. Left hand tapping speed after 30 second mean score for the experimental group was 32.7 on day 1 and 34.2 (+4.54%)on day 60, controlled group tapping speed mean score was 32.4 on day 1 and 31.8 (-1.85%) on day 60.

These scores in Table 1 indicate that the yoga training group had a significantly higher average performance score as a result of sixty days of yoga training than the controlled group.

Besides this, some additional interpretations can be

1. The effect of Yoga training is more pronounced in the right hand as compared to the left hand.
2. The effect of Yoga training is better reflected for longer duration tapping results, perhaps it helps improve muscle strength, so that the improvement in tapping speed for longer duration is better compared to shorter durations.
3. The performance of the control group has even decreased over time, maybe due to possibility of deterioration without any corrective exercise.

Variables	Experimental Group (Yoga)				Controlled Group			
	Day 1		Day 60		Day 1		Day 60	
	x	σ	x	σ	x	σ	x	σ
Scores with sit & reach task	24.0	7.2	29.2	7.7	25.6	8.1	26.2	7.6

Table 2 : Sit & Reach Test Results-Experimental Group and Control Group

Table 2 indicates the descriptive statistics for experimental group and controlled group on sit and reach test that measures the effect of Yoga and no exercise on stretch and flexibility of the two groups respectively. The number of participants were 50 in each group as mentioned earlier too. The mean and standard deviation was calculated. The table shows that the pre training mean i.e Day 1 stretch and flexibility score for the experimental group was 24.0 and on controlled group was 25.6 and on Day 60 stretch and flexibility score for the experimental group was 29.2 (an improvement of 21.67%) and 26.2 for the control group indicating almost no change. These scores in Table 2 indicate that the experimental group had a significantly higher average performance improvement probably as a result of sixty days of yoga training than the controlled group who didn't undergo any training. Of all the various aspects, Yoga's role in improving flexibility is the highest.

Variables	Hand	Experimental Group (Yoga)				Controlled Group			
		Day 1		Day 60		Day 1		Day 60	
		x	σ	x	σ	x	σ	x	σ
Grip Strength	Right	30.2	8.5	32.3	8.6	30.6	7.9	31.1	7.6
	Left	29.1	8.6	30.8	8.8	29.8	8.0	30.2	7.9

Table 3 : Grip Strength Results - Experimental Group and Controlled Group

Table 3 indicates the grip strength results of both experimental group and controlled group. The table further shows that the pre training mean i.e Day 1 right hand grip strength score for the experimental group was 30.2 and on Day 60 was 32.3 (a 6.95% improvement), controlled group was 30.6 on Day 1 and 31.1 on Day 60 (+1.77%). The pre training mean i.e Day 1 left hand grip strength score for the experimental group was 29.1 and on Day 60 was 30.8 (5.84%) and that of the controlled group was 29.8 on Day 1 and 30.2 on Day 60 (+1.36%). These scores in this Table indicate that the yoga training group had a significantly higher average performance score as a result of sixty days of yoga training than the controlled group. Here too, we can see the improvement is more in case of the right hand.

Discussion Of Results:

In the present study, the experimental group comprising participants who attended sixty days of Yoga classes reported a

considerable decrease in the musculoskeletal discomfort. Due to these yoga classes, not only did the musculoskeletal discomfort decreased, the flexibility of the lower back and hamstring muscles, and the tapping speed too showed improvement. On the other hand, the musculoskeletal discomfort of the controlled group either saw no change or saw a mild increase in the observation period of sixty days.

The discomfort in the whole body, right and left hand of the experimental group decreased considerably and they could handle the extra workload and mental pressure. Comparatively, the controlled group saw a surge in their musculoskeletal discomfort.

Although improved hand grip strength after Yoga suggests an upsurge in muscle strength and stamina. After a month of regular yoga practice, the tapping speed, which is correlated with motor speed for repetitive movements, was increased. Motor speed is influenced by muscle strength, endurance and coordination.

In contrast to the experimental group, the controlled group displayed a reduction in left hand tapping speed, at the end of the sixth-week span.Work fatigue during this period might have contributed to the above result. Also, psychological factors and reduced motivation for the task in the nonexistence of interference could have contributed to the decline too.

After the sixty days of yoga sessions, it was found that the experimental group had shown notable improvement in the musculoskeletal discomfort. Also they showed an increase in the bilateral hand grip strength, the tapping speed of the hands and an increase in lower back and hamstring flexibility based on a standard sit and reach test. In contrast, when we compare with the controlled group the increased cases of musculoskeletal discomfort was noticed. For instance heavy physical workload like an increase in long hours working on the computer and sitting which results in increased pressure on the neck, lower back and hand that will increase the mental stress also.The experimental group was able to handle the mental pressure and workload more efficiently which showed through the results in the various tables.

The following asanas are suggested which were done by the experimental group and benefitted their various body parts :-

WRIST

The wrist is a comparatively small joint, made up of fine tissues that essentially include ligaments (which clutch the wrist bones), and tendons (for range of motion to attach the forearm muscles to the fingers). The wrist lines up and holds the hand, helping in the control of fine motor activities.

Here are 5 yoga poses to help strengthen and maintain the health of your wrists:

Name	Pose	How to perform safely
		WRIST
Adho Mukha Svanasana (Down-ward Facing Dog pose)·		• To perform a dog pose and tuck the toes firmly and lift the butts towards the sky. • To open fingers widely and weight spread evenly through hands (shown in Figure). • To relieve pressure from the wrists, press through the knuckles of your index fingers into the floor.

UrdhvaMukha Svanasana (Upward Facing Dog pose)		• Lay down on your stomach i.eproline position, keep palms by the side of the chest and raise your upper body with straightening of arms and pressing the top of your feet into the mat. • Gently bend your spine than open and expand the chest and the front of the shoulders. • You should feel the weight being supported through the middle of the wrist and slightly into the base of the palm. Place your hands pressing into the mat.
Phalakasana (High Plank pose)		• Take a high plank pose and shoulders should mound over wrists. • Full body weight will be divided on both wrists and toes. • Tuck your pelvis slightly to engage your core muscles and keep your lower back from arching. If your hips will go down then the lower back will feel the pressure.

		• Engage the scapula and pull the shoulders down and away from the ears, while maintaining alignment of shoulders over wrists
Purvottanasana (Upward Plank pose)		• To place your hands behind your hips with the tips of your fingers pointing towards your feet • Keeping the entire palm pressed firmly into the mat. Divide an equal amount of weight in your hands. • Lift your body with straight arms and leg and actively press hands and feet into the mat
Vasisthasana (Side Plank pose)		• Take the Plank position, turn on your left hand and foot, now place your left palm and left leg sole on the mat and raise the right hand and leg up towards the sky. • Now full body weight will be on the left hand and left feet, maintained for at least 2 to 3 min.

 ISSN 2278-4632 July-December 2021

		NECK
Balasana		• To perform this asana, first sit on your knees with hips touching heels. • Place your hands on your thighs and exhale slowly, bring your chest between your knees and swing your hands forward. • Breathe gently and hold the posture for 3 to 4 minutes. • Now inhale slowly and return to the starting position.
Nataraja Asana or Reclining Twist:		• Stand straight and open your legs shoulder width apart. • Now take one leg backward up and hold the feet with the same hand. • Place the other hand in front of your body at shoulder level with a straight elbow. • Maintain the pose for 2-3 minutes and perform with the other leg.

Utthita Trikonasan		• Stand straight and open your legs at least one meter. • Extend your arms at the shoulder level. • Inhale and raise your left arm over your head. • Now, bend your body towards your left and left hand will touch the left feet with your straight hand.· Perform the same with the right arm. • Perform this asanas 3-4 times.
Intense side stretch (Parsvo-ttanasana)		**BACK** • Stand straight and open your legs at least one meter. • Keep your hands on your hips and hold the right hand wrist with your left hand. • Bend from buttocks to fold your torso forward and tuck your chin into your chest. • Maintain this pose for 2-3 minutes and now repeat with the other side.

Head to knee (Janu Sirsasana)		• Sit on the floor with a yoga mat in a sukhasana or padmasana. • Press your right foot into the inside of your thigh. • Now extend your left leg. • Take your hands overhead and Inhale now exhale and bend forward on your left leg. • Now hold on to your left leg or foot. • Perform for 2 to 3 minutes. • Perform with the other leg and do the opposite side.

Cat-Cow (Bitilasana Marjarya-sana)		**CORE FLEXIBILITY** • Take a table pose and make sure that your wrists are beneath your shoulders and your knees are beneath your hips. • The weight should be evenly balanced across your body, inhale and enlarge your stomach. Raise your chest and chin as your belly moves downward. • Tuck your chin into your chest. Exhale and round your spine up toward the sky. • Continue with this movement for 1-2 minute. • Lay down in proline position and hands by the side of the body. • Bend your knees and take your hands at the back to hold the ankle or toe.

 ISSN 2278-4632 July-December 2021

Bow Pose (Dhanura-sana)		• Now lift your shoulders and chest off the ground as much as you can. • Keep your head looking forward while taking long, deep breaths. • Maintain this asana for at least 30 seconds and then release.
HIPS Low lunge (Anjaneya-sana)		Ideal for all levels, this pose helps lengthen your spine, open your hips, and build muscle strength. It may also help alleviate sciatica.To do this pose: • Kneel on the floor on your left knee. Bend your right knee and place your right foot flat on the ground in front of you. • Lengthen through your spine and out the crown of your head.

<table>
<tr><td></td><td></td><td>• Lift up your torso and arms. Or, you can extend your arms to the side, perpendicular to the floor.
• The right hip must be gradually pushed into.
• Try to hold this position for at least 30 seconds.
• Switch legs and repeat on the opposite side.</td></tr>
<tr><td>Wide-angle seated forward bend (Upavistha Konasana)</td><td> </td><td>This forward bend will open up the lower back and hips and improve the flexibility of hamstrings and calves muscles.
To do this pose:
• Sit on the floor and open your legs as far as possible...
• Take your arms over your head now, bend forward and extend your arms as forward as possible.
• Maintain this pose for 2-3 min.</td></tr>
</table>

Cow Face Pose (Gomukhasana)		**SHOULDER & NECK** • Sit in a comfortable position. Lengthen your spine and chest to open. • Take your left arm overhead, then bend your elbow so your fingers point down towards the spine. • Use your right hand, take it at the back and bend in upward direction and try to hold the right hand fingers with left hand fingers. • Maintain this pose for at least 1-2 min. • Change arms and do it on the other side.

Plow Pose (Halasana)		• Lie in supine line position, keep your hands by the side of the body. • Raise your legs straight up to 90 degrees and now take it over your head. • Place your hands on your lower back, aligning your pinky fingers on either side of your spine with your fingers facing upward. • Hold for 1 to 2 minutes. • Release by rolling your spine back down to the floor. • Repeat 1 to 2 times.

Bibliography

1. fitogram: Yoga-Markt in Deutschland 2016. https://www.fitogram.pro/blog/yoga-markt-in-deutschland-2016/. Accessed 21 Sept 2018.
2. BDY. Berufsverband der Yogalehrenden in Deutschland e.V.: Yoga in Zahlen 2018. https://www.yoga.de/yoga-als-beruf/yoga-in-zahlen/yoga-in-zahlen-2018/. Accessed 21 Sept 2018
3. Hamby, S., Grych, J., & Banyard, V. 2018. Resilience portfolios and poly-strengths: Identifying protective factors associated with thriving after adversity. Psychology of Violence.
4. Saper RB, Lemaster C, Delitto A, Sherman KJ, Herman PM, Sadikova E, Stevans J, Keosaian JE, Cerrada CJ, Femia AL, et al. Yoga, physical therapy, or education for chronic low Back pain: a randomized noninferiority trial. Ann Intern Med. 2017;167(2):85–94.
5. Büssing, A., Michalsen, A., Khalsa, S. B. S., Telles, S., Sherman, K. J. 2012. Effects of yoga on mental and physical health: A short summary of reviews. Evidence-Based Complementary and Alternative Medicine, 2012. doi:10.1155/2012/165410
6. Sherman KJ, Cherkin DC, Wellman RD, et al. A randomized trial comparing yoga, stretching, and a self-care book for chronic low back pain. Archives of Internal Medicine. 2011;171(22):2019–2026.
7. Tilbrook HE, Cox H, Hewitt CE, et al. Yoga for chronic low back pain: a randomized trial. Annals of Internal Medicine. 2011;155(9):569–578.
8. Kissen M, Kissen-Kohn DA. Reducing addictions via the self-soothing effects of yoga. Bull Menninger Clin. 2009;73:34–43.
9. Oken BS, Zajdel D, Kishiyama S, Flegal K, Dehen C, Haas M, et al. Randomized, controlled, six-month trial of yoga in healthy seniors: Effects on cognition and quality of life. Altern Ther Health Med. 2006;12:40–7.

10. Bharshankar JR, Bharshankar RN, Deshpande VN, Kaore SB, Gosavi GB. Effect of yoga on cardiovascular system in subjects above 40 years. Indian J Physiol Pharmacol. 2003;47:202–6.

11. Malathi, A. Damodaran, Nilesh Shah and N. Patil; Effect of yoga practises on subjective wellbeing ;May 18, 1998.

12. Saroj Maroik,Chandra Sankar Hazari and Bhim Chandra Mondal; Effect of Yoga on Health ; March 2017; PAGES 75-77

13. Rizzolo, D., Zipp, G. P., Stiskal, D., & Simpkins, S. (2009). Stress Management Strategies For Students: The Immediate Effects Of Yoga, Humor, And Reading On Stress; 2009 ;vol .6, issue 8.

14. Bilge Basakci Calik,1 Nesrin Yagci,2 Suleyman Gursoy,3 and Mehmet Zencir4 Upper extremities and spinal musculoskeletal disorders and risk factors in students using computers Pak J Med Sci. 2014 Nov-Dec; 30(6): 1361–1366.

Dr Seema Singh
Dept. of Physical Education
Indraprastha College for Women
University of Delhi

❑❑❑

China's Belt And Road Initiative: Implications For India

• Dr. Ravi Sabavat

China launched the Belt and Road Initiative (BRI) with the announcement of Silk Road Economic Belt and Maritime Silk Road in 2013 by Communist Party of China (CPC) General Secretary and Chinese President Xi Jinping. It is evident that the structure of BRI-related events has all been about promoting Chinese national objectives. There is a domestic economic logic to the BRI in that it helps reduce excessive and unnecessary investment in infrastructure development within China.

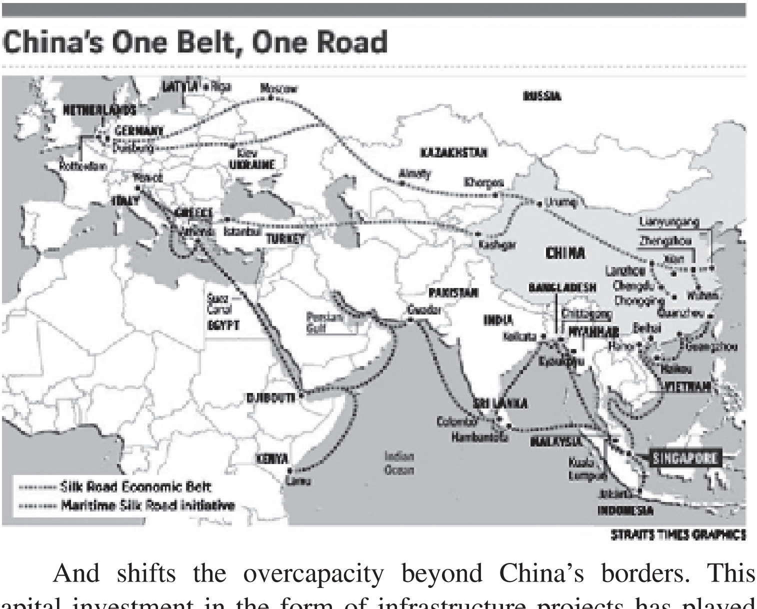

And shifts the overcapacity beyond China's borders. This capital investment in the form of infrastructure projects has played

an important role in the high figures of Chinese GDP growth for years and to avoid overheating and bursting of the real estate bubble the focus has shifted outside China so that its infrastructure overcapacity can be used in its immediate and extended neighbourhood where there are substantial infrastructural and industrial deficits. Since inception of BRI, the image that China has tried to cultivate is that BRI is an economic project aimed at fulfilling a crucial development need for infrastructure in Asia, Africa and Europe and is aimed at increasing people-to-people contacts has been punctured as these projects involve high cost that have led many nations into debt trap due to lack of transparency on their terms and conditions, alleged bribery of host government officials, use of Chinese labour and old, polluting technologies. The Chinese state and CPC have undertaken a massive propaganda by using social media platforms such as Twitter and Facebook, which they have banned at home and paid advertisements in foreign news publications, to market the concept of BRI. It must be underlined that practically every Chinese project or foreign policy exercise abroad is now being brought under the ambit of BRI or has a BRI theme from investments in technology start-ups to people-to-people exchanges. The BRI has become something of an image-building exercise for Xi Jinping and thus the Party and state have devoted considerable resources for its promotion. The objective is to promote a 'Chinese model' of development and politics. The use of terms like 'win-win' or 'a community of shared destiny' in all BRI-related announcements and documents - is intended to counter-dominant Western narratives in international relations and to offer alternative ideas and values for countries to follow. While addressing the 19th CPC National Congress in October 2017, Xi stated, "China respects the right of the people to choose their own development path," and that this process would involve "contributing Chinese wisdom and strength to global governance." The reference to 'Chinese wisdom' is a clear articulation of the perceived strengths of a Chinese model of development. China has tried to sell the BRI as something of a multilateral initiative which in actuality is a series of bilateral arrangements that China has entered into that allows Beijing to be the 'giver' to retain upper hand during negotiations. There is an

feeling of competition for power with the US in the implementation of projects under BRI. This range from China's positioning of projecting itself as a defender of globalization in the face of the United States inward turn to the fact that BRI projects are in many instances accompanied by military collaborations that the Chinese have promoted in the form of sale of military equipment and visits by military personnel. This includes the actual operationation of a Chinese 'support base' at Djibouti in 2016 besides dual use of Chinese controlled ports such as Gwadar in Pakistan and Hambantota in Sri Lanka. India's response regarding the nature of the BRI right from the beginning is that the BRI was less about economic development and more about larger political and strategic goals. The BRI is the closest thing to a 'grand strategy' that the Chinese have come up with since the waning years of the Qing dynasty in the 19th century and despite the economic reforms having started in the late 1970s, it has not been until now under the powerful leadership of Xi, backed by an over US$12 trillion economy, a reasonable military power and an assertive diplomatic corps that China has begun to pay attention to not maintaining and protecting its interests outside China and pushing a 'Chinese model' of development . The BRI is the platform to achieve these goals. India has been suspicious of the way Sri Lanka under Mahinda Rajapaksa regime favoured Chinese projects confirmed that the 'Chinese model' involved unscrupulous practices in promoting projects which the Sri Lankans would find unsustainable. And as it turned out Rajapaksa's successor had to give up the southern Sri Lankan port of Hambantota and thousands of acres of agricultural land around it on a 99-year lease to China in 2017. Even Pakistan has received complaints against the China-Pakistan Economic Corridor (CPEC) from a variety of sources - political parties, provincial governments, economists, the media, businessmen and entrepreneurs. India cannot ignore opposition or concerns in Pakistan over the CPEC, for this has implications for India-Pakistan relations. The Chinese believe that China's investments in Pakistan will ensure its economic development which would reduce the chances of Pakistani youth taking up terrorism implying thereby that if the CPEC were to fail, then there is greater likelihood of Pakistanis taking to terrorism for lack of better opportunities. Thus, the conditions that affect the progress of the CPEC are also of

concern to Indian observers. Further, if the Chinese were to depend on the Pakistan Army to complete the CPEC in case of the inability of the Pakistani Government then this risk further aggravates tensions in the India-Pakistan relationship given the Pakistani security establishment's positions vis-à-vis India. The Indian government has highlighted many shortcomings of the BRI in a brief note by its foreign ministry spokesperson while outlining its reasons for not attending the grand Belt and Road Initiative Forum that Beijing organized in May 2017 involved issues pertaining to transparency, environmental protection, economic feasibility and technology transfer associated with the BRI.

India has lost much goodwill over the years for its inability to implement promised projects despite these originating several years before the Chinese or the BRI appeared on the scene. In many instances, China took advantage because of India's abdication of its responsibilities, limited to financial aspects rather than wider political aspects like India turning down the offer to develop and run Hambantota. While the Indians were correct in suggesting that the port was not economically feasible but India should have pitched in by thinking strategic and anticipating the Chinese move and the present reality is that China is occupying the Port for 99 years, a prime piece of strategic real estate right at its neighbourhood. For these small neighbouring countries the political value of being seen as standing up to India and using the alternatives provided by China can outweigh the economic consequences. Pakistan appears to be showing this attitude towards India in the face of its declining relationship with the US and its (particularly, the military establishment's) hard-line stance on economic and political ties. China could well argue the risks involved in BRI projects are inevitable given that China is the only country that is willing to invest in regions which are arguably some of the most politically unstable and economically underdeveloped areas of the world and these countries have not received adequate attention from the developed West or from international development agencies. India on its part promised to engage with the Japanese especially along the Asia-Africa Growth Corridor. Even though this initiative was announced in 2017, it is yet to show substantive results. Indian government officials and some analysts

can make the point that India cannot and should not compete directly with China in their areas of strength such as infrastructure projects and that India should focus on its strengths. While this is a legitimate approach, New Delhi cannot both highlight the security and economic challenges of the BRI's mega-infrastructure projects and not offer a direct counter or alternative to them. In the present scenario India may not have the option of working in its zone of comfort and not developing the capacity or making the necessary investments in competing with the Chinese. India needs to offer support to BRI host countries to build up their expertise in legal, economic and legislative domains to help them pre-empt the ill-effects of BRI. This could be in the form of helping these countries formulate governance norms to various infrastructure projects such as the formulation of environmental impact assessments, financial and legal accountability standards and so on. Also, where the Chinese projects are already underway, India should cooperate with US, Japan or any other like-minded country or countries to implement projects with better quality standards and accountability. The Chinese have the ability to learn from their mistakes and recover lost ground fairly quickly and this approach is unmatched by other governments. However, it involves synergy between various government and CPC institutions along with government officials, the academic and the research community. China's BRI challenges India to reconsider the whole gamut of its foreign policy objectives, strategies, and structures as well as its internal structures of administration, including centre-state relations. Although India may not short of ideas and governance, it is no doubt inadequate in both resources and capabilities. Some of these can be overcome by better coordination and synergy in the implementation of foreign development projects.

Security Implications Of China's Military Presence In The Indian Ocean

China's increased military presence in the Indian Ocean should not come as a surprise as China is following the traditional path of other rising powers and is expanding its military operations to protect its interests outside China. The security implications of China's push into the Indian Ocean region are mixed. During

peacetime, the presence of the Chinese military will help it to spread its influence in the region. In wartime, however, China's Indian Ocean presence is likely to create more vulnerabilities than opportunities. China's military forays into the Indian Ocean have triggered a series of warning signals. The term "String of Pearls" was first used to refer to China's growing presence in the Indian Ocean vide a 2004 report for the U.S. Department of Defence suggesting that China's growing regional presence can "deter the potential disruption of its energy supplies from potential threats, including the U.S. Navy, especially in the case of a conflict with Taiwan." Other scholars have warned that Beijing seeks to "dominate" the Indian Ocean Region. Others suggest that the Chinese government is protecting its trading interests and seek to secure its supply lines against disruption, although China's presence in the Indian Ocean may lead to increase of influence in the region but these Chinese facilities and forces would be highly vulnerable in case of a major conflict. Thus, the security implications of China's foray in the Indian Ocean region are mixed. During peacetime, such efforts would help in expanding its regional influence. However, during wartime China's Indian Ocean presence is likely to create more vulnerabilities than opportunities.

Expanding Influence in Peacetime:

China's increased military presence in the Indian Ocean should not come as a surprise to anyone. China is following the conventional -path like other rising powers as it expands its military operations to protect its interests abroad. The Chinese economy particularly its energy supply is dependent on trade routes that pass through the Indian Ocean, which serves as a vital pathway. It is natural, therefore, for the Chinese government to protect its interests along these Sea Lines of Communication. Beijing has reason to be concerned about multiple potential risks in the region which range from maritime piracy to the potential disruption of the Chinese supply lines by India or US in case of conflict.

China's efforts to project itself as a power in the Indian Ocean are at its infancy, but thought process is increasingly becoming clear. To be able to sustain its forces in the Indian Ocean region, China needs to have access to facilities in key places around

the region. China's new military base in Djibouti provides a power-projection base, which is bolstered by its access to ports in Bangladesh, Myanmar, Pakistan, and Sri Lanka. Although China is using its Belt and Road Initiative (BRI) to fund many of these projects, analysts believe that the infrastructure is being created for dual use purpose. During peace time the likely Chinese strategy would be to use such port facilities to refuel and resupply its naval vessels without having to sail back to its facilities in East Asia. In future the People's Liberation Army Navy (PLAN) is likely to develop some facilities in the region for conducting minor repairs which would provide China with a greater ability to sustain forces in the region, thereby avoiding costly and time-consuming practice of having to foray from distant ports to China. Also, China is likely to continue conducting counter-piracy operations around the Horn of Africa as it serves multiple purposes. It provides the Chinese forces requisite practice in undertaking such operations at distance far away from the mainland. Such efforts would help China in assessing shortcomings in its Military's ability to sustain itself far away from the Mainland. Counter-piracy operations in the region provide an exposure in understanding the operational patterns of foreign militaries operating in the region. This can be useful -from the perspective of intelligence-gathering and in comparing its strengths and weaknesses with those of foreign militaries, including that of United States, India, Japan, Australia, and others. Chinese vessels may gain experience by undertaking intelligence, surveillance, and reconnaissance missions to understand regional militaries and gather data along the geographic area in and around the Indian Ocean. Also, surveying the Indian Ocean would be helpful in preparing for a potential wartime scenario. Such activities would help China in updating the operating practices of potential challengers including the Indian Navy. China may also seek to undertake joint -training and exercises in the region in partnership with other militaries. In all probability -Beijing is unlikely to find any partners in the region but it could work with lesser capable maritime states, like Pakistan, thereby helping them to develop their maritime capabilities. This would also increase the concerns for the Indian military and stretching the Indian Navy. Such efforts by China could serve as a counter balance to Indian efforts to build

maritime capacity in Southeast Asia in collaboration with states like Vietnam. Chinese operations in the Indian Ocean during peacetime are likely to be similar to those of other great powers like the United States who operate in the region and protection of trade routes is likely to be the main and primary objective. However, it will require substantial efforts by the PLA Navy to be able to sustain such forces at sea. A secondary objective would be to prepare for the possibility of conflict, in the Indian Ocean.

Vulnerabilities during Wartime : Peacetime operations in the Indian Ocean provide opportunities for the PLAN to expand its reach and capabilities but any Chinese military presence during war time would pose immense difficulty in the Indian Ocean as PLAN would be vulnerable. It would find itself in a difficult position to protect its trade routes, bases, and ships if hostilities break out involving either India or the United States (or potentially both at once). The Chinese trade routes would be vulnerable as the sea lines of communication from the Middle East to China are along the Indian coast for substantial portion of their journey. Without a strong naval presence in the region China would be unable to protect these shipping routes on its own. Although it might be possible to move forces in the convoy but these convoys would have to avoid the Malacca Strait as the improved Naval Indian facilities in the Andaman and Nicobar Islands would make it difficult for Chinese forces to protect itself against aircraft or submarines in the region. Also, U S facilities at Diego Garcia would pose a significant challenge. This would force the Chinese ships to divert from the Malacca Strait to the Sunda Strait, which would add significant time in transiting the Indian Ocean. Also, this would prove risky as the Australian facilities at Cocos and Christmas Islands are within striking range of these trade routes and could potentially be used by U.S. forces during hostilities. Therefore, in a conflict scenario if the United States or India were to disrupt the energy supplies then Beijing would be forced to open its land supply routes and its reserves for the duration of the conflict and the Chinese military vessels would have access to only limited number of bases in the Indian Ocean would be dependent on access to a limited number of bases. Although, the United States is vulnerable in East Asia due to few friendly bases in the Pacific, however, it

would be a greater challenge for China as it has far less capable partners in the Indian Ocean. For China getting sufficient munitions into the region would be a concern which would prevent the Chinese forces in sustaining after a first few days or weeks of conflict. If China is able to sustain a carrier strike group in the region, it would provide an opportunity to enhance its power-projection capability during crisis. However, the carrier-based airpower is vulnerable to land-based aircraft, which have substantial range and payload. Thus, there is a remote possibility that China would take such a in risk operating a carrier strike group in the Indian Ocean during hostilities. In a likely conflict scenario with the United States, sailing its forces through the Malacca Strait would be very risky for China given the undersea capabilities of the US. Instead, such assets would be kept closer to the Chinese coast or in the Western Pacific, where they would be better protected against land-based airpower or quiet attack submarines of US. The most likely Chinese assets which can be expected in the Indian Ocean would be long-range maritime surveillance aircraft in combination with the Chinese submarines. This combination of forces would be less vulnerable to attacks than the large surface ships. This would help China in securing its commercial interests to a certain extent. The Chinese military may also deploy smaller naval vessels, such as patrol ships or frigates, to protect its military ports and bases. However, in case of attacks to the Chinese bases the forces stationed there would have no option but to defend themselves independently on their own. Also, the Chinese supply lines from the Middle East would come under severe threat in case of a major contingency and its forces in the Indian Ocean would be isolated.

Of lately, China's foray into the Indian Ocean has attracted a great deal of interest from the world powers. The Chinese engagement in the Indian Ocean has altered the regional security dynamics in the peacetime environment. Beijing's political, economic, and military influence is likely to increase in future times to come thereby increasing concerns for India. However, the Chinese forces and facilities would be highly vulnerable in a major conflict scenario. The country has expanded its military ties across Africa in recent years with more than 2,500 Chinese combat ready soldiers and police officers deployed in UN peacekeeping missions

in the African continent. While the growing Chinese military presence has been viewed with concern by rest of the world and they are suspicious of China's "ulterior motives", China's state-run media has always said that the new Naval Base is for protecting its own security and "not aimed to control the world". Positioned along the North Western region of the Indian Ocean, the Naval Base at Djibouti is the "first pearl of a necklace" along the sea route which connects China to the Middle East. India is concerned that it is part of China's strategy to encircle the Indian subcontinent ("String of Pearls") with the help of military collaborations and assets in Bangladesh, Myanmar and Sri Lanka. Djibouti's status as a country with stability in an otherwise volatile region is one of its greatest positive assets. It lies on Bab el- Mandeb Strait, a gateway to the Suez Canal which is one of the world's busiest shipping routes. China believes that the naval base in the region would be deterrence for pirates to attack along the crucial trade routes between the Indian Ocean and the South China Sea. Djibouti's proximity to restive regions in Africa and Middle East makes it significant for the location of bases for military superpowers. The crisis in Somalia and Yemen has warranted international responses and need for military bases nearby. Chinese nationals working in the region would benefit due to proximity of the military base in the region. Djibouti hosts the largest American permanent military base in Africa, Camp Lemonnier which is home to more than 4000 personnel. However, the Chinese base established in northern Oblock region eclipses the smaller US military installation there. Japan which has been in a tense standoff with China over disputed islands in South and East China Sea, is in the process of expanding its small military outpost in the desert nation. China is the main trading partner of Africa since 2008 and it has long term interests due to vast mineral resources in Africa and Djibouti is at the core of such a strategy. Also, China's overseas military base at Djibouti would help it realise its ambitious plan of a "Maritime Silk Road"- a vast network of sea infrastructure aimed at securing its trade routes, ensuring protection of China- bound raw materials and energy vessels, as well as of its finished products back to Europe through the Gulf of Aden.

The Chinese naval presence in Djibouti in the Indian Ocean

does have implications for the security of Peninsular India. Till now, the India-China border dispute was largely a land-air contingency scenario. However, the presence of PLAN in the IOR adds a new dimension which needs to be factored in future planning and preparations by India. With Gwadar, also a potential naval base, the dynamics of the role of PLAN will change and pose a threat to the Indian Navy in the region. PLAN is now suitably poised to patrol as well as protect its assets and shipping in the IOR. Since these sea lanes pass along the India's coastal areas and which could be an area of confrontation between the two navies in the future. It places greater responsibility on the shoulders of the Indian Navy to protect India's sea lanes in the Indian Ocean. With the Chinese base at Djibouti becoming operational, it enables China to position its long-range naval air assets there which are capable of undertaking surveillance in the Arabian Sea and on India's island territories off the Western coast. Also, China-Pakistan maritime cooperation is likely to gain momentum in the future times to come. PLAN would increasingly continue to increase joint naval exercises with the Pakistan Navy in future and the collusion between the two navies in case of an Indian contingency could soon become a reality.

Rererences

1. On August 17, 2019 Wu Jiao and Zhang Yunbi. 2013. 'Xi in call for building of new "maritime silk road"', China Daily, October 04, 2013 URL http://www.chinadaily.com.cn/china/2013xiapec/2013-10/04/content_17008913.htm.
2. Joe 'The Re-Birth of the Spice Road 'March 29, 2018 URL http://www.word4asia.com/gene-wood/the-re-birth-of-the-spice-road/ (Ac[1]) 3.
3. Hurley, John, Scott Morris, and Gailyn Portelance. 2018. 'Examining the Debt Implications of the Belt and Road Initiative from a Policy Perspective', Centre for Global Development, CGD Policy Paper, 121, March, https://www.cgdev.org/sites/default/files/examining-debt-implications-belt-and-road-initiative-policy-perspective.pdf (Accessed)cessed on November 23,2019) [2]
4. Xi Jinping. 2017. 'Secure a Decisive Victory in Building a Moderately Prosperous Society in All Respects and Strive for the Great Success of Socialism with Chinese Characteristics for a

New Era', 19th National Congress of the Communist Party of China, URL http://www.xinhuanet.com/english/download/Xi_Jinping%27s_report_at_19th_CPC_National_Congress.pdf 18 October, Xinhua, (Accessed on August 17,2019).

5. Xinhua. 2017. 'Chinese president's keynote speech to Davos wins worldwide applause', 18 January, http://www.xinhuanet.com/english/2017-01/18/c_135993780.htm (Accessed on August 17,2019).
6. Manson, Katrina. 2016. 'China military to set up first overseas base in Horn of Africa', CNBC, March31, 2016. https://www.cnbc.com/2016/03/31/china-military-to-set-up-first-overseas-base-in-djibouti.html (Accessed on August 17,2019).
7. Jacob Jabin T 'China's Belt and Road Initiative and its implications for India'HeinrichBoll Stiftung. February 25,2019. URLhttps://in.boell.org/en/2019/02/25/chinas-belt-and-road-initiative-and-its-implications-india (Accessed on November 23, 2019)
8. Cooper Zack 'Security Implication of China's Military Presence In The Indian Ocean' April 04,2018. URL https://amti.csis.org/security-implications-chinas-military-indian-ocean/ (Accessed on November 23, 2019
9. Rudolf Josh 'Troops Head To China's First Overseas Military Base', China Digital Times July 13,2017. URL https://chinadigitaltimes.net/2017/07/troops-head-chinas-first-overseas-military-base/ (Accessed on November23,2019)

Dr. Ravi Sabavat

MA. Ph.D

Assistan Professor

Department of Political Science

Osmania Unversity, HYDERABAD

❑❑❑

An Evaluation of Mid Day Meal (MDM) Scheme Under *Sarv Shiksha Abhiyan* (SSA) in Uttarakhand: Case Study of Two Schools in US Nagar

Neerja Singh • Hari S. Bisht

ABSRACT

The present paper aims to evaluate the status of Mid Day Meal and its other supportive components in two schools of *Rudrapur* block of US Nagar district in Uttarakhand. Primary data were collected through a semi-structured interview schedule from the head of the schools as well from secondary sources. The finding shows that there are mixed results of the scheme. Both schools (one of government another of managed by private committee has a *Pakka Rasoi* and *Bhojan Mata* posted, and receiving an honorarium regularly. However, government primary school in municipal area of *Kichha* in US Nagar district has increased the enrollment of students even after two another government schools were started in these years and in privately managed school enrollments were not increased.

Key Words: *MDM, SSA, Case study, US Nagar, Uttarakhand*

INTRODUCTION

On 15 August 1995, the government of India launched the National Programme of Nutritional Support to Primary Education (NP- NSPE) as a new Centrally Sponsored Scheme. It was started with a view to enhance enrolment, retention and

attendance and simultaneously improving nutritional level among children. Initially in 1995, it was introduced in 2408 blocks in the country and by 1997-98 the NP-NSPE was introduced in all blocks. Under this programme, cooked mid day meals were to be introduced in all government, government aided and local body schools for children at primary level. However, in the first six years after the scheme was launched (until 2001), most states failed in putting required arrangements and thus provided monthly dry ration based on the attendance of the students (Khera, 2006).

The school-going ages have high significance as it is a dynamic period of growth and development as children undergo physical, mental, emotional and social changes during this stage (Bharati, Itagi, & Megeri, 2005). Good nutrition is an essential determinant of the health, physical growth, development, educational performance and progression in life of school-age children (Masibo & Labadarios, 2013). Therefore from the nutritional point of view they constitute a vulnerable group. This vulnerability is easily susceptible to malnutrition and infection (Prabhakar & Gangadhar, 2009).

School Feeding Programme in India is known as National Program of Nutritional Support to Primary Education (NP-NSPE) and is commonly known as the mid-day meal (MDM) programme. Its genesis is a long history of initiatives peppered across the subcontinent. The first venture in mid-day meals was several decades ago in 1925. At that time, an MDM programme was introduced for children of poor socio economic status in the Madras Corporation area in the state of Tamil Nadu (Chettiparambil-Rajan, 2007).

OBJECTIVE

Present study aims to;

1. To evaluate the MDM scheme at two schools;
2. To find out the developmental impact for last three years.

METHODOLOGY

Rudrapur is a block situated in US Nagar of Uttarakhand.

The two schools one Primary school in the Kichha Town (representing urban area sample) and other a Middle school at Gokul Nagar (Rural area representative sample) has been taken purposefully for the study.

Convenient and diagnostic sampling method along with observation and a check list as data sheet used as a tool to find out the results of the study. Further, content analysis method also used in the study.

FINDINGS

Infrastructure: In both the schools has the *Pukka Rasoi* Room to cook the food.

Human Resource: Both the schools have contractual *Bhojan Mata* with an honorarium of Rs. 2000/- per month.

Health Checkup held: In both the school health checkup of students has been conducted through the School Health Team of CHC, Kiccha.

Food Schedule: Both Schools were preparing *Daal, Chawal, Subjee* on all working days of schools. Further, on one day of week, on Thursdays, Fruit/Egg/ *Ramdaane Ka Laddoo* added in the menu.

Data of Students at Schools

Government Primary School, Kiccha

Sr. No	Year	Total No of Student benefited for MDM (Class 1st to 5th)
1.	2015-16	254
2.	2016-17	281
3.	2017-18	327

The Table above depicts that there is a consistent increase in the numbers of students as a MDM beneficiaries, which shows the developmental impact of the MDM programme under SSA.

Prag Narayan Madhyamik School, Gokul Nagar.

Sr. No	Year	Total No of Student benefited for MDM (Class 6th to 8th)
1.	2015-16	134
2.	2016-17	135
3.	2017-18	123

The table above depicts that there is slight increase of one student in the corresponding year (from 134 to 135). Now the number of student has been decreased (123 only).

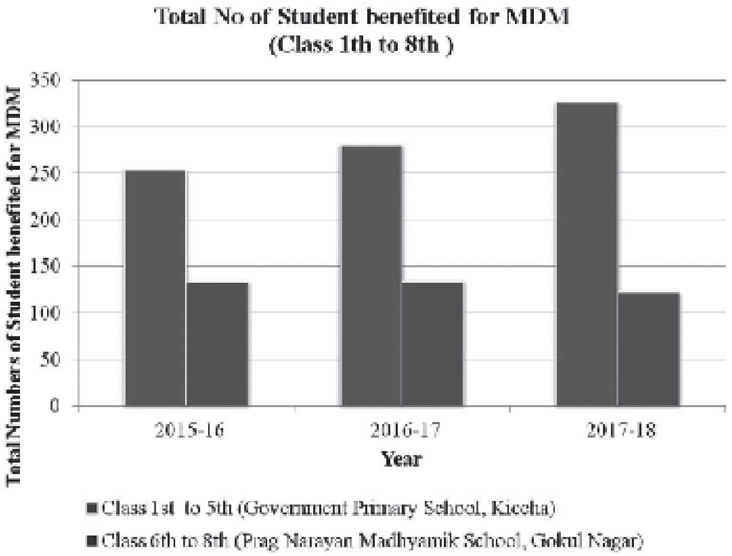

5. DISCUSSION :

A study entitled *"Cooked Mid Day Meal Programme in West Bengal – A study in Birbhum District"* conducted by Sen (2005) found; that Mid-day Meal has made positive intervention in universalization of Primary Education by increasing enrolment, attendance of the children.

A study on *"Situation Analysis of MDM programme in Rajasthan"*; conducted by Mathur (2005); found that cooked mid day meal has reduced classroom hunger especially those belonging to underprivileged sections. Cooked mid day meal has also contributed to the cause of social equity as children, cutting across caste and class lines sit together to share a common meal.

A study entitled *"MDM in 70 most backward villages of Madhya Pradesh"* conducted by Jain and Shah (2005) and found that meal has positively affected the learning abilities of school children.

A study on assessment of *"Programme Implementation and its impact in Udaipur District"*; conducted by Julia (2005) found; that cooked MDM had become a permanent part of the daily routine of rural primary schools in Udaipur. Introduction of menu based mid-day meal has positively impacted enrolment and daily attendance of children. Noronha and Samson (2005) conducted a survey of 12 MCD schools undertaken in Delhi, the survey found out that School children in all the schools are getting cooked food.

Naik (2005) reported on *Akshara Dasoha* Scheme of Karnataka and found that the programme has made positive impact on teacher absenteeism. National Council of Educational Research & Training's latest Report (2005) found that learning achievement of students at the end of Class-V - inferred that children covered under MDM Programme have higher achievement level than those who were not covered under it.

In a study entitled *"Nutritional status of Mid Day Meal Programme beneficiaries in Kerala"* conducted by Jayalakshmi and Jissa, (2017) showed a higher prevalence of under nutrition among school age children who were the beneficiaries of MDM Programme, and this indicates the need for continuous nutritional interventions and surveillance among these children.

Present study also observed that a big increase of enrollment in the Government Primary School was only government school among many wards and situated at the heart of the city. The number could be more if new school (02) does not emerge during last two years. Further, the BPL quota for the private school admission also hampered the number of students.

Government schools are however, backbone for providing education for common parents, but the attraction or wish to give a

better or English medium psyche of most parents particularly financially able to pay the fee tries to send their kids to private schools. At the privately managed school; the trends of enrolment among 6th to 8th class students not increased. It may be due to drop outs of students after primary education. As the mostly parents of the enrolled students were from low socio economic status.

Government is encouraging for full enrollment of every child by providing complete amenities including free books and uniforms to all, still the drop out exist to these age old government schools.

CONCLUSION

The study concludes with a relatively satisfactory picture of having a growth of students in their enrollments in sampled schools in Rudrapur Block of US Nagar District of Uttarakhand state.

As early as 1974, Dr. Gopalan laid emphasis that "the school could be a valuable second front in our attempts to bring about nutrition and health upliftment of our population". The school system in our country offers a vast infrastructure of enormous potential; and can therefore become a most powerful instrument for bringing about transformation. It can exert a profound influence not only on children but on the community at large; and can serve as a focal point for a meaningful synthesis and integration of the currently compartmentalized / fragmented health, MCH and family welfare operations addressing our communities.

Education is recognize as a chief and crucial tool for a developed and healthy nation. Government schools could be more useful and take its pride as older days; if a sensitive and community oriented need based primary education might be given to its students towards their bright future.

References

1. Khera, Reetika (2006) '*Mid-day Meals in Primary Schools – Achievements and Challenges',* Economic and Political Weekly, November 18th.
2. Pushpa Bharati, Sunanda Itagi & S.N. Megeri (2005) *Anthropometric 2 Measurements of School Children of Raichur, (Karnataka)*, Journal of Human Ecology, 18:3, 177-179.
3. Impact of counseling on exclusive breast-feeding practices in a poor urban setting in Kenya: a randomized controlled trial.SA Ochola, D Labadarios, RW Nduati - Public Health Nutrition, 2013

4. Prevalence of anemia in Jenukuruba primitive tribal children of Mysore District, Karnataka SC Jai Prabhakar, MR Gangadhar.The Anthropologist 11 (1), 49-51
5. Chettiparambil-rajan, 2007. India-A desk review of the Mid-Day Meals Program Home- grown-School Feeding Project, World Food Program, July 2007 p-1
6. Sen,A.(2005). *"Cooked mid day meal programme in West Bengal-A study in Birbhum district,"* Pratichi Trust,West Bengal.
7. Mathur,B.(2005).*"Situation Analysis of MDM Programme in Rajasthan,* 'University of Rajasthan and UNICEF.
8. Jain,J.and Shah.M.(2005).''*MDM in 70 most backward villages of Madhya Pradesh,' Samaj Pragati Sahyog*, Madhya Pradesh.
9. Julia,B.(2005).*"Assessment of programme implementation and its impact in Udaipur district,"* Seva Mandir,Udaipur,Rajasthan.
10. Mishra S.*(2013) International Journal of Humanities and Social Science Invention,* Volume 2 Issue 5, May. 2013, PP.58-63.
11. Scientific Report 18 on *"evaluation of mid day meal programme in MCD schools* By Sushma Sharma, Santosh Jain Passi, Salila Thomas, Hema S Gopalan, (2006) Study supported by Municipal Corporation Of Delhi ,Nutrition Foundation of India, New Delhi.
12. Naronha,C. And Samson,M.(2005).*"MDM in Delhi-Afunctioning programme,"* New Delhi.
13. Naik,R.(2005).*"Report on Akshara Dasoha scheme of Karnataka,"* University of Dharwad, Karnataka.
14. *National Council of Educational Research and Training Report(2005),*NCERT, New Delhi.
15. Jayalakshmi R, Jissa VT.(2017) *Nutritional status of Mid-Day Meal programme beneficiaries : A cross-sectional study among primary schoolchildren in Kottayam district, Kerala,* IndiaIndian Journal of Public Health , Volume 61, Issue 2 , April-June 2017, 86-91

NEERJA SINGH

Assistant Professor, Department of Social Work,

SOSS, UOU, Haldwani

HARI S. BISHT

Senior Fellow, School of Social Sciences,

UOU, Haldwani

❑❑❑

Rights and Relationships of the India with Transgender

• **Tinku Khatri**

Abstract :

The personality of an individual is regularly dictated by the moral directs and decisions of the general public. Be that as it may, people who look to challenge these with their characters, sexual directions, and tendencies are frequently evaded, deserted, and treated as the "other". Deserted by families and derided by negative marks of disgrace, they are normally left with no other alternative, then falling back on asking or singing at weddings, to make a living. Indeed, even with such weakness to provocation and viciousness, their desolation generally stays unseen. This as it were, shows the degree of defenselessness and disregard this local area faces. Different rights conceded to this local area are only here and there intense and government assistance measures sleep on paper. Although the Indian Constitution makes powerful guarantees precluding separation of all sorts, there exists vagueness concerning the idea of sexual orientation and the impacts that such a preclusion can have on third sex rights. With the Supreme Court taking a proactive advance in the NALSA judgment, there has been huge consideration drawn towards transsexual rights, which will be inspected in the paper in this manner. Featuring the authentic development of the transsexual individuals and dissecting their situation inwards across the world, this exploration paper expects to reveal insight into the universe of misery and separation this local area has been consigned to in India. Regardless of a few positive advancements that have added to expanded mindfulness and acknowledgment of their situation, serious issues still, plague this part of the general public. Notwithstanding the social and legitimate situation of the transsexual local area furthermore, the legal

treatment of the equivalent, the paper too looks to go about as an uncover with regards to pretend instances of being transgender.

Keywords : Fundamental rights, Transgender, Indian constitution, Indian Relationship, Equality.

Introduction :

In April of 2014, the Supreme Court of India officially perceived the presence of a third sexual orientation. There is no proper meaning of the third sex in India. Individuals who distinguish as neither man nor lady is usually alluded to as Hijra or transsexual. The Hijra have been dependent upon segregation, badgering, and oppression for their genderqueer self-distinguishing proof. Alongside the eccentric local area, Hijras have been focused on by law authorization and government authorities under Section 377. This law was utilized to condemn any strange sexual demonstrations and has been utilized to legitimize separation and abuse of the LGBTQ+ people group since its institution in British pioneer period India. "transgender is usually described as an umbrella term for persons whose identity, gender expression or behavior does not conform to their biological sex."[1] Traditional qualification of human sexual orientation into male and female is only dependent on the organic plan of their genitalia. In any case, as a general rule, some individuals don't find a way into this custom and challenge the organic double. These are the transgender individuals. Generalized as the panhandlers who thump on the moved-up windows of our vehicles at traffic lights or as artists in a nearby bar, these transsexual people carry on with a day-to-day existence full of difficulties. The word reference significance of the prefix "trans" signifies "past," "across," or on the other hand "finished." However, "transsexual" doesn't just connote sex that crosses the fringe. Frequently, this term isn't as expected perceived by everyone. It is an expansive term to encompass all people who live a significant part of their lives showing a natural feeling of sex which goes amiss from notions of their introduction to the world sex. In India, a portion of the local terms is utilized to address the local area. For instance, the term kothi means a scope of female distinguished individuals who have been doled out male sex at birth. Likewise, other unmistakable local and trans-local personalities addressing this local area are *hijras*, *aravani*, *jogtas/jogappas*, and *shiv-shaktis*. This meandering aimlessly constitution of transgender subsumes numerous regional terms and characters.

Discussion:

Their tumble from balance, begun in the eighteenth century during the British pilgrim rule. They lived on the edges of Indian Society and confronted segregation in working environments, occupations, public places, and administrations such as wellbeing and training. As individuals from the underestimated and socially avoided area, they were consistently at the less than desirable finish of negative conduct and disposition. This unsatisfactory quality by people in general, restricted their social commitments, bringing about low self-assurance what's more, confidence, which therefore detached them from the society. The detestable condition of the transsexual people deteriorated with the general public survey and regarding them as "various" individuals, not equipped for finding a way into the endorsed unctuous limits. Excluded because of their sexual orientation character, they discovered asking, prostitution as their lone wellspring of job. To improve thecircumstance, certain rights were ensured to them yet the execution of the equivalent was full of inconceivable obstacles, because of the overwhelming paired sex idea of male or female. For instance, in 1994, transsexual people got casting ballot rights, however, the undertaking of giving them elector personality cards became involved with the male or female inquiry. A few of them were denied cards with the sexual class of their choice.[2] Lawfulness of Marriage Corbett v. Corbett[3]was the primary case to examine marriage including sex change. For this situation, the Court held that despite the sex change, the respondent was as yet a male also, a marriage between guys was void. Further, the rule utilized in the past case was applied on account of R v. Tan[4], where, it was held that post activity of progress of sex, a male still stays a man by law. In India, it is seen after further thought that neither the Hindu Marriage Act nor the Special Marriage Act remembers transsexual individuals for their umbrella. Eunuchs are not secured under National Commission for Women since they don't frame a piece of more pleasant sex. Segment 2(c) of the National Commission for minorities which characterizes minority networks as Muslims, Christians, Sikhs, Buddhists doesn't cover transsexual people all things considered. Curiously, in the worldwide lawful request, there is quietness on the situation with the transsexual in specific archives. The prelude of UDHR, the original record on Human

Rights, peruses “while individuals of United Nations have in the contract reaffirmed their confidence in major basic freedoms” in the poise also, worth of the human individual and in the equivalent privileges of man and lady and have resolved to preface social advancement and better guidelines of life in bigger opportunity. The Charter of United Nations additionally has given no spot to this gender[5] On April fifteenth, 2014, following quite a while of separation and antagonism, the transsexual people could at last wear the lawful ensemble of a separate identity, after Supreme Court, within the landmark judgment of National Legal Services Authority v. Union of India & Ors[6], recognized the third gender category within the eyes of the law. The Court finally busted the bubble of binary gender structure of man and woman and granted equal rights and protection to transgender persons under the constitutional principles of Articles 14, 15, and 16. In Article 14 of the Indian Constitution, which deals with Equality before the law, the term „person does not restrict itself to the dual concept of man and woman. Thus, Hijras/transgender persons who are neither male nor female, also fall within the expression person and are entitled to legal protection of laws altogether spheres of State activity. Furthermore, Articles 15 and 16 are used to broaden the scope of sex to include psychological sex or gender identity and hence held that nobody might be discriminated against on the grounds of sexual orientation. The Court also attempted to guard one’s gender expression which is majorly reflected through dresses, actions, behavior, and similar forms. The Supreme Court stressed on the importance of the right to dignity by recognizing one’s gender identity within the ambit of Article 21 of the Indian Constitution. Further, beyond prohibiting discrimination and nuisance, the Court extended the worldwide principles of dignity, freedom, and autonomy to this unfairly marginalized and vulnerable community and met the norms of the Universal Declaration of Human Rights and 1948, the International Covenant on Economic, Social and Cultural Rights,

1966, the International Covenant on Civil and Political Rights, 1966 as well as the Yogyakarta principles.[7] Based on proper pronouncements and philosophical ideologies as well, this the landmark decision, for the primary time, gave due recognition to gender identity supported the reassigned sex after undergoing Sex Reassignment Surgery(SRS) and explained that the person features

a constitutional right to urge the popularity as male or female after SRS, which wasn't only his/her gender characteristic but has become his/her physical form as well. In September 2014, Ministry of Social Justice and Empowerment followed up with a "Utilization of explanation/adjustment" to the Supreme Court, which looked to clarify the ramifications of the judgment with respect to the proposals of the previously mentioned master council report.

Conclusion :

It is particularly obvious from the above perceptions that transsexual people with various sexual directions face bigotry, separation, and rejection in the general public. This confinement changes from private motivations to the most well-known social incomprehension. While the legal executive has found a way a huge way to eliminate the disgrace joined to the third sex, it is our chance to perceive the valid ramifications of this judgment and focus on its requirement. While tossing cash at hijras to scorn them away, we are not simply offending these people, however are consigning the fundamental standard of mankind; even dogs are better treated by the affection for humankind. Such activities will just lead the transsexual local area to work and battle in the very entanglement of outrage that they have been looking for ages together. In this nation where there is a cosmic system of motivations to terrific reservations, the local area. There are some new victories that have helped the Hijra public. The Right for Transgender Persons Bill drafted in 2014 and passed in 2016 has been a significant achievement in securing the Hijra people group. The law announced numerous types of oppression Hijras to be unlawful and restricted the driving of Hijras to ask or to leave their homes. Different advantages incorporate the production of a board of trustees that centers around aiding Hijra seek after training by offering admittance to grants and reading material among different requirements. The bill has additionally taken into account Hijras to be perceived as socially and monetarily hindered which qualifies Hijras for profits by India's Affirmative Action program. In any case, there are drawbacks to the bill also. Hijra individuals need to go through a locale screening cycle to get their third sex confirmation and ID cards. This methodology can prompt refusal of advantages to Hijras dependent on the choice of a board of trustees without oversight and contained individuals not prepared in sexual orientation personality issues.

Additionally happening in 2014 was the milestone Supreme Court choice that formally perceived the presence of the third sexual orientation. This has considered Hijras to settle on third sex characterization on true authoritative archives like driver's licenses and international IDs. The choice has additionally connoted acknowledgment of the Hijra people group's presence by an administration that has ceaselessly looked to minimize the individuals who aren't cisgender. Be that as it may, this choice has additionally missed the mark intending to the numerous issues Hijras face. Third sexual orientation IDs, while persuaded by well-meaning goals, don't address numerous essential rights. When getting hitched, moving property, or embracing kids there are just cisgender statutes set up. This implies that Hijras can't get hitched, can't give up property for their children, and can't receive kids that frantically need great homes while being perceived and recognizing legitimately as the third sexual orientation.

Another new Supreme Court choice that has expanded the privileges of Hijras occurred in 2017. The court announced that the Right to Privacy was a key option to all people and sanctioned securities for the protection of Hijras' sexual directions. This will go far toward forestalling financial and clinical separation.

Notwithstanding lawful triumphs, there have likewise been gains in cultural acknowledgment and coordination of the Hijra people group. In 2017 India achieved numerous firsts. Joyita Mondal turned into India's first third sex judge, Tamil Nadu turned into India's first Hijra cop, Natasha Biswas turned into India's first third sex magnificence event champ, and Kochi Metro Rail Ltd. turned into India's first government-possessed organization to give mass work to Hijras. There are bounty more Hijra examples of overcoming adversity out there which are an indication of far and wide cultural change. There is trust that the social marks of shame that have tormented the Hijra people group will before long be completely deleted.Unmistakably Hijras face numerous difficulties in present-day times. Broad social marks of disgrace and oppression in this local area were advanced for ages. It is likewise certain that such enormous issues set aside a long effort to fix. Notwithstanding, assuming lawful endeavors and advertising efforts have proceeded, India can one day become a general public

that completely embraces and supports all individuals paying little mind to sexual or sex direction.

Reference :

1. National Legal Services Authority v. Union of India & Ors, (2014) 5 SCC 438.
2. Manoj K. Jha, Transgender Rights in India,http://iasscore.in/national-details-74.html (Last visited on Jan. 15, 2016).
3. Corbett v. Corbett, (1970) All ER 33.
4. R V. Tan & Greaves, (1983) 2 All ER 12.
5. Indrani Sen Gupta, Human Rights and Sexual Minorities : Norities : Transgender human Rights (Gyan Publishing House, 2005)
6. National Legal Services Authority v. Union of India & Ors, (2014) 5 SCC 438.
7. Id at 438

TINKU KHATRI
Research Scholar
NET, SET, TET
Department of Sociology
O.P.J.S. University, Churu, Rajasthan

❑❑❑

Exploring Ethnic Food as a Gastronomic Feature: Insights from Rajasthan

Vikas Mohan • Harkirat Bains

Abstract

In the era of globalization and international food trading, Rajasthan still has managed to intact with its traditions and ethnic food. The Rajasthani cuisine is one of its own in the terms of methods of preparation. There is a wide range of ethnic food of Rajasthan available in the state. The traditional food of Rajasthan is highly influenced by the geographical conditions of the state and Mughal Empire governance in the past. The ethnic food of Rajasthan is not only delicious and tempting, it also has a nutritional value and health benefits. The current study reviews range of ethnic food available in Rajasthan, their origin, recipes etc. Moreover, the study has also enlisted the lost recipes of Rajasthan which are rarely found in the state.

Keywords: *Rajasthan, ethnic food, nutritional value, traditional food, gastronomy, lost recipes*

Rajasthan is a state in India's north-western region. It is one of the largest state of country in terms of area, with a total land area of 342,239 sq. km. To the west, the Sutlej-Indus river valley, Rajasthan shares its boundaries with the Pakistani states of Punjab. It is bordered on the north by Punjab, on the northeast by Haryana and Uttar Pradesh, on the southeast by Madhya Pradesh, and on the southwest by Gujrat. The State gets its name from the word rajasthana, meaning "seat of the ruler." It is known for its majestic Aravali Hills, Jaisalmer and Bikaner sand dunes, picturesque and tranquil beauty and warrior princes. Rajasthan's landscape, which ranges from the Thar Desert to the rich South-Eastern plains, reflects this diversity. It is well-known for its culture, which ranges from vibrant folk dances to numerous schools of Indian classical

music. Ethnicity and traditions, food, fairs and festivals, handicrafts, art, and music all show the Rajasthani culture's diversity. Much of Rajasthani culture, mentality, and attitude can be found throughout the state.

Rajasthani cuisine is distinct not just in taste but also in methods of preparation. It is a beautiful blend of many cultures and eras. Food in Rajasthan, like their culture, has been impacted by many communities and geographical situations, all of which have contributed to its overall evolution and current shape.

Rajasthani cuisine has been affected by the dry state's lack of vegetables and water. Rich people's hunting expeditions and local warriors' lifestyles have resulted in a wide range of inventive meals and ingredients that can survive for several days. In cookery, dry lentils, beans, milk, and buttermilk are frequently used.

The residents enjoy delicacies rich in milk, ghee, buttermilk, dry spices, and native wild berries and leaves due to a lack of water and restricted agricultural options. Oil and red chilies aid in the preservation of food while also reducing the demand for water. Chutneys, acchar, and other condiments were produced with locally cultivated spices like mint, coriander, mango, turmeric, whole red chillies, garlic, and dried berries to add flavour to the cuisine. Each Rajasthani area has its own signature dish. As indicated in Figure 1, the state is divided in seven different regions. Table 1 depicts the regional divisions and districts that make up those divisions.

Figure 1: Seven different regions in Rajasthan (Source: www.rajras.in)

Table 1 : Different divisions and district (Source: www.rajras.in)

Division	District
Ajmer	Ajmer, Tonk, Nagaur. Bhilwara
Bharatpur	Dholpur Bharatpur, Sawai Madhopur, Karauli,
Bikaner	Bikaner, Hanumangarh Sri Ganganagar, Churu
Jaipur	Sikar, Alwar, Jaipur, Dausa Jhunjhunu,
Jodhpur	Jaisalmer, Barmer, Sirohi, Jodhpur, Pali, Jalore
Kota	Bundi, Jhalawar, Baran Kota
Udaipur	Chittorgarh Banswara, Udaipur, Rajsamand, Dungarpur, Pratapgarh,

None of the other princely states have lagged behind Jaipur in terms of specialisation. Bikaner is known for its savoury dishes, particularly bhujia, and the quality of its papads and badi remains unparalleled. The lean meat from this region's desert goat is also regarded as the best.

Jodhpur is known for its kachoris. Milk sweets, which are rarely commercially available in Bharatpur, have their own niche. Ghevar is a Rajasthani dessert associated with the Teej monsoon celebration. It's made of circular white flour cakes that have a sugary syrup drizzled over them. Lacings with cream and khoya are becoming common, making it a delectable mixture. Muslim cuisine has found a place in the state's overall cuisine, not just in areas like Tonk but also in Jaipur.

Food specialities of Rajasthan

Rajasthani cuisine is primarily vegetarian and features a wide variety of mouthwatering meals. In comparison to other Indian cuisines, the spice content is rather strong, but the food is extremely good. The majority of Rajasthani recipes are prepared with ghee. The spicy curries and delicacies of Rajasthani cuisine are well-known.

Rajasthan has a wide range of tourist meals that are enjoyed and savoured by anyone. Unlike other desserts, desserts in Rajasthan are served before the dinner, with the main dish, and after the meal. As a result, sweet meals in Rajasthan are never referred to as desserts. When a guest visits a Rajasthani's home, he or she is offered meals in a correct manner.

Self-service is considered impolite, and as a result, it is not included in Rajasthani etiquette. The cooking technique in Rajasthan is influenced by the desert's natural climatic conditions. Rajasthan suffers from a scarcity of water and fresh green vegetables, which has a negative impact on the state's cuisine.

To reduce the amount of water used in cooking, people in Rajasthan's desert belts choose to use more milk, buttermilk, and butter in larger quantities. Sangria is commonly used in Rajasthan as a cuisine. Flour of Gram is a key constituent in a number of specialties, including "pakodi" and "gatte ki sabzi."

In the production of papad, a lot of powdered lentils are needed. Chutneys, which are made with spices like coriander, turmeric, garlic, and mint, are popular in Rajasthan. Dal bati churma is possibly the most well-known of all Rajasthani meals. Rajasthan has a lot to offer people who are looking for variety.

In fact, when you move from one portion of the state to the next, you'll notice that each region has its own distinct flavour profile, which is reflected in its cuisine.

Special dishes of Rajasthan

Rajasthani cuisine is known for a number of dishes, including the following:

1. The most renowned Rajasthani food is daal-baati-churma, which consists of cooked lentils in spices (daal), baked wheat balls (baati), and a sweet dish made with baati, ghee, cardamom, and sugar/jaggery (churma).
2. Laal Maas is a fiery lamb, rabbit, or wild boar meal served with roti or baati.
3. Meat cooked in yoghurt with a mixture consisting of coconut, spices, and dried fruits is known as Safed Maas.
4. Besan Gate ki Sabzi consists of Dumplings composed of gramme flour that are fried in a spicy yoghurt gravy.

5. Sun-dried moong daal dumplings are cooked in a yogurt/ water based sauce for Mangodi ki Sabzi.
6. Panchkuta Sabzi is a dish, which is made up of ker, khejri, kumad, sangli, and whole red chillies. It is very tasty and can be preserved for two to three days without spoiling.
7. Kair-Sangeri ka Acchar is a sour and spicy acchar produced from berries (pickle).
8. Ghewar is A honeycomb-shaped dessert created with simple flour and ghee, then dipped in sugar syrup and topped with dry fruits and mawa.
9. Kesar Murgh is a slow-cooked chicken dish with spices, cashew paste, cream, and saffron that gives it its name.
10. Laapsi is a traditional Marwari dessert made with broken wheat, jiggery, ghee, and dried fruits.
11. Mawa Kachauri is a wonderful kachauri made by filling milk mawa with sugar syrup and topping it with dry fruits.
12. Rabdi Malpua are flour pancakes that are deep fried and then dipped in sugar syrup before being garnished with dry fruits.
13. Papad ki Sabzi is a spicy dish cooked using dried papad.
14. Namkeens made with gramme flour and spices are famous in Bikaner.
15. Mishri Mawa is a delicate recipe created with milk, cardamom, and sugar that yields a silky mawa mixture with crystal sugar particles.

Food eaten during famine in Rajasthan

1. Bor/ Ber (Ziziphus mauritania) is a small round sweet-acidic fruit that is primarily eaten raw. Its pulp, which has cooling characteristics, is also used to make a liquid drink. It is frequently blended with maize to make a porridge in both dried and fresh versions. Vitamin C and flavonoids are abundant in this fruit.
2. Bordi (Ziziphus nummularia) resemble Ziziphus Mauritania in appearance. The fruit is harvested early in the winter season and kept for later use. It can be consumed in either its unripe or ripe state. The most favourable conditions for its cultivation are sandy plains and sand dunes. The fruit is dried

and ground into a powder, which is then used with gud or bajra to produce roti/chapatti.

3. Khejari (Prosopis cineraria) is one of the most common tree species in Rajasthan. Unripe Sangeri fruits are used as a vegetable in the famous ker sangeri sabzi, whereas ripe Sangeri fruits are eaten raw. Cattle consume the tree's leaves, and the bark is ground into flour in times of great drought.
4. Sata (Trienthema monogyna): The leaves and shoots of this plant are consumed by the natives in the sandy plains of western Rajasthan. Its leaves are prepared as a vegetable by boiling them in water and seasoning them with salt and pepper.
5. Imli (Tamarindus indica) is a tart and sweet fruit that is eaten raw. Sun-dried seeds are roasted and ground into flour, which can be eaten on its own or combined with other staple flours like bajra or makki. Fruit pulp is also utilised in the production of beverages. It has a cooling effect. Calcium, phosphorus, and iron, as well as other micronutrients, are abundant in this food.
6. Makol (Solanum nigrum): The leaves and fruits are eaten raw, while the ripe fruit is consumed as a vegetable. Certain hazardous substances may be present in the leaves of this plant.
7. The most frequent type of grass found in arid areas is bhurat (Cenchrus biflorus). It is collected at regular intervals throughout the year and then used during droughts. Its seeds are ground into a powder, which is then used to make porridge or roti. This grass is extremely nutritious.
8. Kachari (Cucumis callosus) is a very common plant that can be found throughout the desert region. Its ripe fruits are consumed raw, while the unripe fruits are consumed raw as vegetables and are high in vitamin C.
9. Ker (Capparis decidua): This prickly plant, which is eaten as a vegetable, may be found even in Rajasthan's driest areas. It features red berries that are a good source of protein and are available in both ripe (raw) and unripe forms (pickled).
10. Gokhru (Tribulus terrestris): Gokhru (Tribulus terrestris) is an annual herb whose fruits and seeds are harvested and processed into a powder, which is then used as flour.

11. Lunio (Sesuvium sesuvioides): This plant grows in Rajasthan's high saline environment, and its leaves are used as vegetables or greens.
12. Tumba (Citrullus colocynthis) is a type of cucurbit that grows in the sand dunes of Jaisalmer and Barmer. it's seeds have bitter characteristics, thus to get rid of them, they were usually washed numerous times in saline water or buried in a tiny pit of salt for several weeks. Later, they were pounded into powder and used as flour on their own or in combination with other flours like Bajra.
13. Matira (Citrullus lanatus) is a desert watermelon whose pulp is consumed as a fruit and the seeds are dried and ground into flour. Salt is often used to season roasted seeds.
14. Kulfa/ Jangli Kulfa (Portulaca oleracea): Kulfa/ Jangli Kulfa (Portulaca oleracea): Kulfa/ Jangli Kulfa (Portulaca oleracea): Kulfa/ Jangli Kulfa (Portulaca oleracea): It can be found in saline soil.
15. Jal/Mithajal (Salvadora oleoides): Found in Rajasthan's salty soils. It contains delicious fruits that are dried and eaten in huge quantities, as opposed to fresh/one at a time, and is thought to cause tingling and small ulcers in the mouth.

Nutritional value of food of Rajasthan.

Each dish has a scientific foundation and is meticulously planned. Winter festivals feature dishes that are high in calories and protein, whereas summer festivals feature dishes that are light and refreshing, such as curd. Fried dishes are popular during the rainy season. In planning these foods, these celebratory diets also reflect scientific insight.

The majority of the recipes are made with whole grains or a combination of two or more ingredients (cereal + pulse/ cereal + milk/ nuts + jaggery, etc.) that complement one another in terms of nutrients or meet the body's seasonal demand for energy and protein.

Mineral (iron, calcium) and vitamin B content, as well as each nutrient, have been shown to have health benefits.

Health benefits of whole cereal grains and pulses:

Whole grains are high in fibre, minerals, protein, carbs, vitamins, antioxidants, and polyphenols, and contain all three sections of a grain kernel: bran, endosperm, and germ. Increasing satiety, improving blood lipid profile, lowering the risk of heart disease and stroke, aid in weight loss, lowering the risk of type 2 diabetes, supporting healthy digestion, reducing chronic inflammation, and lowering the risk of colorectal cancer are all health benefits of dietary fibre in whole grains (Rodge, 2015).

Health benefits of Jaggery

Jaggery, unlike refined sugar, is a healthy sugar. More mineral salts are retained such as iron. Furthermore, there are no chemical agents used in the production of jaggery.

Benefits of Food combinations

Many traditional recipes, such as cereal-pulse, are examples of well-balanced dietary combinations. Cereals and milk, almonds and jaggery, rice and curd, and so on. Supplementing one meal with another is a great way to improve the nutritional quality of an Indian vegetarian diet. Plant proteins, for example, are of poor quality due to a lack of some necessary amino acids. A mix of cereals, millets, and pulses, on the other hand, provides higher-quality proteins (NIN, 1998).

Dal Bati Churma is a typical Rajasthani combo dish. This well-known Rajasthani combination dish requires no introduction. Dal bati churma is a Mewar specialty that includes crispy batis bathed in ghee, spicy dal, and sweet churma. It's a complete meal with cereal, pulses, and a sweet dish called churma that's high in energy and protein.

Whole pulses, Moong and Chana vegetables along with maize roti, are high in protein, fibre, vitamin B, and minerals, making them a nutrient-dense food. (Srilakshmi,2010) 7.

It's no surprise that sesame seeds (til) appear in nearly every Makar Sankranti recipe.

Til is a high source of calcium and iron (Gopalan et al,2004) 3 and is given to pregnant and expecting moms to help them maintain healthy bones and haemoglobin levels.

The Doodhiya Kheech, a popular winter dessert in Rajasthan, is thought to have originated in Udaipur. Hulled wheat, dried fruits, milk, sugar, and almonds are used to make this delectable and tempting dessert. This delicacy is made in the winter as a traditional sweet during the Makar Sakranti holiday. Because it is made with whole wheat grains and is high in fibre, vitamins, and minerals, this meal is incredibly nutritious.

Oliya is a sweet and salty dish made by mixing boiling rice with curd and adding cardamom powder, raisins, and dried fruits. Maize oliya is also made in the Mewar region with maize dalia and curd. Both sweet and savoury preparations are enjoyed, and the ritual of eating Oliya (curd preparation) has significant climatic significance as it signals the start of summer. Oliya is high in calcium and has a cooling effect. It is also beneficial for digestion.

Every Mewari event must include gur lapsi. It's created from broken wheat and jaggery and is a high-energy, fibre, and mineral-dense snack.

Malpua is made using a batter of wheat flour and milk, and the fried malpua is dipped in sugar syrup. It has a lot of energy.

Ghewar is a high-energy, high-protein snack prepared from refined wheat flour, mawa, and sugar.

Lost food recipes of Rajasthan

Each state of Rajasthan has its own cuisine, which is rich in flavour and has a long history.

However, there are fewer people now who continue to follow their cooking customs and practises. Westernization, as well as the impact of other civilizations, has surpassed the exotic indigenous Rajasthani cuisine in several ways. Today, recipes with the same name but a different flavour profile are more popular.

The following are some of the royal recipes that are rarely seen today:

1. **Benaami Kheer (Lahsoon/Garlic ki kheer):** Benami kheer (the one entire name is unspoken/unknown) was a specialty of the Mewar region, as its name suggests. This kheer has the ideal balance of khoya, milk, dry fruits, and garlic.

2. **Khad khargosh**: Gravy was used to coat the rabbits. Wrapped in rotis and grilled slowly in a pit. However, since the restriction on killing animals, this historic dish has fallen out of favour in royal kitchens, and khad murg has taken its place (chicken instead of rabbit).
3. **Malai ka Paan**: Malai ka paan, a cuisine that required a long time to prepare, is now completely forgotten. It was created by boiling buffalo milk for hours until it reached a consistency that could be spread thinly on a pan to make a paan.
4. **Rajasthani Suda:** The meat from the hind leg of a goat was used in this recipe. It was roasted open over a charcoal fire and then dipped in hot ghee, giving it a distinct flavour and scent.
5. **Bina Pani ki Roti:** Boora (type of sugar) is used in this recipe. Bina pani ki roti could be kept for 30-40 days without spoiling if made using milk, ghee, and flour and no water.
6. **Kaleji ka Raita:** To prepare raita, the goat's liver was thoroughly cleaned, boiled, chopped, and then combined with seasoned curd.
7. **Soor ka Saanth:** It was a form of pickle made by chopping the meat into square pieces and soaking it for two to three days in buttermilk. Every day, the buttermilk was replaced, and the meat was subsequently cooked with a variety of spices and ghee.
8. **Hari Mirch ka Potha:** Long chilies from a farm were purchased with their roots intact. The masala was then filled by stitting the chilies along their length. Even during deep frying, their roots were wrapped with a cloth to preserve them green.
9. **Keema Samosa:** A snack made from lamb/goat and a variety of spices, fashioned into a samosa and deep fried.
10. **Doodh ka Samosa**: This was made with buffalo milk. Iron kadhai and thali were used to make it. On the thali, layers were created, and each one was allowed to cool before adding another. After that, the crepe was peeled and stuffed with mishri, cardamom, pista, and other dry fruits.

Conclusion and Future Prospective

Rajasthan is a land of rich culture and heritage though the living conditions are quite harsh and stringent. The inhabitants have limited food sources available despite they sustain graciously. To compensate the adversities of green, people in Rajasthan use local wild berries and grasses to create lots of traditional dishes. The whole grains available in Rajasthan and the dishes prepared from these grains have high nutritional value. These traditional cuisines originated by the natives by keeping to the geographical conditions of Rajasthan in mind. The states witness inclination towards vegetarian food but due to history of the Mughals, numerous non-vegetarian dishes also make up the core of Rajasthan culture. The delicious range of dishes mesmerises every tourist that comes along. As food is an integral part of the heritage of Rajasthan, it can be used to influence the tourism of the state. With lots of modifications as per the modern era, the state still has managed to keep its traditional identity intact. Therefore, the ethnic food could be used as a tool to promote tourism in the state and developing it as a culinary destination.

References

Gopalan, C., Sastri, B. V. R., & Balasubramanian, S.C. 2004. Nutritive Value of Indian Foods. National Institute of Nutrition, Indian Council of Medical Research, Hyderabad, 2-58.

Joshi, U. 2016. The Taste of Mewar. The Pioneer, Accessed: on: 10/02/ 2020. https://www.dailypioneer.com/2016/vivacity/the taste-of-mewar.html.

Mohan, V. (2015). Issues & Challenges Raised by Foreign Tourist for Food under Culinary Tourism Development in India. Sambhavya – An International Research Journal of Indian Culture, Social & Educational Stream, 22-23, 184-187.

Kapurla, N. (2017). Sheetalasaptami-Know About The Traditions Behind It. udaipurbeats.com, March, 20, 2017.

Mohan, V. (2015). Understand Tourism Through Food & Beverage: A Study Based on North India, Shodhkalptaru – An International Multidisciplinary Research Journal, 18-19, 177-184.

National Institute of Nutrition, (1998). Dietary Guidelines for Indians, National Institute of Nutrition, Indian Council of Medical Research, Hyderabad.

Namrata, Tiwari D., & Ananya. 2016. Indian Cuisines: Representing Indian Culture. International Research Journal of Management Sociology and Humanities, 7 (9), 32-38.

Newar, S. 2018. Regional disparities in agricultural development a district level analysis for the state of Rajasthan, Shodhganga. Accessed on: 10/02/2020. https://shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/107021/10/10 chapter 4.pdf.

Ramalingam, A. 2004. Karan Cuisine from Mewar Whyever not, Financial express, Accessed on: 10/02/2020. https://www.financialexpress.com/archive/karan-cuisine-from mewar-whyever-not/36794/.

Rodge, A. B., (2015). Role of Fibers Spices and Herbs as Nutraceuticals and Functional Food Ingredients in Regulating Human Health of Functional Foods and Nutraceuticals, New India Publishing Agency. New Delhi.

Srilakshmi, B. (2010). Food Science, 5th edition. New Age International Publishers, New Delhi.

Verma, R. 2018. Chillies. Kings and Meats. The New Gastronome. Accessed on: kings-meats/12/02/2020. https://thenewgastronome.com/chillies-kingss-meats).

Vikas Mohan

Department of Tourism and Hotel Management,

Central University of Haryana, Mahendergarh, Haryana, India

Harkirat Bains

School of Tourism and Hospitality Service Management

Indira Gandhi National Open University, New Delhi, India

❑❑❑

Evaluation of Various Pension Schemes Targeted To Weaker Sections Operating In The Kumaon Division

Dr. Reenu Rani Mishra ● Km. Swati Ronkali

Abstract :– Financial stability & independence is essential for every person of every age. Old age is the critical age for every senior citizen at this age they all become weak not only physically but also through financially as well as more vulnerable sections of the society's people are not well enough to do service & for this Indian government launched retirement pension financial planning not only for the old age people but also for weaker sections of the society. The main aim of this scheme is to provide economic self-sufficiency to the old age people & the weaker sections. Kumaon region of Uttarakhand is situated in a hilly area, contains five districts in their territory. The main aim of the research paper is to find out the evaluation of various pension schemes targeted to weaker sections operating in the Kumaon division. Data collected through an open-ended questionnaire & sample were randomly selected from weaker sections of the Kumaon region &analyzed with the percentage, descriptive test, correlation regression & ANOVA test. This paper analyzed that more vulnerable sections of the Kumaon region are remote areas region & that is an underdeveloped area; where weaker sections did not have so much source of money or employment for survival. This pension scheme is beneficial for their survival because India live in their rural area & growth of the economic growth depends upon the village's development.

Keywords – National pension scheme, economic growth,

Introduction :

Kumaonregion : The population of Uttarakhand is approx 10 million. Uttarakhand has majorly two regions & that is Kumaon

& Garwhal; from the above population, 3.57 billion people live in theKumaon region. Kumaon region is located in the hilly area of Himalaya & around pine trees with a 170 square meter population of density.Kumaon region have majorly ten hill station region & these are :

1. Nanital	2. Kausani	3. Binsar	4. Ranikhet
5. Mukteshwar	6. Almora	7. Bhimtal	8. Ramgarh
9. Munsiyari	10. Abbott mount.		

40% of the population of the Kumaon region are living below the poverty line; mostly rural people are dependent upon agriculture. Kumaon region is a conservative type of region witha 6,60,000 schedule caste population & that comprises 16.6% of India's population. They depend upon agriculture & some other areas, but that is not well enough for their daily expenses & also for their family members. The Indian government also help them with various financial schemes, pension scheme & these schemes are both for rural lower level schedule cast people & old age people so they can easily survive in the society with their family members.

Pension schemes for the weaker section in the Kumaon region:–Union government of India launched several pension schemes for weaker section of the society & giving benefit to them. The primary purpose of that scheme is to improve the living standard & to fulfil the basic needs of weaker sections of the society. Some of the schemesprovide financial security & some offer socio-economical guarantees to the rural people. Below list describe the various pension scheme in India.

S.No.	Name of the scheme	Year of launching
1.	Atal Pension Yojana	2015-16
2.	UJALA Yojana	2015
3.	Ayushman Bharat Yojana	2018
4.	Grameen kaushalya Yojana	2014
5.	Pradhan mantrigraminawaas yojana	2016
6.	Pradhan mantrimatritvaVandana yojana	2017
7.	Deendayal upadhyayaantyodya yojana	2011

8.	Pradhan Mantri Adarsh gram yojana	2009-10
9.	Pradhan mantrikaushalvikas yojana	2015
10.	Pradhan mantrisurakshabima yojana	2015-16
11.	Pradhan Mantri Jeevan Jyoti Bima yojana	2015-16
12.	Pradhan mantrijandhan yojana	2014
13.	Pradhan Mantri awas yojana	2015
14.	Swamitva yojana	—

Source - https://cleartax.in/s/government-schemes-individuals

Review of literature:– John Murphy (2013) studied the health & retirement study plan only for old age people in his survey with the help of linear regression. Heanalyzed the relationship between social & economic factors with financial literacy of the weaker sections of the Kumaon region.

Marzieh Kalantarie Taft et al. (2013)–analyzed the correlation between the financial stability of the schedule caste of the Kumaon region & sources of money. Data were collected through random sampling & collected & analyzed with the help of regression, tabulation test & two samples test. Results showed that education playsan integral part in gettinga better source of money.

Gilles Le Garrec (2012) studied that most developing countries provide financial help to both workers & retired senior citizens; however, they both are not equally in any manner, but they both are the backbone for their family members.

Alan Gustman et al. (2012) studied that financial planning scheme & pension plays an essential role for lower caste people & old age senior citizens. They can live their life in a bit of bit manner through this help.

Annamaria Lusardi (2012) analyzed in their study that the help of financial literacy gives both mentally & physically strength to older adults. But sometimes they face scams & fraud from many government & private agencies.

Bijaya Kumar Barik (2015) studied the mutual fund pension yojana for retirement pension & planning people. Surveyed

regarding this pension scheme & analyzed that mutual fund scheme is profitable senior citizens company gives extra benefits to the old age people so they can independently live their life without the help of their family members.

Dr Vani Kamath and Dr Roopali Patil (2017) analyzed the benefits of cost & pension schemes for weaker sections of the society. Data collected through sampling techniques & analysis done with the help of SPSS software techniques & resulted from that cost & pension scheme are beneficial for weaker sections of the society. They can quickly provide education to their children with the help of this scheme.

Anita and Pankaj Kumar (2014) studied the national pension SwavalambanScheme for weaker sections of the society &analyzed the problems that are facing to implement that scheme in the society people still do not have faith & believe in this kind of schemes & suggested that government should improve their management system.

The objective of the study

- To evaluate the impact of the national pension scheme for weaker sections of the Kumaon region.
- To examine the factors that cause or influenceimplementing the National pension scheme to the weaker section of the Kumaon region.

Target group

Respondents selected from weaker sections of the Kumaon region & age group of that respondents were 14 to 45 years & which were chosen randomly from weaker section's group.

Research Design

Sample design – Descriptive research design

Sample Size – 200 Respondent from weaker sections of the Kumaon region

Sampling techniques – Simple random sampling.

Analysis tools – Percentage, ANOVA Table, Correlation & regressions

Secondary data – Journal, article & research report, websites.

Hypothesis –

Ho1 - Impact of national pension scheme for weaker sections of the Kumaon region.

Ho2 - To examine the factors that cause or influenceimplementing the National pension scheme to the weaker section of the Kumaon region.

Data Analysis

Analysis of Section A of the Questionnaire:

Section A

Sec A – this part of the questionnaire shows the demographic profile of the given respondent like their age, qualification, type of family, occupation, marital status & family income of the respondent

Table 1

Variables	Demographic Variables	No of respondent	Percentage
Gender	Male	112	56%
	Female	88	44%
Age Group	Below 25 years	55	27%
	25 – 35 years	45	22%
	36- 45 years	60	30%
	Above 45 years	40	20%
Marital Status	Married	111	56%
	Unmarried		
	89	44%	
Qualification	School-level study	116	58%
	Graduate	44	22%
	Professional	40	20%
Monthly Income of the family	Less than 10000	90	45%
	10000 – 30000	60	30%
	30,000- 50000	40	20%
	More than 50000	10	5%

Type of family	Nuclear Family	112	55%
	Joint Family	89	44%
No of members in the family	Less than 3	35	17%
	4-6	128	64%
	7-9	28	14%
	More than 9	9	4%

As per the table, the ratio of the respondent as per the gender the ratio was male 112 (56%), female 88 (44%).age group of the respondent were below 25 years 55(27%),25-35years 45(22%), 36-45 years 60(30%) & above 45 years of respondent were 40(20%). The respondents' marital status was 111(56%) were married & 89 (44%) were unmarried. As we know, that weaker section of the Kumaon district is not so qualified due to poor economic status. as per the survey, respondents were 116 (58%) school level trained, 44(22%) were graduate-level qualified, 40 (20%) respondent were professionally qualified. As per the data in the table, monthly Income of the family were less than 10000 were in quantity 90(45%), 10000- 30000 income group were in quantity 60(30%), 30000-50000 income group were in quantity 40(20%) & more than 50000 were in quantity 10 (5%). Type of the family as per the data 124(64%) were had nuclear family 76(38%) were had a joint family. Numbers of the members in the family were in quantity less than 3 128(64%), 28(14%) were had 4-6 members in the family & 9(4%) were had 7- 9 members in the family.

Analysis of Section B

Sec B of the questionnaire included the factors like

1. Government contribution
2. Social security
3. Helpful for family
4. Risk factor
4. Saving for family
5. Poverty rate
6. Education attainment
7. Inequality

That influenced to implementationof the National pension scheme in the weaker section of the Kumaon region. That is evaluated with the help of model summary & one way ANOVA.

Table 2 : Descriptive statistics of factors of OTT platforms of services –

Descriptive Statistics			
	Mean	**Std. Deviation**	**N**
B5(1)	1.30	.453	200
B6(2)	1.50	.792	200
B6(3)	1.89	.699	200
B6(4)	2.07	.774	200
B6(5)	2.44	.879	200
B6(6)	2.15	1.139	200
B6(7)	2.35	.999	200
B6(8)	2.37	1.049	200

Table 2 : showed the mean & standard deviation of the various factors that influence to implement of the national pension scheme on weaker sections of the Kumaon region & as per the data highest standard deviation shows the highest impact that influence to National pension scheme on the weaker section of the society as per the data 2.44 (Poverty rate) is the highest Standard Deviation value & 2.35 (Education attainment), 2.37 (inequality) take second & third position as per the value of standard deviation.

Table - 3 Correlations

Pearson Correlation	B5(1)	1.000	.199	.145	.139	.109	.145	.125	.138	.043
	B6(1)	.196	1.000	.625	.245	.217	.125	.149	.032	.049
	B6(2)	.140	.625	1.00	.349	.489	.327	.372	.209	.098
	B6(3)	.122	.245	.349	1.00	.615	.472	.351	.399	.215
	B6(4)	.107	.212	.492	.615	1.00	.573	.460	.385	.241
	B6(5)	.139	.125	.319	.469	.567	1.000	.599	.585	.334
	B6(6)	.125	.151	.367	.357	.461	.599	1.00	.620	.430
	B6(7)	.136	.039	.208	.399	.357	.598	.625	1.000	.481
	B6(8)	.048	-.051	.099	.215	.239	.340	.424	.481	1.00
Sig. (1tailed)	B5(1)	.	.000	.000	.002	.017	.001	.005	.003	.223
	B6(1)	.000	.000	.000	.000	.000	.006	.001	.245	.165
	B6(2)	.000	.000	.000	.000	.000	.000	.000	.000	.020
	B6(3)	.002	.000	.000	.000	.000	.000	.000	.000	.000
	B6(4)	.017	.000	.000	.000	.000	.000	.000	.000	.000

	B6(5)	.002	.005	.000	.000	.000	.000	.000	.000	.000
	B6(6)	.003	.002	.000	.000	.000	.000	.000	.000	.000
	B6(7)	.002	.245	.000	.000	.000	.000	.000	.000	.000
	B6(8)	.222	.166	.016	.000	.000	.000	.000	.000	200
N	B5(1)	200	200	200	200	200	200	200	200	200
	B6(1)	200	200	200	200	200	200	200	200	200
	B6(2)	200	200	200	200	200	200	200	200	200
	B6(3)	200	200	200	200	200	200	200	200	200
	B6(4)	200	200	200	200	200	200	200	200	200
	B6(5)	200	200	200	200	200	200	200	200	200
	B6(6)	200	200	200	200	200	200	200	200	200
	B6(7)	200	200	200	200	200	200	200	200	200
	B6(8)	200	200	200	200	200	200	200	200	200

Table – 4

Ariables Entered/Removed

Model	Variables Entered	Variables Removed	Method
1	B6(1)	.	Stepwise (Criteria: Probability-of-F-to-enter <= .050, Probability-of-F-to-remove >= .100).
2	B6(7)		Stepwise (Criteria: Probability-of-F-to-enter <= .050, Probability-of-F-to-remove >= .100).
a. Dependent Variable : B5(1)			

Table 5

Model Summary

Model	R	R Square	Adjusted R Square	Std. Error of the Estimate
1	.699a	.384	.038	.444
2	.741b	.520	.049	.439
a. Predictors: (Constant), B6(1)				
b. Predictors: (Constant), B6(1), B6(7)				

Table 6

ANOVA*						
Model		Sum of Squares	df	Mean Square	F	Sig.
1	Regression	3.736	1	3.775	19.248	.000b
	Residual	96.981	497	.198		
	Total	100.736	498			
2	Regression	5.234	2	2.595	13.349	.000c
	Residual	95.698	496	.199		
	Total	100.731	498			
a. Dependent Variable: B5(1)						
b. Predictors: (Constant), B6(1)						
c. Predictors: (Constant), B6(1), B6(7)						

Table 7

Model		Coefficients Unstandardized		Standardized Coefficients	T	Sig.
		B	Std. Error	Beta		
1	(Constant)	1.129	.049		25.736	.000
	B6 (1)	.129	.031	.198	4.399	.000
2	(Constant)	1.000	.073		17.499	.000
	B6 (1)	.121	.039	.196	5.348	.000
	B6 (7)	.059	.025	.125	1.699	.009
a. Dependent Variable: B5(1)						

Model		Beta In	T	Sig.	Partial Correlation	Co-linearity Statistics
						Tolerance
1	B6(2)	.048b	.951	.399	.045	.627
	B6(3)	.094b	2.008	.061	.093	.959
	B6(4)	.079b	1.449	.150	.079	.975
	B6(5)	.121b	2.615	.009	.125	.998
	B6(6)	.099b	2.049	.050	.099	.989
	B6(7)	.127b	2.689	.009	.139	.999
	B6(8)	.049b	1.009	.334	.049	.999
2	B6(2)	.021c	.249	.893	.025	.699
	B6(3)	.059c	1.045	.318	.051	.820
	B6(4)	.027c	.461	.651	.035	.845
	B6(5)	.075c	1.263	.219	.069	.675
	B6(6)	.035c	.525	.629	.039	.619
	B6(8)	-.027c	-.325	.764	-.028	.789
a. Dependent Variable: B5(1)						
b. Predictors in the Model: (Constant), B6(1)						
c. Predictors in the Model: (Constant), B6(1), B6(7)						

- Correlation & regression analysis (Table 3 – 8) showed the significant & positive relation between factors that influence the pension scheme on weaker sections of the Kumaon region. Value of correlation .691 & .741 revealed the positive relation between the factors & various pension schemes.
- Value of F 19.248 & 13.349 & the importance of P 0.000 in ANOVA Table is less than the 0.05. This shows that the value of regression is fit for data in that condition null hypothesis - rejected & alternative hypothesis - accepted for that survey.

Conclusion & Suggestions

This research paper evaluation of various pension schemes targeted to weaker sections of the Kumaon region mainly targeted weaker sections of the Kumaon region who were basically from

below the poverty line and had not so much financial or economic sources for their livelihood. For their improvement Indian government launched family planning schemes researcher wanted to research that how that scheme affected the weaker section for that research, 200 sample population selected from weaker sections of the Kumaon region, & data were collected through an open-ended questionnaire &analyzed with the help of percentage, correlation regression & ANOVA test method. Data showed that most of the weaker sections of the respondent were not so much qualified because of the poor financial condition of their family. Their monthly Income had less than 10000,which showed that they are not so economically strong. But the good thing with them was that the ratio of nuclear family & joint family was not so far from each other. Various factorsaffect implementing the national pension scheme for the weaker sections & these were Government contribution, Social security, Helpful for family, Risk factor, saving for a family, Poverty rate, Education attainment & Inequality. Value of ANOVA table & correlation regression value showed that poverty rate is the prime factor to influence the pension scheme to the weaker sections after that educational attainment, inequality factors took second & third positions as per the value of the table, the value of P found 0.000 which was less than the 0.05 it showed that value is fit for data. Research revealed that these financial & pension schemes are needed for the weaker sections of society through this help they can quickly educate their child & live their life independently. The researcher wants to suggest to the government that they should improve their management system so financial help can easily reach the right person at the right time.

References

1. Bijaya Kumar Barik (2015): "Analysis of Mutual Fund Pension Schemes & National Pension Scheme (NPS) For Retirement Planning", International Journal of Business and Administration Research Review, Vol. 3, Issue.11, July - Sep 2015. Page108 2.
2. Dr Vani Kamath and Dr Roopali Patil (2017): "Cost Benefit Analysis of National Pension Scheme", International Journal of Management, Volume 8, Issue 3, May–June 2017, pp.156–158. 3. Anita and
3. Pankaj Kumar (2014): "National Pension System Swavalamban

Scheme", Asian Journal of Multidisciplinary Studies, Volume 2, Issue 7, July 2014 4. India Country Report, "A Retirement Wakeup call The AEGON Retirement readiness survey 2016". 5. National Pension System, Subscriber information brochure for government subscribers by PFRDA.

4. John L. Murphy (2013), "Psychosocial Factors and Financial Literacy", Social Security Bulletin, Vol. 73, No. 1 20
5. LiatHadar, Sanjay Sood, and Craig R. Fox (2013), "Subjective Knowledge in Consumer Financial Decisions", Journal of Marketing Research Vol. L (June 2013), pp 303–316.
6. Marzieh Kalantarie Taft, ZareZardeiniHosein, Seyyed Mohammad Tabatabaei Mehrizi&Abdoreza Roshan (2013), "The Relation between Financial Literacy, Financial Wellbeing and Financial Concerns", International Journal of Business and Management; Vol. 8, No. 11.
7. Gilles Le Garrec (2012), "Social security, income inequality and growth", Journal of Pension Economics and Finance, Volume 11, Issue 01, January 2012, pp. 53 - 70.
8. Alan L. Gustman, Thomas L. Steinmeier, and Nahid Tabatabai (2012), "Financial Knowledge and Financial Literacy at the Household Level", American Economic Review: Papers & Proceedings, vol 102(3), pp. 309–313
9. Annamaria Lusardi (2012), "Financial Literacy and Financial Decision-Making in Older Adults", Journal of the American Society on Aging, Vol. 36. No. 2

Author : **Dr. Reenu Rani Mishra**
Associate Professor
Department of Economics
S.B.S. Government (P.G) College Rudrapur
(Udham Singh Nagar) Uttarakhand, 263153

Co-Author : **Km. Swati Ronkali**
Research Scholar
Department of Economics
S.B.S. Government (P.G) College Rudrapur
(Udham Singh Nagar) Uttarakhand, 263153

Deconstructing Farmer Protests in Delhi (2021) : Counter-Narratives and Misinformation on Social Media

Namit Vikram Singh • Surbhi Tandon

I. Introduction

The paper explores the debates revolving around "Farmers' Protests" post the approval of threefarm acts (1. Farmers' Produce Trade and Commerce (Promotion and Facilitation) Act, 2020; 2. Farmers (Empowerment and Protection) Agreement on Price Assurance and Farm Services Act, 2020; 3. Essential Commodities (Amendment) Act, 2020 by the Parliament of India in September 2020. Facebook, which acted as a forum for promotion and sensitization about the event, also experienced the emergence of different counter-narratives and its circulation on the platform citing the protest movements by the farmers as unconstitutional and against the welfare of the state. Most of the counter-narratives produced on Facebook projected the farmers' movement as an aggressive and radical protest against the government. Stories of policeclashes, public disturbance, etc., were propagated through social media platforms (Badola, 2021). An interesting observation to note in the case of India's ongoing Farmer Protests (2020-2021) is that Facebook has been one of the social media platforms instrumental in both propagating and countering fake news, misinformation about farm laws, and the protest movement. The official organizers of the movement have been overwhelmingly engaging on almost all social networking platforms and their IT Cell has been playing a significant role in dispelling misinformation, countering false narratives, and keeping a connection with the

individual protestors and their supporters alike (Ranjan, 2021). The paper emphasizes on the effectiveness of Facebook in terms of how it has helped in countering the stories of misinformation against the farmers' protest movement and what kind of counter-narrative it helped in shaping up against the actions of the state amongst the people in Delhi, India.

The case of farmers' protests in India post-independence can be traced from 1947 onwards. The expansion of farming lands and the beginning of land redistribution post-1947 witnessed a period of protest from the landed classes. This was further fueled by the adoption of the "Green Revolution" in 1967 for self-sufficiency in food grains. Unfortunately, the "Green Revolution" had a very concentrated impact on the Indian agriculture sector as most parts of Punjab and Haryana witnessed a high rate of agricultural growth due to high land fertility. 1991 was observed as a timeperiodthat ushered the growth of agricultural markets across India due to new economic policies of globalization, liberalization, and privatization. However, in the process of complete adoption of these policies, local traders and agricultural entrepreneurs failed to keep up with the growing competition and witnessed a decline in the agricultural markets. Further, in 2006, farmers in India protested over the slow growth of agricultural markets which failed to provide adequate demand for produce which resulted in corruption and illegal trading of commodities. In 2014 with the change in the political regime, a lot of promises were made for agricultural reforms but nothing substantial took place to boost agricultural markets (Kumar and Sethi, 2017). In 2020 with the recession in agricultural markets due to the Covid-19 pandemic, a lot of wholesale markets failed to provide the options for trade for the local farmers. The fear of declining demand followed by the passing of new farm laws fueled the farmers' protest movement across parts of Punjab, Haryana, and Delhi which further escalated to the western part of Uttar Pradesh. The protest movement was largely within the outskirts of Delhi covering the following borders namely:

(a) Dhansa
(b) Ghazipur
(c) Harevli
(d) Jharoda
(e) Mungeshpur
(f) PiauManiyari
(g) Singhu
(h) Tikri

The agricultural sector in India has always remained a sensitive political topic and there has been a discrepancy in terms of policy formulation and its incompatibility at ground level implementation which has resulted in farmers' protests across different timelines. However, the "Farmers' Protest (2020-21)" has been different and unique from the past events because of the manner in which social media has been utilized for developing different counter-narratives both supporting and criticizing the movement at its different stages (Kronstadt, 2021) (Kilgo and Harlow, 2021). The paper, therefore, is significant as it presents the arguments of both the counter-groups and the government on Facebook and how the platform has been helpful or challenging in handling the concerns of fake information and sensitizing the public about the social cause in Delhi, India.

II. Amendments in Farm Laws and Farmers' Dissent

The Indian agricultural sector has had different degrees of state (government) support in the form of agricultural policies for financial support, safety nets, subsidies and injections, and measures for adopting new technology and inputs. Farmers in India have been able to take advantage of both the government and the market support across different states. However, in 2020 the Indian agriculture sector experienced severe economic shocks created by the pandemic of Covid-19 in the form of declining market demand.Even the government support failed to provide a basic degree of sustenance to the farmers. This shock was further complemented by the amendments in the farm laws during the winter session of the Parliament in September 2020 (Curtis, 2021).

Three core laws namely 1. Farmers' Produce Trade and Commerce (Promotion and Facilitation) Act, 2020; 2. Farmers (Empowerment and Protection) Agreement on Price Assurance and Farm Services Act, 2020 and 3. Essential Commodities (Amendment) Act, 2020 were introduced as ordinances during June 2020 and in the winter session, they were passed as official acts through voting. One of the primary concerns that emerged from these amendments amongst the farmers was the government's inclination towards privatizing the agricultural sector and exploiting farmers for agricultural produce. They also felt that the

government's inclination towards further corporatization of the agricultural sector may lead to an increased control for big corporate players in influencing the agriculture produce and pricing (Curtis, 2021).

The very first act, namely, "The Farmers' Produce Trade and Commerce (Promotion and Facilitation) Act, 2020" eliminated the option of Agriculture Produce Market Committees (APMCs). The role of such committees was to ensure that there are no extreme price fluctuations regarding agriculture produce in a regulated market. Further, if any farmer wishes to sell the produce outside to any private trader, he/she will have to pay a tax. Before the agricultural laws were amended, most of the agricultural produce was bought and sold primarily in the APMCs. These bodies were regulated by the state government. It required a license for traders to purchase agricultural produce from the APMCs. It was a regulated market-like setup where farmers could bring their produce for sale. As for the farmers who could not afford transportation of their produce, they would sell their commodities to any private trader at market price. APMCs had an advantage in ensuring price protection to the farmers which acted as a safety net in the case of financial shocks. However, the government over a period of time felt that APMCs have begun to operateas monopolies and have started promoting corruption within the regulated market.The government felt that there was a dire need for a policy revision to address the issue (Lerche, 2021).

The government argued that "Farmers' Produce Trade and Commerce (Promotion and Facilitation) Act, 2020" will provide a barrier-free trade in agricultural produce outside the boundaries of an APMC and will not imposetaxation on any farmer who wishes to sell the produce outside the state-regulated market at a fair price. However, the farmers in parts of Punjab and Haryana argued that the act will be advantageous for the rich and big farmers who will have more choices in selling to private traders. Further, for small and medium farmers, they will have to depend entirely on the market price for the sale and purchase of the produce which can be subjected to financial shocks.

The Farmers (Empowerment and Protection) Agreement on Price Assurance and Farm Services Act, 2020, was another

amendment that focused on the legal agreement between the farmer and the business owner under contract farming. The agreement outlined the condition for production of farm products and the delivery of the produce as per the buyer's quality standards.The act ensured that the buyer cannot change any condition after the contractual agreement with the farmer in order to limit the scope for exploitation by the buyer. The timeperiod of the contract can vary from 1 year to maximum of 5 years with a clear reference of guaranteed price in the contract. Further, a body comprising the Sub-Divisional Magistrate and the Appellate Authority (Collector or Additional Collector) will handle the matters of dispute regarding such agreements within 30 days.

Lastly, the Essential Commodities (Amendment) Act, 2020 emphasized on the control over production, supply, and distribution of certain food commodities. The central government may regulate or prohibit the production, supply, distribution, trade, and commerce of food items including cereals, pulses, potatoes, onions, edible oilseeds, and oils, only under extraordinary circumstances such as (i) war, (ii) famine, (iii) extraordinary price rise and (iv) natural calamity of grave nature The central government argued that through this act they can even include new commodities when its need arises. The act also highlighted the imposition of any stock limit on agricultural produce based on price rise in the market. This condition on regulating the agricultural produce by the state did not exist earlier and farmers felt that their independence to carry out their agricultural operations may get compromised through the government's predominance over agriculture markets.

The Indian farmers' dissent towards the above-mentioned farm laws was primarily seen as an outcome of fear that the removal of APMCs may also lead to the removal of minimum support prices which was earlier being provided to them. No private trader will be willing to purchase the produce at a minimum support price thereby creating scope for monopoly in the agricultural markets. They further argued that 80% of farmers in our countries were small farmers. They have very limited landholdings and in case of any financial conflicts with the private players, they will not be able to challenge them in courts due to

financial limitations. Farmers also demanded that a law needs to be put in place that can ensure guaranteed payments from the buyers through intermediaries.

They also protested as the amendments in the agricultural policy specified that no individual can file a case regarding the law's specification against either the Central/State government or any State/Central government officers, thereby compromising on accountability in the case of challenges in implementation. They argued that the amendments take away their fundamental right to approach the courts.

As a result, the protest movement began taking shape in August 2020, and by September 2020 onwards different farm unions mobilized for a peaceful yet stern non-cooperation movement across Delhi and its neighbouring states. The highlighting aspect of this movement was howsocial media platforms, especially Facebook, were used for creating narratives and counter-narratives about the farmers' protest and the claims by the government of India.

III. Digital Narratives on Farmers' Protests in Delhi

The given section explores various counter-narratives that emerged on Facebook regarding "Farmers' Protest Movement 2020" around the borders of Delhi and its neighbouring states and how these narratives were challenged by the Farmers' Protest Group and what kind of outlook it shaped both towards the government and the movement. The facts, as presented below through content and discourse analysis of Farmers' Protest Group on Facebook and that of different users, reflect the continuous tussle between the two factions, namely the protestors and the users supporting the government's initiatives. The data also indicates the efforts that went through in attempting to validate misinformation and how the protest group was able to counter most of the false narratives for a healthy public forum and dialogue with the public.

Table I

List of False Narratives and its Counter Arguments on Facebook (September-November 2021)

S. No.	Date of Facebook Live	Name of the Leader	Misinformation Debunked/Counter Narrative Set	Like	Views	Comments
1.	15th November 2021	Harish Hoon	Farmers are still awaiting the sugarcane payments even after one year in Uttar Pradesh. The Ruling Party had promised the implementation of the Sugarcane Control Order which requires payment to Sugarcane farmers within 14 days of sale. Farmer unions will protest against government inaction in all districts of Uttar Pradesh	1.7K	16K	148

2.	15th Novembe 2021	Rakesh Tikait	Farm Leader Rakesh Tikait local leaders in Karnal district where the government is planning to sell a land allotted to Mandi and the Agro Mall built on the same land to private players. The Agro Mall caters to farmers of Uttar Pradesh, Rajasthan, and Haryana for selling their produce. The leader refers to Land Acquisition Act which states that if the land is acquired from the farmers for five years after the acquisition, then it needs to be returned to the original farmers who parted away from their lands for development purposes.	8.4K	73K	666

3.	14th November 2021	Manjit Singh Rai	Explaining the modalities and logistics regarding the planned Sansad March on 29th November 2021. He explained that 500 farmers in their tractors will march to Parliament of India in Delhi from two protest sites after due process of verification. Parliament's Winter Session will begin on 29th November 2021.	5.1K	34K	399
4.	13th November 2021	HarinderLakhowal	Invitation to farmers to join Lucknow Mahapanchayat scheduled on 22nd November 2021 in Lucknow to seek justice for the victims of Lakhimpur Khiri Violence. Lucknow is the capital of poll-bound state Uttar Pradesh.	838	5.2K	44
5.	13th November 2021	Harish Hoon	Providing information regarding Tractor March to Parliament on 29th November 2021.	529	3.6K	21

6.	12th November 2021	Abhimanyu Kohad	Shared the willingness of Samyukta Kisan Morcha to take up questions raised by the citizens. But, also asked them to share suggestions and constructive criticism that could be taken up for discussion in the meeting of SKM. He urged people not to find faults just because they have a different view and ideology than the farmers. He said SKM has the responsibility for the rollback of the farm laws and ensuring that all farmers reach their homes safely after the movement is over. He referred to media reports regarding the declining popularity graph of the Prime Minister. He emphasized that the movement has enhanced women's political participation especially in Haryana which is considered a patriarchal society. He said that women's participation in the movement is more than men in Haryana. He also said that farm protests have	6.3K	50K	1.1K

changed the political culture as the protesting parties did not allow a single political leader to be on the stage and address protesting citizens from the KM stage. He also said that those returning from the protest sites are accorded celebrity status in their villages over and above the politicians. He also updated the condition of a farmer who was seriously injured during a scuffle at a political rally. He also clarified regarding the PAYTM number issued to get contributions for the medical assistance to be provided to the injured farmers. He said there only a single person's number was issued whose credentials were verified and local committee members could give an account of the money received and spent that was collected for the medical help of the injured farmer.

7.	12th November 2021	Rakesh Tikait	Some elements want to discredit the movement. Thus, farmers present at the protest sites need to be alert and vigilant. They need to guard the sites like they guard their farms. He said that protestors need to prepare themselves for the upcoming winters and we need to mend out torn tents and arrange for warm clothing and beddings. He said that farmers are strong on tractors but not on Twitter. He suggested getting 2-3 boys from each village/district who understand social media dynamics or have an IT background to counter-narratives on social media. He emphasized that social media narratives are important because there is surveillance on both camera (referring to Broadcast Media) and pe (referring to Print Media).	1.8K	10K	129

8.	7th November 2021	Harish Hoon	Violence was unleashed on Farmers in Hansi, Haryana when they were peacefully protesting against the leadership of the ruling party and FIRs being filed on the farmers themselves. No FIRs were being filed on the Member of Parliament who unleashed the violence on farmers.	954	6.1K	34
9.	6th November 2021	Manjit Singh Rai	Rumours regarding the Roads opening at Tikri Borders. They emphasized that Roads were blocked by Government and not the farmers.	4.5K	50K	326
10.	3rd November 2021	Harish Hoon	Dispelled the rumours that farmers have left the protest sites. Emphasized that Non-Violence remains the strength of the movement and farmers will abide by its principles.	928	5.9K	71

			There have been constant attacks on the movement by the mainstream media. He asked citizens to remain cautious regarding the rumours. He said do not believe on any development or rumours until you get a statement or press conference from SKM. He asked the supporters not to panic.			
11.	31st October 2021	Manjit Singh Rai	Rumours regarding meeting with India's National Security Adviser Ajit Doval The final agreement with Central Government is already done but Samyukta Kisan Morcha waiting for the correct time to announce it. Farmers will celebrate Diwali at home as the decision regarding farm laws will happen by them.	3.4K	45K	524

12.	31st October 2021	Harish Hoon	Dispersal of Compensation to the Sugarcane Farmers of Uttar Pradesh.	923	7K	53
13.	30th October 2021	Abhimanyu	Regarding the barricading of the protests site and closing of borders causing inconvenience to the local population. He debunked by saying that volunteers were posted to aid the traffic and there are no jams at the protest site.	19K	280 K	2.9K
14.	30th October 2021	Suresh Koth	Farmers have stopped border sites Captain Amrinder Singh is negotiating and part of the Samyukta Kisan Morcha. A Committee will be formed for looking into Farmers' demand regarding Minimum Support Price (MSP).	3.9K	40K	476

15.	29th October 2021	Dr. Darshan Pal	Regarding some anti-social elements trying to enter the protest site and police lathi charge on farmers.	2K	12K	133
16.	28th October 2021	Harish Hoon	Regarding some anti-social elements trying to enter the protest site police lathi charge on farmers.	844	6.5K	46
17.	20th October 2021	Abhimanyu Kohad	Heavy Deployment of Protest Site and government trying to remove farmers from the site.	70K	115K	1.9K
18.	17th October 2021	Jagjit Singh	Cautions against believing those rumours Dallewal that want to divide the movement on religious basis and fake news spread in newspapers.	2K	15K	426
19.	13th October2021	Balbir Singh Rajewal	Change in the date of the burning of the effigy of some political leaders on Dussehra as some editorials in the newspapers have tried to make it a point to malign Hindu-Sikh harmony prevalent in the movement.	8K	91K	1K

20.	10th October 2021	Ravi Azad	Clarifies the road blockages. They strongly propose that they are a movement and not a political party.	7.2K	75K	1.2K
21.	9th October 2021	Sanjay Khareta (A Local from Singhu Border)	Farmers have not stopped roads. Counter Narrative : Local Farmer are supporting the movement.	2.7K	22K	275
22.	7th October 2021	Dr. Darshan Pal	Negotiations with the Government on Lakhimpur Violence were done by a panel/committee of Sanjyukta Kisan Morcha rather than a single popular farm leader Rakesh Tikait in consultation with the family of the deceased.	7K	219K	792
23.	1st October 2021	Abhimanyu Kohad	Counter Narrative: Regarding the MSP of two crops – Bajra and Rice. The constant change in specifications and dates of government procurement.	3.5K	38K	352

24.	27th September 2021	Manjit Singh Rai	The success of Bharat Bandh called by Sanjukta Kisan Morcha was successful in 22 states and remained peaceful.	816	10K	3.4K
25.	24th September 2021	Manjit Singh Rai	Countering Media narrative that the movement does not have strength.	586	5.7K	59
26.	21st September 2021	Balkaran Singh Brar	Explaining the initial stand of opposition political parties of Punjab towards Farm Laws and how they changed their stands post the movement.	500	3.1K	66
27.	19th September 2021	Professor Kartar Sartaj Singh	Explaining how the movement is related to all as it would impact food inflation and citizens' purchasing power. Cautions against Propaganda.	720	4.9K	109

28.	19th September 2021	Abhimanyu Kohad	Emphasis on the need to keep Bharat Bandh called by farmers on September 27 peaceful. Counter Narrative to the Government's stand that private players would enhance Farm Income, he explains the conditions of Apple growers of Himachal Pradesh who sell their apples to big corporates and how their prices were reduced for 2021 despite double-digit inflation in the country. Brings NSO data issued by Government itself to showcase the increased rural indebtedness for agriculture-related households between 2012-2021	7.7K	73K	886
29.	18th September 2021	Kulwant Singh Sandhu	Administration in the name of the Supreme Court of India is asking to vacate the roads; however, the court	730	5K	69

			has issued no such orders. Even the women who filed Public Interest Litigation related to the inconvenience caused to locals near protest sites did not appear in the court hearing. Explained how opposition parties had similar laws planned in their election manifestos of yesteryears.			
30.	17th September 2021	Manjeet Singh Rai	Counter-Narrative: On behalf of Sanjukta Kisan Morcha they showcased solidarity and support to Actor Sonu Sood who faced Income Tax Raids. He has done extensive work for social welfare during COVID 19 Crisis. SKM believes that anyone attempting to do public welfare faces such actions from the government as some farmer groups and supporters have faced similar consequences for supporting farm agitations.	1K	5.9 K	121

The table above is a record of the various discourses that emerged on the official page of "Kisan Ekta Morcha" the farmers' protest group on Facebookand how they tackled falsenarratives through the use of visualmedia in the form of "live feeds" or video records to showcase the actual events occurring during the protest movement.

Image I : Kisan Ekta Morcha Page

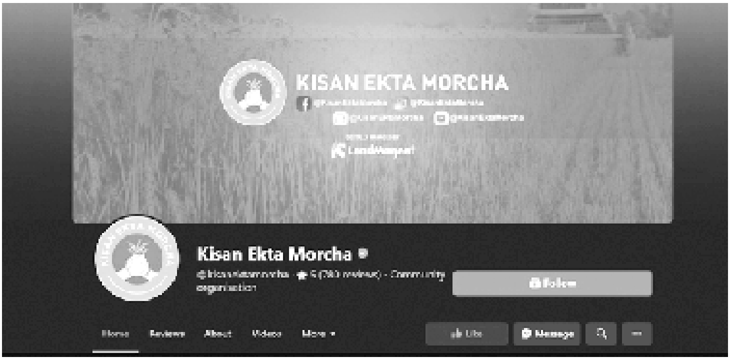

Source : shorturl.at/itzB0

Image II : Kisan Ekta Morcha

Source : shorturl.at/itzB0

The page, created in December 2020 on Facebook, was not being effectively operated due toa lack of knowledge as to how to utilize the platform and ignorance towards the counter-narratives being shaped on social media against their protest movement. However, when the protestors realized the impact that social media narratives were creating against their offline protest movement, they began utilizing the platform to present facts and countering the false narratives that were circulating on Facebook. The page saw momentum in information flow and active engagement with different users from January 2021 onwards and the timeline of September 2021 to November 2021 reflects how the series of events by the protestors were projected to the public through social media. The given timeline is also important as it witnesses a lot of false and counter-narratives aimed at breaking the sustainability of the movement. It also includes facts presented by "Kisan Ekta Morcha" on their social media account as to how they were sustaining the movement through cultural activities and mobilizing the support of the public through the presentation of correct information.

A. Breaking the Myth of the Movement being Radical and Violent in Nature

The leaders of the protest movement on 12th November 2021

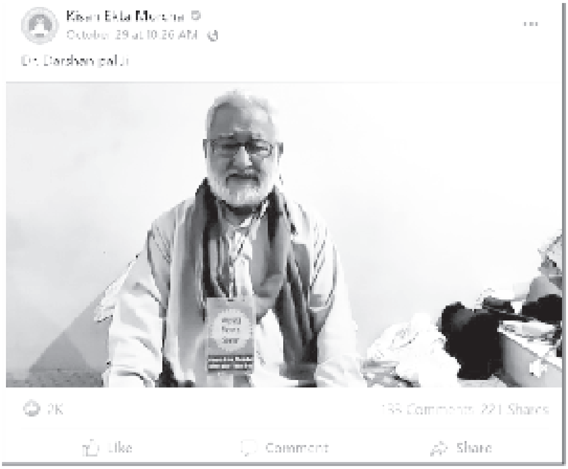

Source : shorturl.at/itzB0

released a live video feed to the supporters and other users on Facebookover the falsenarrative that had shaped claiming the movement to be violent and radical. The video feed cautioned the users about the presence of anti-social elements entering the protest sites and causing harm to the participating public. Rakesh Tikait, one of the leaders of the movement,stated thatfarmers need to be on their guard and remain vigilant at the protest site regarding any malicious group entering the protest sites. He further said that protesting farmers need to guard these sites similarly as they guard their farmlands.Abhimanyu Kohad on 20thOctober 2021, dispelled the rumours being spread that there was a heavy police deployment due to protestors being violent and aggressive towards the police and damaging public property. Dr. Darshan Pal on 29thOctober 2021 debunked the misinformation that some anti-social elements had entered the site and police had to resort to the use of batons on farmers to control them.

B. Breaking the Myth of Farmers Accepting Corporatization of Agriculture Markets

Source : shorturl.at/itzB0

Abhimanyu Kohad through Facebook Live on 19thSeptember 2021explained the perils of the corporatization of the agriculture sector through the example of apple farmers in Himachal Pradesh. He argued that big corporates have beenpaying lowprices for apple

acquisition in comparison with APMCs. He substantiated his views with NSO Data (National Statistical Office, Ministry of Statistics and Programme Implementation, Government of India) on rural indebtedness between 2012-2021.Rakesh Tikaitthrough Facebook Live on 15th November 2021 reached Karnal District, Haryana, and stood outside a*Mandi* (State-Sponsored Market) which was supposed to be sold to private contractors. He spoke that farmers have not agreed to the corporatization of agriculture markets and no negotiations have taken place between the government and the protestors as it was claimed on Facebook. Further issues were raised regarding the shortage of DAP(Di Ammonium Phosphate) and farmers being forced to purchase Sulphur along with DAPby private contractors in the states of Haryana, Punjab, and Rajasthan. Harish Hoonraised the concerns of Uttar Pradesh Farmers who had not received the payments for Sugarcane last year in two of his Facebook Live sessions dated 31st October 2021 and 15th November 2021 which according to the law was supposed to be done within 14 days of the sale (Sugarcane Control Order).

C. Breaking the Myth of Revival of Khalistani Movement through Farmers' Protest

The protest movement was discredited on Facebook by government supporters that it was reviving the Khalistani Movement (Reference to Militant Groups of Punjab in the 1980s seeking a separate state from India), the protestors being anti-nationalists and gaining financial support from Pakistan.

Others called the movement as a movement of large farmers and middlemen (*Artiyas*) from North Indian states protesting to secure their financial aids given by the government. The protestleader Rakesh Tikaiton Facebook on 12th November 2021 expressed that the movement is strong offline but not strong enough on Twitter and other social media platforms referring to the misinformation and fake news spread against the movement. He requested the youth to kindly aid them in understanding the dynamics of social media and to counter the propaganda being created against them. Farmer leader Harish Hoon (on 3rd November 2021) pointed out that the allegations and accusations created on Facebook are entirely false and the movement is a

people's movement that is focused on highlighting people's grievances with the implementation of new farm laws. He rejected the claim that the movement was an act of sedition against the country or was harbouringanti-state ideology amongst the protesting farmers. Farmer leader Manjit Singh Rai dispelled the information that the movement was losing the strength of its supporters at the protest sites on Facebook Live (24thSeptember 2021) on the basis of the movement being seditious.

D. Breaking the Myth of Farmers and Government Negotiations for Ending the Movement

Source: shorturl.at/itzB0

The leaders of the Farmers' Protest Movement continuously rejected the false claims since January 2021 that farmers and government negotiations had taken place for a rollback of the three farm laws. Manjit Singh Rai through Facebook Live (31st October 2021) aggressively debunked such fake claims that had emerged on Facebook. He further pointed out that no negotiations had taken place between the leaders of the movement and India's National Security Advisor Mr. Ajit Doval. He also clarified that no agreement was made between the stakeholders. Dr. Darshan Pal emphasized that the movement was a unity of 32 independent farmers' groups that comprised the Samyukta Kisan Morcha rather than personality cults of certain charismatic and media-savvy leaders and this united front was responsible for compensating the families of the deceased farmers involved in the Lakhimpur Kheri violence in Delhi on 3rd October 2021.

E. Breaking the Myth of Farmers Restricting Movement of Vehicles and Barricading State-Borders Around Delhi

A lot of false narratives have been circulating on Facebook claiming that the protestors had blocked the movement of vehicles and barricaded the state borders causing inconvenience to the commuters. Even a Public Interest Litigation (PIL)was filed in the Supreme Court of India regarding the road blockage caused by the farm protest. In the span of two months, the farmer leaders have been continuously using Facebook to clarify their standpoint on the issue. Manjit Singh Rai on 6thNovember 2021 pointed out that roads were blocked by the Government and its agencies rather than the protestors. He emphasized that Police had barricaded the protest sites which had resulted in the closing of roads and borders. Abhimanyu Kohadon 30thOctober 2021mentioned that volunteers belonging to Samyukta Kisan Morcha were aiding the commuters and ensuring that there were no traffic jams on the roads and highways near theprotest sites. He also emphasized that the local population was supporting the movement and farmer protests were not causing any inconvenience to the nearby residents. Protestleader Kulwant Singh Sandhu dispelled the myth that the Supreme Court had issued any orders regarding the vacating of protest sites. He said that the administration was trying to remove them in the name of false orders of the Supreme Court. He even clarified that the women who had filed the PIL in the court did not

appear in the hearing of the court on his Facebook Live session on18thSeptember 2021.

Table 2 :

List of Popular Hashtags on Farmers Protest (2021)

S. No	Popular Hashtags	Posts
1.	#standwithfarmerschallenge	881000
2.	#FarmersProtest	455000
3.	#kisanektazindabad	111000
4.	#resignmodi	93000
5.	#isupportfarmers	70000
6.	#rakeshtikait	36000
7.	#SpeakUpForFarmers	33000
8.	#kisanektamorcha	21000
9.	#FarmersProtestDelhi2020	16000
10.	#kisankhalistan	12000
11.	#arrestrakeshtikait	12000
12.	#Missingindira	8000
13.	#khalistanterrorists	4000
14.	#ModiPlanningFarmerGenocide	2500

Figure 3 :

Demography of Hashtag (2021)

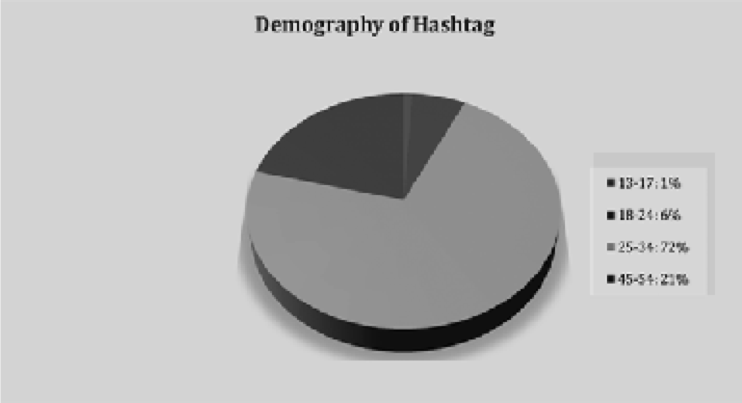

Source:shorturl.at/yFUZ7

Figure 4

Language for Hashtags

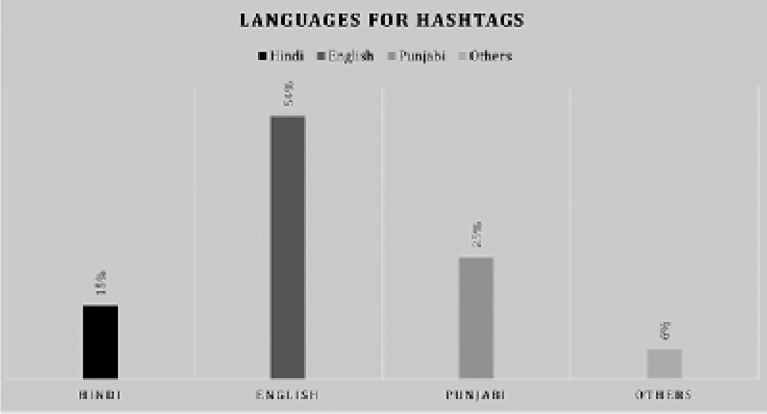

Source:shorturl.at/yFUZ7

The above data indicates the following facts:

1. The majority of participation on Facebook regarding the "Farmers' Protest Movement (2020-21)" was by the Indian youth within the age bracket of 25 to 34 years. Most of the communication regarding the farmers' protests was conveyed in English and then in Punjabi to cater to both local and international audiences.
2. The rising digital presence of "Kisan Ekta Morcha" on Facebook from January 2021 onwards has led to rising support for the farmers' protest movement against the amendments in the Indianagricultural laws. The hashtag handle of #standwithfarmerschallenge, #farmersprotest, and #kisanektazindabad had the maximum digital presence on Facebook which complements the actions of "Kisan Ekta Morcha" in bursting false narratives about farmers protests through their live feed videos.
3. Despite the digital presence of the protest movement, some of the false narratives such as associating farmers with *Khalistanis*, #kisankhalistan, #arrestrakeshtikait, and #missingindira did emerge from January 2021 onwards but due to the government's intervention, the hashtags were

restricted for a specific period of time which led to a decline in its digital presence. The interesting fact to highlight here is that most of the government supporters on Facebook linked Indian farmers with *Khalistani*terrorists and used #missingindira extensively (Related to Late PM Ms. Indira Gandhi and her approach in curbing *Khalistani* Movement in India in the 1980s) to express the need for a radical step in curbing the protest movement and attempting to give validation to the false narratives that the movement was an act of seditionthrough Facebook. To counter the false narratives, the protest group used #Modi Planning Farmer Genocide to express the harsh approach of the government in subduing the movement but the hashtag was severely regulated leading to its low digital presence. The government also regulated the hashtag #shoot which was used to justify that shooting the farmers would be the best possible intervention in curbing the protest movement. The hashtag was later removed completely from Facebook to project that the government was concerned about the farmers.

IV. Conclusion

From the above-mentioned facts, it can be found that Facebook was extensively used as a forum for validating different narratives which included both factual and fake information. The digital presence of the farmers' movement was helpful in terms of sensitizing the people through facts and mobilizing the public for support. However, due to the high rate of transfer of information on Facebook and the creation of false narratives, the protesters' group faced the challenge of dealing with large data. The factors which benefited the protestors on Facebook were high levels of transparency in presenting facts and allowing a public forum for accountability and verification of information. Thus,it can be seen that a high degree of participation was observed in the favour of the farmers on Facebook through the presentation of verifiable facts.

References :

1. Badola, A. (2021). Digital sites of protest: Farmers' protest in India and the construction of a collective identity on Facebook. Retrieved from https://journals.uic.edu/ojs/index.php/spir/article/view/11862

2. Bhowmick, N. (2021). "I Cannot Be Intimidated. I Cannot Be Bought." The Women Leading India's Farmers' Protests. *Time.Com*, N.PAG.

3. Curtis, J. (2021). Farmers' protests in India and agricultural reforms. Retrieved from https://researchbriefings.files.parliament.uk/documents/CBP-9226/CBP-9226.pdf

4. Gill,S.S. (2021). New farm acts and emerging market forms: Implication for farmers. Retrieved from https://journals.sagepub.com/doi/abs/10.1177/09763996211030884

5. Harlow, S., &Kilgo, D. K. (2021). Protest News and Facebook Engagement: How the Hierarchy of Social Struggle Is Rebuilt on Social Media. *Journalism & Mass Communication Quarterly*, *98*(3), 665–691. https://doi.org/10.1177/10776990211017243

6. Kilgo, D. K., & Harlow, S. (2021). Hearts and Hahas of the Public: Exploring How Protest Frames and Sentiment Influence Emotional Emoji Engagement with Facebook News Posts. *Journalism Studies*, *22*(12), 1627–1647. https://doi.org/10.1080/1461670X.2021.1908840

7. Kisan Ekta Morcha (2021). Retrieved from https://www.facebook.com/search/top?q=kisan%20ekta%20morcha

8. Kronstadt, K.A. (2021). Farmer protests in India. Retrieved from https://www.everycrsreport.com/files/2021-03-01_R46713_e6dfaf9f 83 d497596ef2e8004d084 dbadc9796e1.pdf

9. Kumar, A. and Mehta, S. (2017). Deconstructing the enigma of recent farmers' protests in India. Retrieved from https://www.researchgate.net/publication/319328791_Deconstructing_the_Enigma_of_Recent_Farmers'_Protests_in_India

10. Lerche, J.(2021). *Jat power and the spread of the farm protests in Northern India. Retrieved from* https://eprints.soas.ac.uk/34940/

11. Nadkarni, M.V. (1987). *Farmers' Movements in India.* Retrieved from https://www.mvnadkarni.com/files/Farmers%20 Movements% 20in% 20India.pdf

12. Naidu, S. C. (2021). India's Farmers' Protests: What's behind one of the largest protests in history? *Dollars & Sense*, *354*, 8–14.

13. Narayanan, S. (2021). Understanding Farmer Protests in India. *Academics Stand Against Poverty*, *1*(1), 137-144. http://journalasap.org/index.php/asap/article/view/15

14. Neogi,A.S., Garg, K. A.,Mishra,R. K.,Dwivedi,Y. K. (2021). Sentiment analysis and classification of Indian farmers' protest using twitter data, *International Journal of Information Management Data Insights*, Volume 1, (2).

15. Ranjan, S. (2021). Farmers' Protest: A roadmap for the opposition. Retrieved from https://www.epw.in/node/158343/pdf

16. Sethi, A. (2021). One Year Later: Reflections on the Farmers' Protests in India, HAU, Journal of Ethnographic Theory, Vol. 11, (2),869-876

17. Singh, N. (2021). Agrarian Crisis and the Longest Farmers' Protest in Indian History. *New Labor Forum (Sage Publications Inc.)*, *30*(3), 66–75. https://doi.org/10.1177/10957960211036016

18. Singh, T., Singh, P., &Dhanda, M. (2021). Resisting a "Digital Green Revolution": Agri-logistics, India's new farm laws and the regional politics of protest. In *Capitalism Nature Socialism* (Vol. 32, Issue 2, pp. 1–21). Informa UK Limited. https://doi.org/10.1080/10455752.2021.1936917

19. Sutherland, W., &Jarrahi, M. H. (2018). The sharing economy and digital platforms: A Review and research agenda. International Journal of Information Management, 43, 328– 341.

20. Tarafdar, M., & Kajal Ray, D. (2021). Role of Social Media in Social Protest Cycles: A Sociomaterial Examination. *Information Systems Research*, *32*(3), 1066–1090. https://doi.org/10.1287/isre.2021.1013

Namit Vikram Singh
Assistant Professor,
Delhi School of Journalism,
University of Delhi, Delhi, India.

Surbhi Tandon
Research Scholar,
University School of Mass Communication, GGSIP
University, Delhi, India.

❑❑❑

Awareness and Opinion of Elementary Teachers Towards Constitutional Values

Dr Samir Kumar Lenka ● Dr Anamika Lenka,

Abstract

Human beings, though they belong to animal kingdom, are qualitatively distinct from animals due to the possession of valuation character. This feature of valuation separates humans from rest of the species. Value not only judges the human actions but also binds the individual too collectively. Every social formation, however primitive it may be, fosters its own value system. This value system governs human activities and acts as the frame of reference to activities of its members. Family, school, communities, religion, political institutions are the sources of values. The constitution of India provides some values such as- co-operation, tolerance, justice, liberty, equality, fraternity, unity in diversity, sacrifice, pluralism, forgiveness, empathy, patriotism, democratic outlook etc. Awareness of Value Education is very much necessary for children at grassroots level. These values are helping them to become a democratic citizen of India. The National Curriculum Framework (NCF, 2005), strongly advocates values like cooperation, respect for human rights, tolerance, justice, responsible citizenship, diversity, reverence towards democracy and peaceful conflict resolution. Teachers are the ultimate instruments of change. Kesici (2008) also suggests that a democratic teacher should hold democratic values in high esteem and adopt appropriate teaching methods in accordance with those values. Unless teachers are aware of the Constitutional Values, they cannot inculcate values awareness among the students. Thus, the present study is entitled as “Awareness and opinion of Elementary teachers towards Constitutional values” is an attempt to explore the awareness and opinion of elementary teacher regarding constitutional values.

Key Words : **Constitutional Values, Elementary Teacher, Awareness, Opinion.**

Societies, all over the world, are in constant change. Today no human community stands unaffected by this change. The change, which is affecting all the societies, is multifaceted multidimensional and multi-directional. This change has initiated a change in the way of life and transformed view of life. Due to Rapid pace of change in every field of human activity – politico-economic, socio-cultural, scientific and technological and even religion-philosophic spheres-man is confronted with many more challenging situations and dilemmas. The route of the dilemma is, at the same time, both material and moral. This material and moral dilemma of individuals and collectivises is resulting in the value crisis.

Human beings, though they belong to animal kingdom, are qualitatively distinct from animals due to the possession of valuation character. This feature of valuation separates humans from rest of the species. Thus human actions cannot be valued neutral. They are always loaded and flooded with values. In fact human actions are preceded and followed by values. The value framework guides human actions and delivers the judgement - whether they performed human action is right or wrong, good or bad (Dheria, 2002).

Value not only judges the human actions but also binds the individual too collectively. Every social formation, however primitive it may be, fosters its own value system. This value system governs human activities and acts as the frame of reference to activities of its members.

When human activities were few and spatial extension of those activities was limited, the value frame they had was relatively simple but rigid. As human activities have been multiplied and their spatial extension has been progressively expanded, the value frame has become complex but flexible. This resulted in the emergence of many and diverse sources of values and hence in different historical contexts different institutions served as source of values (Pandey, 2005 & Kasyap, 1995). This includes family, school, communities, religion and, of course, political institutions. At the same time, in modern period, the emergence of nation- states brought many changes in the notion of society and brought the territorially

scattered, culturally divergent and politically independent societies under one single authority. When different people from distinct social formations came together, they came with different customs, traditions and values. This situation, give rise to tensions between people and this changed situation compelled the humans to go for the creation of a single source of values to be practiced and observed by the people living in one nation-state. This realization across the globe resulted in the framing of Constitution, which has become the source of values (Basu, 1991).

The National Curriculum Framework (NCF, 2005), strongly advocates values like cooperation, respect for human rights, tolerance, justice, responsible citizenship, diversity, reverence towards democracy and peaceful conflict resolution. Teachers are the ultimate instruments of change. The qualities like tolerance, acceptance, a wider view, global awareness, reflection and equal justice rests within the teachers to shape the child in all possible ways to face this competitive world of today. Teaching is democratic and noblest of all the professions as the teacher's role is highly significant in shaping and moulding the future of a nation by tending the youth minds as the architects of the future generation.

The National Policy of Education (1986) also highlighted the need of education for values in removing intolerance, violence, superstition and upholding social, cultural and scientific principles to make India a secular, democratic and progressive nation taking pride in its cultural heritage.

The National Policy of Education (2020) also suggested that Students will be taught at a young age the importance of "doing what's right", and will be given a logical framework for making ethical decisions. In later years, this would then be expanded along themes of cheating, violence, plagiarism, littering, tolerance, equality, empathy, etc. Constitutional values (such as tolerance, diversity, pluralism, righteous conduct, gender sensitivity, respect for elders, respect for all people and their inherent capabilities regardless of background, respect for environment, helpfulness, courtesy, patience, forgiveness, empathy, compassion, patriotism, democratic outlook, integrity, responsibility, justice, liberty, equality, and fraternity) will be developed in all students.

Kesici (2008) also suggests that teachers who want to practice

democracy should demonstrate their beliefs by giving importance to democratic values in their classrooms. He feels that a democratic teacher should hold democratic values in high esteem and adopt appropriate teaching methods in accordance with those values. If democracy is to become a way of life in western societies, we certainly need teachers with a strong commitment to democratic education (Shechtman, 2002). The more a teacher understands democracy and incorporates it in the classroom the more it will be understood by students. Kesici (2008) states, "The teacher is the key factor in the process of building a democratic classroom". Selvi (2006) suggested that teachers should use appropriate teaching methods so that students can easily express themselves and their thoughts and ideas. A democratic teacher also needs to be fair, applying rules uniformly and listening to student explanations for misbehaviour before making decisions.

Parker (2003) writes "schools play such a pivotal role since citizens of a democracy are created, not born. The most important component of the formal educational programmes is the teacher. Therefore, teachers need to have not only an understanding of democratic society, values, behaviour and attitudes but also need to practice this knowledge and understanding in the classroom otherwise pure information about democracy would not work out in the long term.

In the modern era, with the advent of nation- states based on democratic participation of the people, the elected body of the polity has become the ultimate source of values and all other sources of values are asked to confine to private sphere of individuals. Thus, in all the democratic countries, the constitution is considered to be the fountainhead of values. Indian Constitution in its Preamble very clearly spelt out grand ideals such as Equality, Liberty, and Secularism as the values to be embraced and practiced. (Austin and Granuille, 1996). However, mere framing of Constitution with grand ideals does not guarantee its translation into practice, unless people are aware of it and its values (Wheare, 1964). To attend this need education is considered to be the best means. But unless teachers are aware of the Constitutional Values, they cannot inculcate values awareness among the students. Therefore, there is a need to see the awareness of teachers regarding Constitutional Values. For this, a study entitled, "Awareness and Opinion of Elementary School Teachers towards Constitutional values" has been undertaken.

Operational Definitions of The Key Terms

Elementary Teachers

Elementary education covers the primary (6-11 years) and upper primary (11-14 years) age group. Elementary education is the foundation and forms the basis of all levels of learning and develops and individual and equip him/her with analytical capabilities, build up confidence and Values which is necessary for children at grassroots level. A democratic teacher should hold democratic values in high esteem and adopt appropriate teaching methods in accordance with those values. Unless teachers are aware of the Constitutional Values, they cannot inculcate values awareness among the students.

Constitutional Values

The values expressed in the preamble are expressed as objectives of constitution. These are – sovereign, socialism, secularism, democracy, republican character of Indian States, justice, social, economical, political, equality, liberty, unity and integrity of the nation. NCF (2005) suggested that building commitments to democratic values of equality, justice, freedom, concerns for other's well being, secularism and respect for human dignity and rights should found place in curriculum of school.

OBJECTIVES

The study is undertaken with the following objectives:

- To study the difference between the elementary teachers of private and government schools in the awareness levels regarding Constitutional Values.
- To study the difference between the elementary teachers of private and government schools in the opinion regarding Constitutional Values.
- To study the difference between the male and female elementary teachers in the awareness levels regarding Constitutional Values.
- To study the difference between the male and female elementary teachers in the opinion regarding Constitutional Values.
- To study the difference between elementary teachers of Social

Studies and the teachers of other subjects in the awareness levels regarding Constitutional Values.

- To study the difference between elementary teachers of Social Studies and the teachers of other subjects in the opinion regarding Constitutional Values.
- To study the relationship between awareness and opinion of Elementary school teachers regarding Constitutional Values.
- To study the relationship between the service and awareness of Elementary school teachers regarding Constitutional Values.
- To study the relationship between the service and opinion of Elementary school teachers regarding Constitutional Values.

HYPOTHESIS

- There is no significant difference in the awareness level regarding constitutional values of the school teachers of private and Government schools.
- There is no significant difference in the opinion regarding constitutional values between the elementary school teachers of private and Government schools.
- There is no significant difference in the awareness levels regarding constitutional value of the male and female elementary school teachers of private and Government schools.
- There is no significant difference in the opinion regarding constitutional values of the male and female elementary school teachers
- There is no significant difference in the awareness levels regarding constitutional values of the teachers of Social Studies and other subject teachers of elementary schools.
- There is no significant difference in the opinion regarding constitutional values of the teacher of Social Studies and other subject teachers of elementary schools.
- There is no significant relationship between awareness levels and opinion of Elementary school teachers regarding constitutional values.

- There is no significant relationship between service and awareness level of Elementary school teachers regarding constitutional value.
- Ther is no significant relationship between service and opinion of the Elementary school teacher regarding constitutional values.

METHODOLOGY

Sample

Descriptive survey method has been used for the study and simple random sampling technique has been adopted for the collection of the data. A total sample of two hundred elementary school teachers has been drawn from various schools of cuttack district, Odisha.

Distribution of samples Category Wise

Govt. Elementary teacher- 100

Private Elementary teacher-100

Gender Wise

Male Elementary Teacher-100

Female Elementary Teacher-100

Discipline Wise

Social Studies Discipline-100

Others Discipline-100

Tools used

For data collection, the researcher developed and used two tools- questionnaire and opinionaire. To assess the awareness levels of the respondents the researcher administrator 20 items questionnaire on constitutional values with multiple choices to elicit opinion of the respondents- the researchers, administrator. The opinionnaire contained 24 statements on three points scale of Likert type.

The results, after the verification of hypothesis, are presented below:

The first hypothesis of the study stating that, there is no significant difference in the awareness level regarding Constitutional

Values between elementary teachers of private and government schools is presented in Table: 1.

Table 1

Significance of 't' between Private and Government School teachers in Respect of Awareness Levels of Constitution Values

Category	A.M	S.D.	N	df	t	Level of Significance
Govt.	56	5.66	100	198	1.63	0.01
Private	54.74	4.57	100			

The calculated "t" value 1.63 is less than the p value 2.60 at 0.01 level of significance. Therefore, H_o is accepted. There is no significant difference in the awareness level regarding Constitutional Values between elementary teachers of private and government schools. This show that elementary teachers working in government schools do not differ significantly from their counterparts working in private schools in their awareness levels regarding constitutional values.

The second hypothesis stating that there is no significant difference between Government and private teacher in respect of their opinion about constitutional values is verified and presented in table 2.

Table 2

Significance of 't' between Private and Government School teachers in Respect of Opinion about Constitution Values

Category	A.M	S.D.	N	df	t	Level of Significance
Govt.	52.53	4.88	100	198	1.56	0.01
Private	51.56	3.98	100			

The calculated "t" value 1.56 is less than the p value 2.60 at 0.01 level of significance. Therefore, H_o is accepted. There is no significant difference between Government and private teacher in respect of their opinion about constitutional values. This show that elementary teachers working in government schools do not differ

significantly from their counterparts working in private schools in their opinion regarding constitutional values.

GENDER

The third Hypothesis of the study stating that there is no significant difference between the awareness level regarding constitutional values between male and female teachers working in elementary schools is verified and presented in Table 3.

Table 3

Significance of 't' between Private and Government School teachers in Respect of Awareness Levels Constitution Values

Sl. No.	Category	A.M	S.D.	N	df	t	Level of Significance
1	Male	54.25	4.75	100	198	0.78	0.01
2	Female	53.78	3.89	100			

The calculated "t" value 0.78 is less than the p value 2.60 at 0.01 level of significance. Therefore, H_o is accepted. There is no significant difference between the awareness level regarding constitutional values between male and female teachers working in elementary schools. This shows that male and female teachers do not differ significantly in their awareness levels regarding constitutional values.

The fourth hypothesis stating that there is no significant difference between male and female teacher in respect of their opinions about constitutional values is verified and presented in table 4.

Table 4

Significance of 't' between Private and Government School teachers in Respect of Opinion Regarding Constitution Values

Sl. No.	Category	A.M	S.D.	N	df	t	Level of Significance
1	Male	52.29	4.25	100	198	1.85	0.01
2	Female	53.46	4.78	100			

The calculated "t" value 1.85 is less than the p value 2.60 at 0.01 level of significance. Therefore, H_o is accepted. There is no significant difference between male and female teacher in respect of their opinions about constitutional values. This shows that the male and female teachers do not differ significantly in their opinion regarding constitutional values.

DISCIPLINARY BACKGROUND

The fifth hypothesis of the study stating that there is no significant difference in Awareness of constitutional values between the teachers of the Social Studies discipline and teachers in the other disciplines working in elementary school is verified and presented in Table 5.

Table 5

Significance of 't' between Social Studies Discipline Teachers and Other Discipline Teachers in Respect of Awareness Levels Regarding Constitutional Values

Sl. No.	Category	A.M	S.D.	N	df	t	Level of Significance
1	Soc., St.,	54.24	4.36	100	198	3.01	0.01
2	Others	52.55	3.73	100			

The calculated "t" value 3.01 is higher than the p value 2.60 at 0.01 level of significance. Therefore, H_o is rejected. Thus, the hypothesis of the study that there is no significant difference in Awareness of constitutional values between the teachers of the Social Studies discipline and teachers in the other disciplines working in elementary school is rejected. There is a significant difference in Awareness of constitutional values between the teachers of the Social Studies discipline and teachers in the other disciplines working in elementary school. Result asserting that Awareness of constitutional values of teachers of the Social Studies discipline is higher than the awareness of constitutional values of teachers of the other disciplines.

The sixth hypothesis of the study stating that there is no significant difference between the opinion levels regarding

constitutional values between the teachers of social science discipline and teachers in the other disciplines working in elementary school is verified and presented in Table 6.

Table 6

Significance of 't' between Social Studies Discipline Teachers and Other Discipline Teachers in Respect of Opinion Regarding Constitutional Values

Sl. No.	Category	A.M	S.D.	N	df	t	Level of Significance
1	Soc., St.,	54.68	4.15	100	198	2.40	0.01
2	Others	53.38	3.67	100			

The calculated "t" value 2.40 is less than the p value 2.60 at 0.01 level of significance. Therefore, H_o is accepted. There is no significant difference between the opinion levels regarding constitutional values between the teachers of social science discipline and teachers in the other disciplines working in elementary school. This shows that the features of Social Studies discipline do not differ from teachers of other subject disciplines in other opinion regarding constitutional values.

RELATIONSHIPS

There are three hypotheses pertaining to relationships between variables. All the three hypotheses are tested and the result is presented in the following tables.

The seventh hypotheses stating that there is no significant relationship between awareness and opinion of teachers regarding the Constitutional Values is verified and shown in Table 7.

Table 7

Significance of 'r' between Awareness and Opinion of Teachers Regarding Constitutional Values

Sl. No.	Category	N	df	r
1	Awareness	200	198	-0.09
2	Opinion			

The calculated value ‘r’ -0.09 is not found to be significant and hence the hypothesis is not rejected. This indicates that there is no significant relationship between the awareness and the opinions of the teachers towards the constitutional values. Though not significant a negative relationship is noticed, it may be implied that the awareness and the opinion of the teachers are independent.

The eighth hypothesis stating that there is no relationship between service and awareness of elementary school teachers regarding constitutional values is verified and shown in table 8.

Table 8

Significance of ‘r’ between Service and Awareness of Elementary school Teachers regarding Constitutional Values

Sl. No.	Variables	N	df	r
1	Service	200	198	-0.03
2	Awareness			

The calculated value ‘r’ -0.03 is not significant and hence the hypothesis is not rejected. This indicates that there is no significant relationship between the service and awareness of the elementary school teachers towards the constitutional value. Though not significant a negative relationship is noticed. This implied that service and Awareness of teachers are independent.

The ninth hypothesis stating that there is no significant difference between the service and opinion the elementary school teachers towards the constitutional values is verified and shown in table 9.

Table 9

Significance of ‘r’ between Service and Opinion of the Elementary School Teachers Regarding the Constitutional Values

Sl. No.	Variables	N	df	r
1	Service	200	198	-0.298
2	Opinion			

The calculated value ‘r’is -0.298 is not significant and hence the hypothesis is rejected. This indicates that there is a significant relationship between the service and the opinion of teachers towards the constitutional values. This shows that more the service of the teachers less favourable will be their opinion towards the value of the Constitution. This implies that senior teachers have less favourable opinion and junior teachers have more favourable opinions about the constitutional values.

The study “has very clearly shown that there is no significant difference of awareness regarding the constitutional values among the elementary teachers with verified background such as gender medium of instruction”. But in the subject background of the teachers there is a difference between Social Studies and other subject teachers. In awareness level with regard to the constitutional values indicate Social Studies teachers are more aware about constitutional values than other disciplines teachers. But in opinion level there is no significant differences.

At the same time teachers working with the government school showing more positive opinion when compared to their counterparts working in the private school with regard to the constitutional values needs to be look critically into.

There has been a debate over the question of the role of education in general, teacher in particular vis-a-vis social conformity and social change whether a teacher acts as an agent of change or works for status quo. The finding of the study reveals the fact that the opinion of the teachers as they grow in their service regarding the constitutional values is negative. The study results have shown that teachers with less service have positive opinion when compared to the teachers with more number of years of service regarding the constitutional values. As the Indian Constitution proposes social transformation, finding unfavourable opinion regarding the constitutional values among the teachers with more service informs us about teachers with a conformistic andstatusquoistic mindset.

These situations indicate the fact that the Transformer, as he grew in profession was transformed himself against the Expectations and the aspirations of the people. This poses a serious challenge to the Destiny of India is envisioned by and in the constitution.

References

Austin, Granvillie. (1996) The Indian Constitution: Cornerstone of a Nation, Oxford Claredon Press, England, p-308.

Basu, D.D. (1994) Introduction to Constitution of India, Prentice Hall of India, New Delhi.

Daheria, B.D. (2002) Fundamental duties of Citizens: Miracle of Teaching 1(1), p74.

Dewey, J. (1916). Democracy and Education, An Introduction to the Philosophy of Education. New York, Macmillan.

Government of India. (1999) Report of National Commission to Review the Working of the Constitution, New Delhi,

Kar, N.N. (1996) Value Education – A Philosophical Study, The Associated Publishers, Ambala Cant., India.

Kashyap, S.C. (1995) Our Constitution, NewDelhi, National Book Trust, India, p-51.

Kesici, a. (2008). Teachers' opinions about building a democratic classroom. Journal of

Instructional Psychology 35(2), 192-203. https://eric.ed.gov/?id=EJ813324

Muwange, Victoria. (1987) A Study of Environmental Knowledge Awareness and Attitude of High School Students.

National Policy on Education (1986) https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/upload_document/npe.pdf

NCERT (2005) National Curriculum Framework 2005, New Delhi: National Council for Education Research and Training.

NCTE Document, (1998) Policy Perspectives in Teacher Education, critique & documentation, 1998.

Pandey S. (2005) Human Right Education in Schools : The Indian Experiences, Human Right Education in Asian Schools, 8, p95-107, 2005. https://www.hurights.or.jp/archives/pdf/asia-sed/v08/11IndianExperience.pdf

Parker, W. (1996). Curriculum for democracy. In R. Soder (Ed.), Democracy, education, and schooling (pp. 182-210). San Francisco: Jossey-Bass.

Pylee. M. V. (1995) An Introduction to the Constitution of India, New Delhi, 1995.

Secondary Education Commission, (1952-53) http://www.acte.in.org/pub/policy/part-1, htm-4

Selvi, K. (2006). Developing a teacher trainees' democratic values scale: validity and reliability analyses. Social Behavior and Personality, An International Journal34 (9), 11711178.

DOI:10.2224/sbp.2006.34.9.1171. https://www.researchgate.net/publication/233587873

Shechtman, Z. (2002). Validation of the democratic teacher belief scale (DTBS).

Assessment in Education, 9(3), 363-377. DOI:10.1080/0969594022000027672.

https://www.researchgate.net/publication/261658974

Subba, D. (2014). Democratic Values and Democratic Approach in Teaching : A Perspective. American Journal of Educational Research, 2014, Vol. 2, No. 12A, 37-40. DOI :

10.12691/education-2-12A-6. http://pubs.sciepub.com/education/ 2/12A/6/index.html.

Whereas, K.C. (1964) Modern Constitution, London: Oxford University Press, p.98.

Dr Samir Kumar Lenka
Head, School of Education
Maharaja Sriram Chanadra
Bhanjadeo University, Mayurbhaj, Odisha

Dr Anamika Lenka
Principal
Joy Ma Tara B. Ed College, NADIA
West Bengal

औपनिवेशिक बिहार में नदी सम्बन्धी शासकीय क़ानून

(बंगाल जलोढ़ एंड डिलुवियन रेगुलेशंस एंड डिकॉमनाईजेशन)

विपुल सिंह* • अनु. डॉ. राजेन्द्र कुमार**

बाढ़ के मैदान अपनी विशाल कृषि क्षमता के कारण अतीत में सदैव संघर्ष के केंद्र में रहे हैं। भारत में किसी भी अन्य प्रारंभिक आधुनिक राज्य की तरह, औपनिवेशिक राज्य की मुख्य चिंता भू-राजस्व की स्थायित्वता थी, और यह तभी संभव हो सकता था जब समग्र संपत्ति की निश्चितता का पता लगाया जाए। गैर-तटीय उच्च भूमि के मामले में इस तरह का संग्रह मूल्यांकन या पट्टे के आधार पर संभव है, लेकिन विशेष रूप से तटीय और कछारी भूमि पर संपत्ति की अल्पकालिक प्रकृति के कारण चुनौतीपूर्ण है। इस केस स्टडी में उन विभिन्न निकायों पर चर्चा की गई है जो औपनिवेशिक पूर्वी भारत की दियारा भूमि में राजस्व संग्रह की समस्या का समाधान करने के लिए शुरू किए गए थे। ऐसा करते समय यह सामान्य भूमि के विघटन की प्रक्रिया की जांच करता है। नाविकों और मछुआरे समुदायों पर इसके प्रभाव का और विश्लेषण किया गया है।

पृष्ठभूमि और संदर्भ

गंगा ऐतिहासिक रूप से भारत की सबसे पूजनीय नदियों में से एक रही है। कई नदियाँ गंगा बेसिन को पार करती हैं, और उनमें से, गंगा स्वयं सबसे बड़ी है जो उत्तर-पश्चिम से पूर्व की ओर बहती है। हिमालय से बंगाल की खाड़ी तक लगभग 2,500 किमी. के अपने लंबे मार्ग के दौरान, यह नदी 980,000 वर्ग किमी. का एक विशाल जलग्रहण क्षेत्र बनाती है। अपने प्रवाह के साथ-साथ, गंगा को न केवल पवित्र माना जाता है, बल्कि इसके बहाव क्षेत्र के समीप रहने वाले समुदायों द्वारा सामूहिक रूप से उपयोग की जाने वाली

मुख्य नदी भी है। इसके प्रवाह की प्रकृति ने ही सामाजिक वैज्ञानिकों को इसे तीन हिस्सों में विभाजित करने के लिए प्रेरित किया है-ऊपरी, मध्य और निचला (चक्रवर्ती, 2001)। हिमालय के हिमनदों (ग्लेशियरों) से निकलने वाली छह मुख्य जल-धाराएं, ऋषिकेश में संगम करती हैं और गंगा की मुख्य धारा बनाती हैं। इलाहाबाद में काल्पनिक अक्ष गंगा के ऊपरी मार्ग को मध्य खंड से अलग करती है क्योंकि अब इसकी ढाल पूर्व की अपेक्षा कम हो जाती है और नदी तल का विस्तृत फैलाव हो जाता है। निचले हिस्से की तुलना में यहां नदी की गहराई बहुत कम है, जो कि समतल और उथली है। निचले खंड में, गंगा बंधी हुई है और कई धाराओं में विभाजित हो जाती है, और बंगाल की खाड़ी के निकट एक डेल्टा बनाती है।

इसके प्रवाह की सभी भौतिक पहचानें उसके द्वारा अपनाए जाने वाले मार्ग और दिशा से भी मेल खाती है। हिमालय में अपने उद्‌गम से गंगा दक्षिण-पूर्व दिशा में बहती है, लेकिन जब यह मध्य-गंगा क्षेत्र में पहुँचती है, तो पश्चिम से पूर्व की ओर बहने लगती है, और इसके निचले भाग में नदी पुनः दक्षिण-पूर्व की ओर मुड़ जाती है। इस क्षेत्र में हिमालय पर्वतमाला गंगा के लगभग समानांतर चलती है। परिणामस्वरूप, हिमालय से उतर कर कई महत्वपूर्ण नदियाँ गंगा में समाहित हो जाती हैं। गंगा का अधिकांश 'मध्य भाग' आधुनिक राज्य बिहार में स्थित है। यहाँ हिमालय से बहने वाली गोमती, घाघरा, गंडक और कोसी जैसी कई मुख्य नदियाँ उत्तर दिशा से गंगा में मिल जाती हैं, जबकि दक्कन के पठार से निकलने वाली बेतवा, चंबल, केन और सोन नदियाँ दक्षिण से गंगा में मिल जाती हैं। ये संगम गंगा को वर्षपर्यंत अच्छी मात्रा में जल प्रवाह बनाए रखने की क्षमता प्रदान करते हैं। यही कारण है कि इसके ऊपरी भाग के विपरीत, गंगा वर्षपर्यंत बहती रहती है। हालाँकि, हिमालय पर्वतमाला से निकटता बिहार में रहने वाले जन समुदायों के लिए भौगोलिक चुनौतियाँ भी उत्पन्न करती है।

हिमालय पर्वतों से तीव्र अवतरण के कारण, गंगा बेसिन में बहने वाली नदियों का सक्रिय बाढ़ के मैदानों में भारी तलछट स्थानांतरण होता है (देखे-चित्र)। मानसून की वर्षा (जून, जुलाई और अगस्त के दौरान) उच्च हिमालयी भागों में हिमनदों के पिघलने से उत्पन्न प्रवाह में और बढ़ोतरी कर देती है। अशुद्ध मिट्टी नदियों में बह जाती है और नदियों में जमा तलछट प्रायः मध्य-गंगा खंड के विस्तारित नदी तल में एक नया मार्ग बना देती है, जो सामान्यतः उबड़-खाबड़ होता है और यही एक नई भूमि का निर्माण होता है जिसे *दियारा* कहा जाता है।[1]

मानचित्र

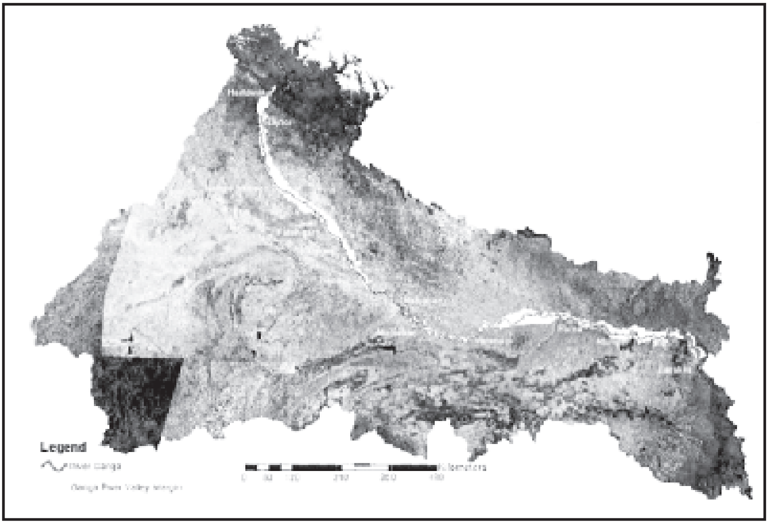

चित्र-गंगा नदी घाटी का भू-आकृतिक मानचित्र।

इस चित्र का रंगीन संस्करण www.routledge.com/9780367138004 से ई-संसाधन के रूप में डाउनलोड करने योग्य है।

दियारा फ़्लूवियल कॉमन के रूप में

दियारा, मुख्य रूप से नदी जैसे द्वीपों में एक भूभाग है। इसका निर्माण एक लंबी प्रक्रिया है और लंबे समय तक रेत और गाद के जमाव का परिणाम है। प्रारंभिक वर्षों में रेत से नई भूमि का निर्माण होता है, जो कृषि हेतु बिल्कुल भी उपयोगी नहीं है। परवर्ती वर्षों में, इसे उपजाऊ गाद द्वारा समतल किया जाता है। आठ से दस वर्षों के बाद नदी का ज्वार पहले की उर्वर भूमि से जमा रेत और गाद को पृथक करना प्रारंभ कर देता है। इस प्रकार, *दियारा* एक चक्रीय घटना है। इसकी अस्थाई प्रकृति के कारण ऐसी भूमि पर अस्थायी बस्तियों में नाविकों और मछुआरों का समुदाय रहता है (सिंह 2018)। वे मछली पकड़ने, संचार और सिंचाई की जरूरतों के लिए नदी पर पूर्णतया निर्भर हैं।

इस क्षेत्र के पूर्व शासक भी स्थानीय पारिस्थितिकी को भलीभांति समझते थे, इसलिए, इस भूमि पर कभी कोई कर नहीं लगाया। ज़मींदार हालांकि बाढ़ के

मैदानों के ऊपरी भाग के पारंपरिक धारक थे, फिर भी *दियारा* भूमि को स्थानीय नाविकों और मछुआरों के लिए छोड़ दिया गया था और जमींदार इससे दूर रहे थे। यहां की भूमि नवंबर से अप्रैल तक केवल छह माह खेती के लिए उपलब्ध रहती थी क्योंकि शेष महीनों के दौरान गंगा पूरी निचली भूमि को जलमग्न कर देती थी। इन महीनों के दौरान स्थानीय समुदायों द्वारा गेहूँ और कुछ दालें बोईं जाती थी, जो पूरे वर्ष हेतु उनके जीवनयापन के लिए पर्याप्त थीं। चूंकि भूमि का हाल ही में दोहन किया गया था, इसलिए नाविकों और मछुआरों का परिवार उपयुक्त भूमि की पहचान करेगा और खेती शुरू करेगा।

गंगा बेसिन के सम्पूर्ण विस्तारित क्षेत्र में, मुगल प्रारंभिक आधुनिक काल के दौरान एक शक्तिशाली साम्राज्य के रूप में उभरे। अपने साम्राज्य की आय में वृद्धि करने के लिए उन्होंने न केवल अधिक से अधिक बंजर भूमि को कृषि योग्य बल्कि कुछ वन क्षेत्रों को भी कृषि भूमि में परिवर्तित कर दिया। मध्य गंगा क्षेत्र में विस्तारित बिहार इस विकास का अपवाद नहीं था। हालांकि, इस क्षेत्र में नदियों के जटिल जाल ने इस तरह के रूपांतरण के लिए अधिक गुंजाइश नहीं छोड़ी। इस क्षेत्र की नदी की भू-आकृति ने मुगल सूबेदारों के लिए पहले से ही अपना नियंत्रण कठिन बना दिया था क्योंकि स्थानीय सरदारों ने प्रायः राजस्व संग्रह अभिलेख (सिंह 2018) की अवहेलना की थी। हालाँकि, कुछ जमींदारों को उनकी पारंपरिक कृषि भूमि के बाहर साम्राज्य हेतु राजस्व संग्रह के लिए भूमि देकर मुगल व्यवस्था में एकीकृत कर दिया गया था।

इतिहास को प्रभावित करने वाली नदी पारिस्थितिकी

अश्वसेना-केन्द्रित प्रारंभिक आधुनिक शासनों के लिए नदियाँ सदैव एक चुनौती उत्पन्न करती थीं, परन्तु ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के लिए नदियाँ एक वरदान थीं (सिंह 2018)[2]। गंगा और उसकी सहायक नदियाँ तुर्क और मुगल नियंत्रण को सीमित करती थीं, हालाँकि उन्होंने ऊपरी गंगा बेसिन में स्थित राज्यों पर अपनी पकड़ को कुशल प्रबंधन द्वारा सुदृढ़ बनाये रखा, लेकिन वे बिहार में स्थायित्व प्राप्त नहीं कर सके थे। बिहार प्रांत (सूबा) के नियंत्रण के लिए मुगलों को विशेष रूप से स्थानीय सरदारों के साथ सामंजस्य स्थापित करना पड़ा। नदी की पारिस्थितिकी का लाभ उठाते हुए बिहार के स्थानीय सरदार शाही अधिकारी की थोड़ी सी अनुपस्थिति को भी बिहार पर नियंत्रण करने के सुअवसर के रूप में देखते थे।

बिहार की प्रशासनिक अस्थिरता अनिवार्य रूप से इसकी स्थलाकृति के कारण थी। बिहार को आगरा-दिल्ली केन्द्रित धुरी से नियंत्रित करना चुनौतीपूर्ण

था। यह धुरी आगरा और दिल्ली के दो शहरों के भौगोलिक क्षेत्र को दर्शाती है। यमुना के तट पर स्थित होने के कारण दोनों शहरों में व्यापक रूप से समान पारिस्थितिक साम्यताएं हैं। दिल्ली दीर्घकाल तक तुर्क शासकों की राजधानी रही। जब मुगल केन्द्रीय सत्ता पर काबिज हुए, तो उन्होंने दिल्ली से लगभग 200 किमी. दूर आगरा में अपनी राजधानी स्थापित की। तदुपरांत, 17वीं सदी के प्रारंभ में मुगल सम्राट शाहजहाँ के अधीन राजधानी को पुनः दिल्ली स्थानांतरित कर दिया गया था।

बिहार के तटीय क्षेत्र में, मुगलों को कई स्थानीय विद्रोहों का सामना करना पड़ा। यद्यपि मुगल सम्राट अपनी विशाल घुड़सवार सेना के बल पर स्थानीय विद्रोहों का सामना करने में सक्षम थे, परन्तु उनकी ये विजयें केवल अस्थायी थीं। एक बार जब मुगल सेना पीछे हट गई, तो स्थानीय सरदार विभिन्न दिशाओं से नदियों को पार करते हुए फिर से सामने आकर मुगल अधिकारियों के आदेशों की अवहेलना करते और भू-राजस्व की अदायगी करने से भी मना करते थे। इस क्षेत्र में संघर्ष का प्रारंभिक आधुनिक इतिहास इंगित करता है कि इसकी नदी पारिस्थितिकी अद्वितीय थी अतः यहाँ नियंत्रण बनाये रखने हेतु स्थानीय व्यवस्था के साथ समन्वित सैन्य प्रणाली की आवश्यकता थी। बिहार की नदियों के नौ-परिवहन को संभालने वाले ही सफल हो सकते थे। कुछ हद तक, यह बिहार (और बंगाल भी) में परवर्ती मुगल शासकों से भू-राजस्व और व्यापारिक अधिकार प्राप्त करने के लिए डच और ईस्ट इंडिया कंपनियों की प्राथमिकता के कारणों में से एक हो सकता है। वास्तव में, बिहार मुगल क्षेत्र के पहले प्रांतों में से एक था, जहां राजस्व संग्रह के अधिकार अंग्रेजों को सौंपे गए थे।

विवेकपूर्ण परंपरा

मानसून की दृष्टि से बिहार आर्द्र पूर्वी तटीय क्षेत्र और पश्चिमी मैदानों की अपेक्षाकृत शुष्क महाद्वीपीय क्षेत्र के मध्य स्थित है (देखे-चित्र)। मानसून की वर्षा की परिवर्तनशीलता बहुत सामान्य है और कभी-कभी प्रांत के कुछ हिस्सों में सूखे की ओर ले जाती है। उसी वर्ष के दौरान, हालांकि हिमालय की पहाड़ियों में हिमनदों के पिघलने से बड़ी मात्रा में जल नदियों में प्रवाहित होता है, जब तक बाढ़ का जल खेती योग्य क्षेत्रों में प्रवेश करता है, तब तक चावल की खेती के लिए आदर्श गर्म मौसम पहले ही खत्म हो चुका होता है। कभी-कभी नदियों में जल का अतिप्रवाह विकराल रूप धारण कर लेता है, जिससे बाढ़ की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इससे अभिप्राय है कि इस क्षेत्र में बाढ़ का आना एक नियमित

घटना है, लेकिन आपदाओं के रूप में बाढ़ भी कुछ वर्षों में एक बार आती है। कभी-कभी दो आपदाएँ, यथा-सूखा और बाढ़-एक साथ आते हैं, एक ही वर्ष में, पहले सूखा और फिर बाढ़। परंपरागत रूप से, किसान बाढ़ को बाढ़ के रूप में मानने के बजाय, बाढ़ के उपयोग और कृषि उत्पादन के लिए उस पर निर्भरता में विश्वास करते थे। उन्होंने एक विशिष्ट फसल किस्म (पैटर्न) को विकसित किया, जो नदियों के जलमग्न होने की वार्षिक घटना के अनुरूप था। ऐसी चुनौतियों का सामना करने के लिए पारंपरिक सिंचाई विधियों का विकास किया गया। फ्लश सिंचाई सबसे आम तरीकों में से एक थी। जब नदियों में जल का स्तर खेतों की तुलना में अधिक था, तो किसानों को केवल जल के चैनल को काटना पड़ता था और पानी को आवश्यकतानुसार अपने खेतों में बहने देना होता था। हालाँकि, कई बार, नदियों में जल स्तर निचले स्तर पर था, और इसलिए, इसे विभिन्न पारंपरिक तरीकों से ऊपर उठाया जाता था। कुएँ, सिंचाई का सबसे लोकप्रिय साधन थे और ढेंकुला या लट्ठा नामक लीवर का उपयोग जल को ऊपर उठाने के लिए किया जाता था। पशुओं के माध्यम से भी गहरे कुओं से पानी खींचा जाता था। किसान वर्ग के मध्य अहार और पाइन बहुत आम थे। अहार जल निकासी की रेखा के पार तटबंधों से लगे प्राकृतिक जलाशय थे, जिनमें एक हिस्सा बाढ़ के दौरान जल निकासी के लिए अथवा जल को अपवाह क्षेत्र में प्रवेश कराने के लिए खुला छोड़ दिया जाता था। इसका उपयोग वर्षा जल के संरक्षण के लिए भी किया जाता रहा है। पाइन दो प्रकार की होती थी। छोटी पाइन आहर से निकलती है और जल को कृषि योग्य भूमि तक ले जाती हैं, जबकि बड़ी पाइन का उद्गम उन नदियों से होता है जहां से अस्थायी रूप से बनाए गए तटबंधों के माध्यम से पानी को आहर की ओर मोड़ा जाता है। दियारा भूमि में भी सिंचाई के यही तरीके अपनाए जाते थे।

पूर्व-औपनिवेशिक राज्यों ने कभी भी इस प्रकार की भूमि से कोई राजस्व वसूल करने की कोशिश नहीं की, क्योंकि वे इस क्षेत्र की प्रकृति को भलीभांति समझते थे। मध्यकालीन और प्रारंभिक आधुनिक ऐतिहासिक विवरण *दियारा* भूमि से किसी भी प्रकार की राजस्व वसूली पर मौन हैं। यही कारण है कि ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रशासकों के लिए, जो स्थानीय एजेंटों पर निर्भर थे, ऐसे अस्थायी रूप से प्रभावित क्षेत्रों को अपने राजस्व खाते में शामिल कर पाना मुश्किल था। इसलिए, प्रारंभ में उन्होंने ऐसी भूमि को राजस्व बंदोबस्त में सम्मिलित नहीं किया। परिणामतः 1793 ई. के बंगाल स्थायी बंदोबस्त की उद्घोषणा में *दियारा* का उल्लेख नहीं किया गया था। यहां तक कि 1780 ई. में जेम्स रेनेल द्वारा बंदोबस्त से ठीक पहले तैयार किए गए राजस्व मानचित्रों में ऐसी भूमि का उल्लेख नहीं था (सिंह 2018)।

ब्रिटिश कंपनी द्वारा स्थायी बंदोबस्त को स्थापित करने में पूर्णतया सक्षम होने के बाद ही *दियारा* भूमि को राजस्व मानचित्र में सम्मिलित करना प्रारंभ हुआ। 1801 ई. के बाद से इस पृथक भूमि का उल्लेख करना शुरू करने के बाद मानचित्र तैयार किए गए थे और 1860 ई. के दशक से प्रारंभ हुए मानचित्रों में प्रत्येक वर्ष नवगठित भूमि का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया जाने लगा था।

विघटन का प्रारंभ

डच, फ्रांसीसी और ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनियों ने 17वीं शताब्दी से बिहार में अपनी व्यावसायिक गतिविधियों के लिए गंगा का इस्तेमाल किया (मदन 2005)। ईस्ट इंडिया कंपनी इस क्षेत्र में अधिक सफल सिद्ध हुई और पूर्वी तट पर कलकत्ता के बंदरगाह पर बड़ी मात्रा में अनाज और नमक निर्यात करने के लिए नदी के प्रवाह का उपयोग किया, जहां से उन्हें यूरोप भेज दिया जाता था।[3] ब्रिटिश नौवहन क्षमता ने भी ईस्ट इंडिया कंपनी को इस नदी क्षेत्र पर मजबूत पकड़ बनाने में सहायता की। 1765 ई. की इलाहबाद संधि से कंपनी को मुगल शासकों से भू-राजस्व एकत्र करने का अधिकार (दीवानी) प्राप्त हुआ। कुछ वर्षों के उपरांत, 1793 ई. में कंपनी प्रशासन ने दूरदराज के गांवों से राजस्व संग्रह के लिए स्थायी बंदोबस्त की शुरुआत की और इसकी किर्यान्विती हेतु जमींदारों के साथ समझौते किए। जमींदारों को प्रशासन को कुछ राजस्व देने के लिए कहा गया था, और बदले में, उन्हें भूमि के वंशानुगत मालिकों के रूप में मान्यता दी गई थी।

जब ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने मुगल शासक से राजस्व संग्रह के अधिकार प्राप्त कर लिए, तो 1765 ई. के बाद अधिकृत बंगाल के पारंपरिक स्थानीय शासन और पारिस्थितिक शासन के विचारों को उलट दिया गया और उसके स्थान पर यूरोपीय धारणा पर आधारित नव-नियम सख्ती से लागू किये गए। 18वीं सदी के अंत तक, कंपनी इस क्षेत्र पर मजबूत पकड़ बनाने में सक्षम हो चुकी थी, तत्पश्चात उसने भू-राजस्व की दरों को बढ़ाने का फैसला किया। अंग्रेजों ने नए या पारंपरिक बड़े जमींदारों के साथ अनुबंध करना पसंद किया, जिनका स्थानीय आबादी पर बहुत प्रभाव था। उनकी भूमिका एक बिचौलिए की थी, जो भूमालिक से राजस्व वसूल करते थे। जमींदारों को यह अधिकार था कि वे अपनी इच्छानुसार राजस्व की कोई भी राशि भू-मालिकों से वसूल कर सकते थे, लेकिन राजस्व का केवल एक निश्चित हिस्सा ही सरकारी खजाने में जमा किया जाता था। अतएव, स्थायी बंदोबस्त स्थानीय जमींदारों के साथ राजस्व के

प्रत्यक्ष भुगतान की एक व्यवस्था थी। वे असीमित मात्रा में भू-राजस्व एकत्र करने की शक्ति का आनंद लेते हुए ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी को भू-राजस्व की एक निश्चित राशि का भुगतान करने के लिए जिम्मेदार थे। राजस्व निर्धारण की विधि मोटे तौर पर पूर्वप्रचलित मुगल राजस्व प्रणाली के समान थी। हालांकि, कानूनगो, चौधरी तथा तालुकदार जैसे नियुक्त अधिकारियों के परिणामस्वरूप स्थानीय स्तर पर मुगल प्रशासन सुदृढ़ था, और राजस्व प्रणाली में लचीलापन का एक स्तर सम्मिलित था।[4] जिसके अंतर्गत किसानों को कई रियायतें दी गईं। उदाहरणार्थ, मुगल प्रशासन द्वारा भू-राजस्व की राशी का निर्धारण करने से पूर्व बाढ़ या सूखे के कारण प्रभावित फसल की मौजूदा स्थिति को हमेशा ध्यान में रखा जाता था। सकल उत्पादन कम होने पर मुगल राज्य ने राजस्व के नुकसान को भी साझा किया। यद्यपि, मुगल और ब्रिटिश राजस्व प्रणालियों के बीच मुख्य अंतरों में से एक यह था कि किस तरह से भू-राजस्व की गणना की जाती थी। मुगलों के अधीन भू-राजस्व, फसल की किस्म एवं जितनी भूमि पर फसल उत्पादित की जाती थी, उसी के अनुरूप निर्धारित किया जाता था, इसलिए, खेती की जाने वाली फसल के अनुसार भिन्न-भिन्न होता था। इसके विपरीत, अंग्रेजों के अधीन भू-राजस्व भूमि पर कर था। इसलिए, आकलन का आधार ही अलग था। कंपनी का आकलन इस आधार पर नहीं था कि जमीन पर कौन सी फसल बोई गई है, बल्कि जमीन की गुणवत्ता पर आधारित है, चाहे फसल का प्रकार कुछ भी हो।

वास्तव में बिहार क्षेत्र पर प्रशासन करने के लिए जब ईस्ट इंडिया कंपनी इस क्षेत्र में आई तो इस क्षेत्र में अपनी लंबी उपस्थिति और नदी संचार पर कुशल निर्भरता के बावजूद नदी की पारिस्थितिकी और सिंचाई के पारंपरिक ज्ञान को पूरी तरह से समझ नहीं पाई। इसके विपरीत, बिहार में प्रारंभिक आधुनिक सूबेदार (गवर्नर) और स्थानीय सरदार काश्तकारों से ऊपरी भूमि से भू-राजस्व वसूलने और पारंपरिक सामान्य भूमि में हस्तक्षेप न करके स्वयं को बनाए रखने में सक्षम थे। 1770 ई. के अकाल ने औपनिवेशिक सरकार को भू-राजस्व आधार को व्यापक बनाने के बारे में सोचने के लिए प्रेरित किया। 19वीं सदी की प्रारंभ में, ईस्ट इंडिया कंपनी ने राजस्व गणना के अंतर्गत अधिक से अधिक संभावित कृषि भूमि को सम्मिलित करने की कोशिश की। हालांकि, दियारा भूमि की तरलता और अस्थायित्वता ने कंपनी प्रशासन के लिए निर्धारित राजस्व संग्रह को स्थायितता प्रदान करने में एक चुनौती उत्पन्न की।

स्थायी बंदोबस्त प्रणाली के अंतर्गत, जमींदार कंपनी द्वारा निर्धारित किए गए राजस्व का भुगतान करने के लिए बाध्य था, भले ही उसके अधीनस्थ किसी

विशेष क्षेत्र में उत्पादन बिलकुल न हुआ हो, या उत्पादन सूखे या बाढ़ के कारण उम्मीद से कम हुआ हो। इसका तत्काल प्रभाव जमीदारों की अधीनस्थ भूमि पर पड़ा। चूंकि ब्रिटिश सरकार को एक निश्चित राजस्व का भुगतान किया जाना था, जमींदारों ने किसानों पर बोझ डाल दिया और किसानों से अत्यधिक मांग करना शुरू कर दिया (बुकानन 1928)। शीघ्र ही, उन्होंने दियारा की कृषि योग्य भूमि पर नियंत्रण करना शुरू कर दिया ताकि राजस्व का बोझ कुछ कम किया जा सके। राजस्व वसूली के लिए दियारा भूमि का निर्धारण ब्रिटिश खातों में दर्ज नहीं किया गया था क्योंकि वे प्रायः दियारा भूमि को बंजर भूमि के रूप में वर्णित करते थे।

इस प्रकार, ऐसी भूमि से राजस्व भुगतान का कोई दायित्व नहीं था। शीघ्र ही कंपनी सरकार ने ऐसी भूमियों पर अधिपत्य करना शुरू कर दिया और उन्हें नीलाम कर दिया। इससे एक और, बहुत बड़ी समस्या पैदा हो गई। जमींदारों ने दियारा भूमि के इन विशाल भूखंडों को मामूली राशि के भुगतान पर खरीदना शुरू कर दिया (पहाड़ी 1997)। उन्हें बंजर भूमि होने के आधार पर वर्षों तक राजस्व-मुक्त रखा गया था, लेकिन वास्तव में, इन भूमियों को किसानों को पट्टे पर दिया गया था (हंटर 1877)। धीरे-धीरे, ईस्ट इंडिया कंपनी ने दियारा भूमि को राजस्व की हानि के रूप में देखना शुरू कर दिया। यह मान लिया गया कि इन भूमियों का कम उपयोग किया गया था और इस प्रकार नियमित राजस्व निर्धारण के अंतर्गत इन्हें सम्मिलित किए जाने की आवश्यकता थी।

ब्रिटिश सरकार ने दीयारा भूमि को स्थायी भू-राजस्व बंदोबस्त के अंतर्गत लाने के लिए एक अधिनियम पर कार्य करना प्रारंभ कर दिया और राजस्व के नुकसान की भरपाई करने की कोशिश की। परिणामतः 1825 में, 'बंगाल एलुवियन एंड डिलुवियन रेगुलेशंस (एडीआर)' नामक विनियमन XI को पारित कर दिया गया था। इसकी प्रस्तावना में उल्लेख किया गया कि चूंकि मिट्टी के स्थानांतरण के माध्यम से नदियों से प्राप्त भूमि विवाद का लगातार स्रोत है, और कानूनी तौर पर कोई निर्धारित नियम नहीं होने के कारण, न्यायालयों के लिए दावा करने वाले वादी पक्षों के अधिकारों का निर्धारण करना मुश्किल होता है, इसीलिए दियारा भूमि के लिए यह कानून पारित किया गया है। 'बंगाल एलुवियन एंड डिलुवियन रेगुलेशंस XI' में जलोढ़ भूमि को लेकर लोगों के बीच उत्पन्न होने वाले विवादों को हल करने के लिए तथा जलोढ़ भूमि के स्वामित्व का निर्धारण करने के लिए दिशा-निर्देश सम्मिलित थे और दियारा भूमि के स्वामित्व का निर्णय करने में अदालतों का मार्गदर्शन करने के लिए पारित किए

गए थे। नदी के बदलते मार्ग और नई उभरती हुई भूमि से संबंधित सबसे चौंकाने वाले प्रावधानों में से एक यह है कि जब भूमि नदी के कोनों से क्रमिक अभिवृद्धि द्वारा प्राप्त की जाती है, तो इसे उस व्यक्ति के कार्यकाल में वृद्धि के रूप में माना जाना चाहिए जिसकी भूमि पर या संपत्ति में इसे संलग्न किया गया है। लेकिन साथ ही, यह भी उल्लेख किया गया कि इस अभिवृद्धि को इसके प्राप्तकर्ता को ईस्ट इंडिया कंपनी को भुगतान से छूट देने के लिए नहीं समझा जाना चाहिए। सरकार का मुख्य उद्देश्य किसी प्रकार के स्वामित्व को समानता के तहत लाना भी था। विनियमन का एक महत्वपूर्ण प्रावधान यह था कि भूमि के एक खंड पर अधिकार केवल इसलिए प्रभावित नहीं होगा क्योंकि वह जल के नीचे चला जाता था। जलमग्न भूमि के मालिक को उसके डूबने की अवधि के दौरान उसी के रचनात्मक नियंत्रण में माना जाता है और इस प्रकार नदी से फिर से उभरने पर उसी भूमि पर वापस दावा करने की अनुमति दी जाती है। राजस्व लेखा अधिकारियों ने विभिन्न जिलों के उप कलेक्टरों को पत्र लिखकर नए क्षतिग्रस्त भूखंड को किराये पर उपलब्ध करने के निर्देश दिए।[5]

1825 ई. के 'बंगाल एलुवियन एंड डिलुवियन रेगुलेशंस' को आज भी भारत में न्यायालयों द्वारा दियारा भूमि में विवादों से संबंधित संपत्ति के मामलों में न्याय के रूप में संदर्भित किया जाता है। यद्यपि, उन वर्षों के दौरान और आज भी इस नियमन के साथ प्रमुख समस्याएं कब्जे वाली भूमि पर वास्तविक लाभ स्थापित कर रही हैं। विनियमन (रेगुलेशंस) दिशा-निर्देश सुझाव देते हैं कि अदालतों को उन सर्वोत्तम साक्ष्यों द्वारा निर्देशित किया जाएगा ताकि वे स्थापित स्थानीय प्रचलन को प्राप्त करने में सक्षम हो सके, और इसने विभिन्न व्याख्याओं और विवादों के लिए बहुत गुंजाइश छोड़ी। अधिनियम के लागू होने के बाद, कई मुकदमे अस्तित्व में आये। सरकार एक द्वीप जो नदी में फेंका गया है के कब्जे के लिए अपने अधिकार का दावा नहीं कर सकती क्योंकि कुछ वर्षों पहले इसका सर्वेक्षण किया गया था और पिछले सर्वेक्षण के समय से कम से कम दस साल की समाप्ति तक सर्वेक्षण नहीं किया जा सकता था। उस स्थिति में अदालत का यह भी मानना था कि सरकार के न्यायालय में आने के समय द्वीप की स्थिति वह मार्गदर्शक होनी चाहिए जिसके द्वारा सरकार के अधिकार का निर्धारण किया जाना चाहिए।[6]

ज़मींदारों ने प्रायः दियारा भूमि में बार-बार पानी भरने के बहाने किराए का भुगतान करने से मना कर दिया।[7] परिणामस्वरूप, सरकार ने 1859 ई. के 'बंगाल किराया अधिनियम' में विशेष प्रावधान लाने का निर्णय किया। इस

अधिनियम के द्वारा सरकार ने यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया कि किसान जलोढ़ द्वारा अपनी भूमि के क्षेत्रफल में वृद्धि के मामले में लगान में वृद्धि के लिए उत्तरदायी था। हालाँकि, ये सभी प्रावधान दिशा-निर्देशों के रूप में थे और सरकारी तंत्र को वास्तविक अर्थों में दियारा भूमि से लगान वसूल करने का अधिकार नहीं देते थे। ऐसा करने के लिए, 'जलोढ़ भूमि नियंत्रण विधेयक' 1868 ई. में परिषद में पारित किया गया था[8], इस विधेयक को 1847 के अधिनियम IX के प्रावधानों में संशोधन करने के लिए लाया गया था।

1847 ई. में लागू किया गया अधिनियम, जलोढ़ द्वारा नदियों से प्राप्त भूमि के आकलन के संबंध में था। मौजूदा प्रथा यह थी कि राजस्व प्राधिकरण निकटतम मालिक के दावे को उसकी खरीद या भूमि के बंदोबस्त के पूर्व अधिकार के लिए मान्यता देगा। लेकिन अब 1847 के अधिनियम में प्रस्तावित परिवर्तन यह था कि प्राप्त की गई सभी भूमि को एक वृद्धि के रूप में माना जाएगा और यह सरकार के प्रबन्ध क्षेत्र में होगी (फिलिप्स 1884)। एक दियारा के नए हिस्से को स्थानीय राजस्व अधिकारियों ने अपने नियंत्रण में ले लिया था, जब ऐसे द्वीप और तट के बीच का चैनल चलकर पार करने योग्य नहीं था। यहां तक कि जब इस तरह के चैनल चलकर पार करने योग्य हो गए तो कोई भी व्यक्ति इस भूमि पर कब्जा नहीं कर सका (फिलिप्स 1884)।

सरकार के विभिन्न नियमों और अधिनियमों ने उस उद्देश्य की पूर्ति की जिसके साथ उन्हें लागू किया गया था, लेकिन नाविकों और मछुआरों के स्थानीय समुदायों को आजीविका के मामले में वृहद् स्तर पर नुकसान हुआ। ये समुदाय प्रायः एक उजड़ी हुई भूमि से दूसरी भूमि पर चले जाते थे और अस्थायी बस्तियों में रहते थे तथा भूमि का उपयोग सर्दियों की फसल की खेती के लिए करते थे। 19वीं सदी में, यहां तक कि ऐसी अस्थायी भूमि को या तो जमींदारों या सरकार द्वारा किराए की संपत्ति के रूप में घोषित करके उनसे छीन लिया गया था। सरकारी नियमों के खिलाफ लिखित विरोध हुआ, लेकिन किसी ने भूमिहीन समुदायों की पैरवी नहीं की। परिषद के भारतीय सदस्य जैसे बाबू रामनाथ टैगोर केवल जमींदारों के अधिकारों को बढ़ावा दे रहे थे। अपने पत्र में, टैगोर ने लिखा कि वह प्रस्तावित विधेयक की धारा 4 के लिए सहमत नहीं थे और उनका मानना था कि प्रस्तावित परिवर्तन 1825 के विनियमन XI के खंड (क्लोज) 3, धारा 4 के सिद्धांत के विरुद्ध था। इस खंड के अनुसार, जब एक दीयारा भूमि को एक बड़ी नौगम्य नदी (जिसका तल किसी व्यक्ति की संपत्ति नहीं थी) में फेंका जा सकता है और नदी और तट का चैनल चलकर पार नहीं

हो सकता है, तो इसका अधिकार सरकार के पास रखा जाना चाहिए। लेकिन अगर इस तरह के एक द्वीप और तट के बीच का चैनल वर्ष के किसी भी मौसम में पैदल चलकर पार करने योग्य था, तो इसे उस व्यक्ति की भूमि या कार्यकाल के लिए एक अभिवृद्धि माना जाना चाहिए, जिसकी संपत्ति इससे सटी हुई हो सकती है। प्रस्तावित विधेयक का विरोध करने वाले लोगों का मानना था कि वर्तमान विधेयक की धारा 4 से उस प्रावधान का प्रभाव पूरी तरह से नष्ट हो जाएगा और इसके साथ सरकार की नियत जमींदारों को उस अधिकार से वंचित करने की है जो उन्होंने स्थायी बंदोबस्त के बाद प्राप्त किये थे।

1885 के बंगाल काश्तकारी अधिनियम का दियारा समुदाय पर गंभीर प्रभाव पड़ा। इस अधिनियम के पारित होने के बाद, किराए की वसूली की सुविधा के लिए जमींदारों, उनके किरायेदारों और अन्य स्वामित्व वाली भूमि का सर्वेक्षण और मूल्यांकन किया गया था। इस आकलन के कारण बढ़े हुए और अधिक नियमित किराए की मांग हुई। परिणामस्वरूप किसानों को कृषि उत्पादन बढ़ाने के उपाय करने पड़े और यह दो तरह से किया गया, प्रथम-दोहरी फसल शुरू की गई, और द्वितीय-फसल क्षेत्र को भी बढ़ाने का प्रयास किया गया। इसलिए दियारा भूमि के स्वामित्व का दावा करने और फिर इस भूमि पर आलू, अलसी तथा दाल जैसी फसलों की खेती करने का प्रयास किया गया (बिंदेश्वर 1997)। अधिनियम के इस प्रावधान के अंतर्गत, कोई भी व्यक्ति, जो लगातार 12 वर्षों तक भूमि का एक विशेष खंड अपने पास रखता है, चाहे वह पट्टे पर हो या अन्य किसी तरह से, रैयत की बसावट बन गया (रामपिनी और फिनुकेन 1889)। रैयत की बसावट की स्थिति खरीद या बिक्री द्वारा प्राप्त नहीं की जा सकती थी और इसलिए, अधिभोग रैयत से अलग थी। ''अधिभोग रैयत'' को अधिभोग के अधिकार के रूप में खरीदा जा सकता था और यह हस्तांतरणीय था।

अधिग्रहण के अधिकार की अनुमति दी गई थी, भले ही एक व्यक्ति ने एक ही गांव में बारह वर्ष के लिए, अधिनियम के पारित होने से पहले या बाद में किसी भी भूमि को रैयत के रूप में रखा हो, और वह भी या तो स्वयं या विरासत के माध्यम से। हालाँकि, यह नियम दियारा भूमि के किसानों पर लागू नहीं होता था। दियारा में बसे हुए रैयत के अधिकारों के अधिग्रहण के लिए, शर्त यह थी कि उस व्यक्ति के पास 12 वर्ष तक एक ही भूमि हो। जब तक व्यक्ति दी गई भूमि में रहने के अधिकार के लिए पात्र था, तब तक उसे अपने और जमींदार के बीच सहमत किराए का भुगतान करना पड़ता था (रामपिनी और

फिनुकेन 1889)। यद्यपि अधिनियम के खंड 180 (3) ने कलेक्टर को किसी भी दियारा भूमि को नियमित भूमि के रूप में या तो जमींदार या किरायेदार से आवेदन प्राप्त करने के बाद अथवा किसी विवाद को तय करने वाले दीवानी न्यायालय से एक संदर्भ पर घोषित करने की शक्ति दी, ऐसा शायद ही पहले कभी किया गया था।

दियारा भूमि के सन्दर्भ में, विशेष प्रावधान ने किसानों को अधिभोग का अधिकार प्राप्त करने से व्यावहारिक रूप से वंचित कर दिया क्योंकि जमींदार उन्हें लगातार बारह वर्षों तक एक ही भूमि पर कब्जा करने से रोकने के लिए उन्हें इधर-उधर स्थानांतरित करते रहते थे। इस प्रकार, इन बारह वर्षों के पूरा होने तक, किरायेदार न तो बसावट और न ही गैर-अधिभोग प्राप्त किसान बन सका था और इस तरह वह सदैव एक किरायेदार के रूप में ही बना रहा। बंगाल काश्तकारी अधिनियम में एक नई धारा, 86ए, को एक संशोधन द्वारा सम्मिलित किया गया था, जिसमें यह प्रावधान था कि किराएदार के जलोढ़ भूमि के अधिकार को समाप्त माना जाएगा यदि उसने निर्धारित किराए में किसी भी प्रकार की कमी की।

मध्य गंगा के मैदान की नदी पारिस्थितिकी में, इन नियमों के बावजूद, विशेष रूप से भूमि के कब्जे के विवादों पर निर्णय लेने के लिए कई प्रशासनिक कठिनाईयां थीं। दियारा भूमि की तरल प्रकृति ने ब्रिटिश सरकार को सभी व्यावहारिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए इस पर प्रभावी नियंत्रण करने की अनुमति नहीं दी। दियारा की अनिश्चितता ने भी इसे अव्यावहारिक प्रकृति की संपत्ति बना दिया (सिन्हा 2014)। सरकारी प्रशासकों के लिए मानदंड तय करना मुश्किल था जिसके द्वारा अगले दस वर्षों के लिए भूमि की अनुमानित उपज की सही गणना की जा सके। इसलिए, नीलामी आधारित बस्तियों को प्राथमिकता दी गई। नाविकों और मछुआरों के समुदाय जमींदारों के साथ प्रतिस्पर्धा नहीं कर सके क्योंकि वे हमेशा सबसे अधिक बोली लगाने वाले थे। ठेके का प्रथा (Revenue Farming) के ऐसे परिदृश्य में दियारा समुदाय अब नई उजड़ी हुई भूमि (avulsed land) को सामान्य संपत्ति के रूप में दावा नहीं कर सकता था।

प्रव्रजन

1825 ई. का 'बंगाल एलुवियन एंड डिलुवियन रेगुलेशंस' युक्तिसंगत लगता है, लेकिन पर्यावरण के संदर्भ में इसका व्यापक प्रभाव पड़ा। इसने नाविकों और मछुआरों के दियारा समुदाय के सामाजिक और आर्थिक जीवन में एक बड़ा परिवर्तन ला दिया। स्थायी बंदोबस्त के पश्चात् राजस्व प्रधान कृषि ने

उनके उत्पादन के लचीलेपन को नष्ट कर दिया और एक तरह से, उन्हें अब जमीन को पट्टे पर लेकर मैदानी किसानों के साथ प्रतिस्पर्धा करनी पड़ी। सामान्य संपत्ति के रूप में भूमि का अर्थ, जो समुदायों के पास सदियों से था, स्वामित्व के पूर्ण अधिकार में बदल गया। एडीआर विनियमन मध्य गंगा बाढ़ क्षेत्र की पारिस्थितिकी के लिए निर्णायक भी सिद्ध हुआ। इसने परिवर्तन का एक चक्र शुरू किया जिसमें उच्चतम राजस्व क्षमता वाली फसलें बोई गईं क्योंकि भूमि अब ज़मींदारों द्वारा दियारा किसानों के बीच उच्चतम बोली लगाने वालों को पट्टे पर दी जा रही थी।

परंपरागत रूप से, गरीब किसान हमेशा पलायन करते रहे हैं क्योंकि दियारा स्थलाकृति की अस्थायी प्रकृति ने कृषि में कभी स्थायित्व नहीं आने दिया। 1793 ई. में स्थायी बंदोबस्त और 1825 ई. में एडीआर की घोषणा के बाद, दियारा बंजर भूमि के रूप में अधिक भूमि शेष नहीं बची, यद्यपि उनकी अनुकूल रणनीति एक आजीविका रणनीति में परिवर्तित हो गई। पारंपरिक नाविक और मछुआरा समुदायों को कृषि करने के लिए भूमि नहीं होने के कारण अन्य विकल्पों की तलाश करनी पड़ी। 1885 ई. में राजस्व अधिकारियों द्वारा हंटर महोदय को भेजी गई विभिन्न रिपोर्टों में, किसानों को काम और जीविका के लिए कहीं और देखने के लिए मजबूर करने के संदर्भ मिलते हैं (रॉदरमुंड 1997)।

दियारा का मछुआरा समुदाय

दियारा में रहने वाले समुदायों के लिए, मछली पकड़ना एक अन्य मुख्य आजीविका थी। खेती के माध्यम से आजीविका के नुकसान ने मछुआरा समुदाय को पूरी तरह से मत्स्य पालन पर निर्भर रहने के लिए विवश कर दिया। लेकिन वह भी धीरे-धीरे सरकारी विनियमन के दायरे में आ गया और अंतर्देशीय मत्स्य पालन भी नष्ट होने लगा। 19वीं सदी की अंतिम तिमाही तक, कई ब्रिटिश रिपोर्टों ने सिफारिश की कि मत्स्य पालन राज्य के लिए राजस्व का एक मूल्यवान स्रोत सिद्ध हो सकता है। तत्पश्चात, ब्रिटिश सरकार ने अंतर्देशीय मत्स्य पालन अधिनियम पारित किया, जिसने स्पष्ट रूप से मत्स्य पालन को जमींदारों और राज्य के लिए स्थापित किया। दो दशकों के भीतर यह स्थिति सामने आई कि समुद्र के अतिरिक्त कोई भी करमुक्त मत्स्य पालन नहीं था जिसे जनता बिना लाइसेंस के उपयोग कर सकती थी। यह दोहराया जा सकता है कि हालांकि मछली पकड़ने के अधिकार जमींदारों और राज्यों के बीच विभाजित थे, परन्तु सभी मामलों में मछली पकड़ने के अधिकार पट्टे पर दिए गए थे।

इसका तात्पर्य यह था कि मछली पकड़ने के लिए नदी के जल को विघटित कर दिया गया था, और नदियों में सार्वजनिक रूप से मछली पकड़ने की अनुमति नहीं थी। नदियों और तालाबों में मुफ्त मछली पकड़ने की पूर्व-औपनिवेशिक परंपरा बदल गई। जमींदारों ने जल कर (अर्थात जल कर/उच्चतम बोली लगाने वाले को राजस्व) को इजारादारों को पट्टे पर देने की प्रथा शुरू की। अधिकांश मामलों में मछली पकड़ने का अधिकार भूमि के साथ स्थानांतरित कर दिया गया था। उन्होंने किराएदारों (मुस्तजिरों) को मछली पकड़ने का अधिकार दिया, जो कभी-कभी मजदूरी या एक हिस्सेदरी के रूप में मछली पकड़ने के लिए पुरुषों को नियुक्त करते थे। इसे कभी-कभी पारंपरिक मछुआरों को फिर से किराये पर दिया जाता था। जमींदार के अधिकार वाले क्षेत्रों से मछली पकड़ने वाले मछुआरे एक तिहाई मछली जमींदारों के एजेंटों को दे देते थे। पटना और शाहबाद में, गंगा के नालों के कुछ हिस्सों में, जिसमें शुष्क मौसम में अधिक प्रवाह नहीं होता था, मत्स्य पालन को मछुआरों को पट्टे पर दिया जाता था। इस तरह, औपनिवेशिक शासन ने सभी अधिकारों को फिर से परिभाषित किया और मछली के साथ-साथ जल और उसके संसाधनों के उपयोग पर नियंत्रण करने का पूर्ण प्रयास किया। उनके स्पष्ट इरादों के विपरीत विभिन्न कृत्यों के परिणामस्वरूप जल निकायों और मत्स्य पालन का अधिक से अधिक निजीकरण हुआ, इस प्रकार दियारा भूमि में रहने वाले मछुआरा समुदाय की आय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। यह दियारा में रहने वाले समुदायों की वास्तविक आय को आंकड़ों के अभाव के कारण एक सांख्यिकीय खाते के साथ सिद्ध नहीं किया जा सकता है, परन्तु 19वीं सदी (सिंह 2018) के अंतिम दशक में बढ़े हुए प्रव्रजन से पता चलता है कि मत्स्य पालन पर निर्भर रहने वाले समुदाय की आर्थिक स्थिति अवश्य प्रभावित हो सकती है।

निष्कर्ष

प्राकृतिक प्रक्रिया जिसके माध्यम से दियारा भूमि का निर्माण होता है- मिट्टी को काटना और संकुचित करना—उस पर निर्भर समुदायों के जीवन में अस्थिरता और अनिश्चितता बनी रहती है। दियारा भूमि के निर्माण और विघटन की इस सतत प्रक्रिया के कारण ऐतिहासिक रूप से पूर्व-औपनिवेशिक काल में यहां कोई स्थायी भूमि अधिग्रहण प्रणाली विकसित नहीं हो सकी। दियारा सदियों से एक साझा संसाधन के रूप में अस्तित्व में थी और किसी भी सरकारी और संस्थागत नियंत्रण से बाहर थी। यह एक संयुक्त रूप से उपयोग किया जाने वाला क्षेत्र था, परन्तु 19वीं सदी के दौरान नए अधिनियमों की एक शृंखला की

शुरुआत के साथ, इसने मध्यमता की अपनी मूल विशेषता खो दी और विसैन्यीकरण की प्रक्रिया शुरू हुई। बंगाल में 1770 ई. के भयावह अकाल के बाद, ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की औपनिवेशिक सरकार ने भूमि के मूल्यांकन और इस क्षेत्र में राजस्व के भारी नुकसान का दावा किया। इसलिए, 19वीं सदी के प्रारंभ तक राज्य ने भू-राजस्व आधार को विस्तृत स्वरूप प्रदान करने की योजना पर कार्य करना प्रारंभ कर दिया। औपनिवेशिक सरकार ने नई नष्ट हुई भूमि को स्थायी बंदोबस्त के अधीनस्थ लाने के लिए एडीआर भी पारित किया और इस तरह अपने राजस्व को और अधिक बढ़ाने का प्रयास किया, लेकिन नव निर्मित दियारा भूमि की अस्थायी प्रकृति और नदी-मार्गों में लगातार परिवर्तन ने एक पारिस्थितिक चुनौती के साथ-साथ बाढ़ के मैदानों के समान मूल्यांकन की समस्या प्रस्तुत की। सरकार के लिए सबसे आसान तरीका था दियारा भूमि को सर्वाधिक बोली लगाने वाले को पट्टे पर देना, जो प्रायः ज़मींदार थे, अतः दियारा भूमि पर निर्भर नाविकों और मछुआरा समुदाय ने अपनी आजीविका खो दी। सरकार विभिन्न अधिनियमों और कानूनों के माध्यम से प्रभावित क्षेत्रों का आर्थिक नियंत्रण अपने हाथों में लेने में सफल रही, परन्तु इसके परिणामस्वरूप दियारा समुदाय का वृहद् स्तर पर निकटवर्ती क्षेत्रों में प्रव्रजन हुआ।

यहां निवास करने वाले समुदायों की वैकल्पिक आजीविका अंतर्देशीय मत्स्य पालन थी जिसे भी सरकारी नियंत्रण में ले लिया गया था। समस्या निवारण के प्रेरक बल पारिस्थितिकीय नहीं थे, बल्कि राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक थे, इस तथ्य के बावजूद कि नदी के किनारे पारिस्थितिक रूप से अल्पकालिक क्षेत्र थे। अपने प्रव्रजन को रोकने के लिए दियारा समुदाय को अपने पर्यावरण के साथ पुनः जुड़ने की आवश्यकता है। हालाँकि, इस तरह का पुनर्मिलन तभी संभव हो सकेगा जब इस क्षेत्र में उनकी आजीविका यथावत बनी रहे।

दियारा भूमि जैसे सामान्य संसाधनों पर आरोपित अन्य सामान्य नियम स्थानीय समुदायों के साथ न्याय नहीं कर सकते हैं। नवपारित विभिन्न कानून और नई पट्टा नीतियां प्रायः दीर्घकाल से संस्थापित पारंपरिक अधिकारों की अवहेलना करती हैं। आज भी दियारा में संपत्ति के स्वामित्व और विवाद लगभग दो सदी पुराने एडीआर द्वारा शासित हैं और नाविकों और मछुआरों के पारंपरिक समुदाय और उनके अधिकारों को नकार दिया गया है। यह आवश्यक है कि नदी और इस प्रकार की अल्पकालिक भूमि को एक बार फिर साझा किया जाए तथा यहां रहने वाले समुदायों के परंपरागत आजीविका अधिकारों का सम्मान किया जाए।

टिप्पणियाँ

1. यह अनुमान लगाया गया है कि भारत में लगभग 40 मिलियन हेक्टेयर भूमि बाढ़ के मैदान के अंतर्गत आती है, और इसमें से 2.64 मिलियन हेक्टेयर दियारा भूमि है। गोपाल कुमार एट एल, लैंड यूज लैंड कवर चेंज इन एक्टिव फ्लड प्लेन यूजिंग सैटेलाइट रिमोट सेंसिंग, *जर्नल ऑफ एग्रीकल्चरल फिजिक्स*, वॉल्यूम 8, 2008, पृ. 22. रिमोट सेंसिंग की तकनीक के माध्यम से पूर्वी भारत में दियारा भूमि की ट्रैकिंग भी बी.सी. पांडा, आर.एन. साहू और मंजू शर्मा द्वारा की गई है-लैंड यूज मैपिंग ऑफ ब्रहमाणी-बिरुपादियारा इन कट्टक, उड़ीसा इन रिमोट सेंसिंग ऑफ नेचुरल रिसोर्सेज, देहरादूनः इंडियन सोसाइटी ऑफ रिमोट सेंसिंग (इसरो), 1996, पृ. 167-70
2. इसके विपरीत, विक्टर लिबरमैन का तर्क है कि इंडो-गंगा क्षेत्र की उजागर स्थिति के कारण तुर्की या खानाबदोश मंगोलों ने, घोड़ों पर चलते हुए, इन मैदानों पर आक्रमण करना आसान पाया। वह यूरेशिया के संरक्षित क्षेत्रों से इसे अलग करने के लिए उजागर क्षेत्र शब्द का उपयोग करता है। यूरेशिया, मध्य एशिया से बहुत दूर स्थित था जो खानाबदोशों को अपनी पहुँच से दूर रखता था। द्रष्टव्य-विक्टर लिबरमैन, स्ट्रेंज पैरेलल्सः साउथ-ईस्ट एशिया इन ग्लोबल कांटेक्स्ट, सी. 800-1830, खंड-2: मेनलैंड मीरर्सः यूरोप, जापान, चाइना, साउथ एशिया, एंड द आईलैंड्स, न्यूयॉर्कः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2009
3. जेम्स रेनेल ने गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों के मार्ग का अपना सर्वेक्षण प्रकाशित किया। रेनेल, एन अकाउंट ऑफ़ गंगेज
4. दो विपरीत विचारों के लिए, द्रष्टव्य-मान, ए परमानेंट सेटलमेंट, हबीब, *अग्ररियन सिस्टम ऑफ मुग़ल इंडिया; सिद्दीकी, अग्ररियन चेंज*। रोहन डिसूजा ने मुगल और राजस्व प्रशासन की औपनिवेशिक व्यवस्था पर साहित्य का सर्वेक्षण भी किया है। देखें–डिसूजा, *ड्रोउन्ड एंड डैम्ड*, पृ. 51-96.
5. *मिस्लैनियस लेटर्स मोंग्यर*, वॉल्यूम 4, 1831-37, *शाहबाद कॉरेस्पोंडेंस वॉल्यूम*, 1835-57, बिहार राज्य अभिलेखागार, पटना।
6. *प्रोसीडिंग्स ऑफ द काउंसिल ऑफ द लेफ्टिनेंट गवर्नर ऑफ़ बंगाल फॉर द पर्पज ऑफ मेकिंग लॉज एंड रेगुलेशंस*, (माइक्रोफिल्म) वॉल्यूम 1-47, 1868, पृ.136

7. *शाहबाद कॉरेस्पोंडेंस वॉल्यूम,* 1835-57, बिहार राज्य अभिलेखागार, पटना।

8. *अलुविअल लैंड पजेसन बिल, प्रोसीडिंग्स ऑफ द काउंसिल ऑफ द लेफ्टिनेंट गवर्नर ऑफ़ बंगाल फॉर द पर्पज ऑफ मेकिंग लॉज एंड रेगुलेशंस,* (माइक्रोफिल्म) वॉल्यूम 1-47, 1868, पृ. 131-34

सन्दर्भ

- *अलुविअल लैंड पजेसन बिल, प्रोसीडिंग्स ऑफ द काउंसिल ऑफ द लेफ्टिनेंट गवर्नर ऑफ़ बंगाल फॉर द पर्पज ऑफ मेकिंग लॉज एंड रेगुलेशंस,* (माइक्रोफिल्म) वॉल्यूम 1-47, 1868, पृ. 131-34
- बुकानन, एफ. (1928). *एन अकाउंट ऑफ द डिस्ट्रिक्ट ऑफ पूर्णिया* इन 1809-1810, पटना: बिहार एंड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी।
- चक्रवर्ती, डी. के. (2001). *आर्कियोलोजिकल जियोग्राफी ऑफ द गंगा प्लेन: द लोअर एंड द मिडिल गंगा,* दिल्ली: परमानेंट ब्लैक।
- डिसूजा, आर. (2016). *ड्रॉउन एंड डैम्ड: कोलोनियल कैपिटलिज्म एंड फ्लड कंट्रोल इन ईस्टर्न इंडिया,* दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- हबीब, आई. (2013). *एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुग़ल इंडिया* : 1556-1707, दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- हिल, सी.वी. (1997). *रिवर ऑफ़ सॉरो: एनवायरनमेंट एंड सोशल कंट्रोल इन रिपेरियन नॉर्थ इंडिया,* 1770-1994, एन आर्बर: मिशिगन यूनिवर्सिटी प्रेस।
- हंटर, डब्ल्यू. डब्ल्यू. (1877). *ए स्टैटिस्टिकल अकाउंट ऑफ़ बंगाल: डिस्ट्रिक्ट ऑफ मुंगेर एंड पूर्णिया,* वॉल्यूम 15, लंदन: ट्रबनर एंड कंपनी.
- कुमार, जी. एट. अल. (2008). लैंड यूज लैंड कवर चेंज इन एक्टिव फ्लड प्लेन यूजिंग सैटेलाइट रिमोट सेंसिंग, *जर्नल ऑफ एग्रीकल्चरल फिजिक्स,* वॉल्यूम 8, 2008, पृ. 22-28

विपुल सिंह*

प्रोफेसर

इतिहास विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

अनुवादक– **डॉ. राजेन्द्र कुमार****

बीकानेर

❑❑❑

अजमेर का राजस्थान में विलय : एक समग्र अध्ययन

• डॉ. विधि शर्मा

उत्तरी भारत के इतिहास में अनेक कारणों से अजमेर का सदियों से एक विशिष्ट स्थान रहा है। मुगल काल के पूर्व और पश्चात् दोनों काल खण्डों में इसका राजनैतिक एवं सामरिक महत्व बना रहने से तथा सूफी संत ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती की यहाँ दरगाह तथा निकट ही हिन्दुओं की हजारों वर्ष पुरानी पवित्र तीर्थ-स्थली पुष्कर के स्थित होने के कारण जनमानस में भी अजमेर एक सुविख्यात नाम रहा है। सम्राट् अकबर और उनके उत्तराधिकारियों ने इसे अपने साम्राज्य के एक सूबे का मुख्यालय बनाकर इसकी सामरिक महत्ता बनाए रखी। ब्रिटिश सम्राट् जेम्स प्रथम के राजदूत सर टॉमस रो ने सन् 1616 ई. में यहीं जहांगीर से मुलाकात कर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के लिए व्यापारिक सुविधाएं प्राप्त करने के लिए प्रयास किए। मुगल साम्राज्य के पतन के पश्चात् यह क्षेत्र मराठों के पास चला गया और बाद में सन् 1818 ई. में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ हुई विभिन्न संधियों के परिणामस्वरूप यह ब्रिटिश सरकार के अधीन हो गया, जिन्होंने इसे अपने प्रतिनिधि एजेन्ट टू द गवर्नर जनरल फॉर राजपूताना स्टेटस् का मुख्यालय बनाया जिसके माध्यम से अजमेर राजपूताना की रियासतों पर निगरानी रखने के लिए एक सजग प्रहरी के रूप में अपना कार्य करता रहा। यद्यपि बाद में ए.जी.जी. का मुख्यालय विशिष्ट कारणों से माउण्ट आबू कर दिया गया, अजमेर की महत्ता ज्यों की त्यों बनी रही। यह अजमेर-मेरवाड़ा का ब्रिटिश शासित छोटा सा प्रांत, जिसे कर्नल जेम्स टॉड ने इसकी भौगोलिक और सामरिक अवस्थिति के कारण 'राजपूताना की कुंजी' की संज्ञा दी थी, तब से लेकर भारत में ब्रिटिश शासन की सन् 1947 में समाप्ति तक, येन-केन-प्रकारेण यहां के रजवाड़ों को ब्रिटिश सर्वोच्चता का अहसास कराता रहा।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद रियायतों के एकीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई

और राजपूताना की देशी रियासतों को राजस्थान राज्य के रूप में एकीकृत कर दिया गया किन्तु भौगोलिक दृष्टि से राजस्थान के केन्द्र में स्थित अजमेर-मेरवाड़ा अपने पृथक अस्तित्व को सुरक्षित बनाए रखने में सफल रहा। हालांकि इस इकाई के पृथक अस्तित्व की व्यावहारिकता को लेकर सदैव संशय व्यक्त किया जाता रहा और स्वतंत्रता प्राप्ति से लेकर अजमेर के राजस्थान में विलय होने तक के लगभग 9 वर्षों के दौरान सदैव, स्वयं अजमेर-मेरवाड़ा क्षेत्र में तथा उसके बाहर अर्थात् राजस्थान व केन्द्र में यह भावना व्याप्त रही कि इस क्षेत्र को राजस्थान में मिलाया जाना चाहिए तथा इसे कभी न कभी राजस्थान में मिलाया ही जाएगा।

विलय के प्राथमिक प्रयास (1948–51 ई.)

मार्च 1948 में जब राजपूताना की विविध रियासतों के एकीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई तब सर्वत्र यह आम भावना व्याप्त थी कि विविध चरणों में भिन्न-भिन्न राजनीतिक इकाईयों या संघों के निर्माण के स्थान पर एक ही बार में एक राजनीतिक इकाई के रूप में राजस्थान राज्य का निर्माण कर दिया जाए, जिसमें अजमेर-मेरवाड़ा भी शामिल हो, जैसा कि 'राजस्थान रीजनल कौन्सिल ऑफ ऑल इण्डिया स्टेट्स् पीपुल्स कॉन्फ्रेन्स' की मार्च 1948 में नई दिल्ली में हुई बैठक में पारित निम्नलिखित प्रस्ताव से स्पष्ट है :

'राजपूताना रीजनल कौन्सिल ऑफ ऑल इण्डिया स्टेट्स् पीपुल्स कॉन्फ्रेन्स की कार्यसमिति ने राजपूताना राज्यों के समूहीकरण के विविध प्रस्तावों के प्रकाश में राजपूताना प्रान्त के गठन के प्रश्न पर गम्भीर विचार किया है। कार्यसमिति ने उन राजपूताना राज्यों के जन संगठनों से भी विचार-विमर्श किया है जिनका इस कौन्सिल में प्रतिनिधित्व नहीं है तथा अजमेर-मेरवाड़ा प्रान्तीय कांग्रेस समिति के प्रतिनिधियों की राय भी ली है। कार्य समिति तथा विविध राज्यों के प्रतिनिधियों का सुविचारित मत यह है कि सांस्कृतिक, भाषायी, ऐतिहासिक तथा भौगोलिक आधारों पर यह आवश्यक है कि उन सीमान्त राज्यों को छोड़कर जो कि अन्य प्रान्तों में मिलना चाहते हैं, राजपूताना के शेष राज्य तथा अजमेर-मेरवाड़ा को अविलम्ब एक इकाई बना दिया जाए।'[1]

अजमेर से प्रकाशित होने वाले हिन्दी भाषा के स्थानीय समाचार पत्र 'दरबार' ने अपने 7 अप्रेल 1948 के अंक में राजस्थान में राज्य की विविध इकाइयों के गठन सम्बन्धी विविध सिद्वान्तों पर टिप्पणी करते हुए लिखा कि 'अब तक यह स्पष्ट नहीं हुआ है कि अजमेर-मेरवाड़ा का विलय कहाँ होगा। अपनी राय प्रकट करते हुए समाचार पत्र ने कहा कि क्षेत्र की एकता व प्रगति को

ध्यान में रखते हुए यही उचित होगा कि राजपूताना के सभी राज्य तथा अजमेर-मेरवाड़ा को संयुक्त राज्य के रूप में गठित किया जाए। ...एक पृथक इकाई के रूप में अजमेर-मेरवाड़ा अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकता।'[2] अजमेर-मेरवाड़ा पॉलिटिकल कॉन्फ्रेन्स ने 29 जून 1948 को सम्पन्न अपने ब्यावर सत्र में प्रस्ताव पारित किया कि 'अजमेर-मेरवाड़ा सहित सम्पूर्ण राजपूताना को एक प्रशासनिक इकाई बनाया जाए और इस बीच अजमेर-मेरवाड़ा एक लोकतांत्रिक तथा प्रतिनिधि संस्था द्वारा शासित हो।'[3]

न केवल जन संगठन एवम् स्थानीय समाचार पत्र वरन् गृह मंत्रालय व स्टेट्स् मंत्रालय के अधिकारी तथा सम्बन्धित दोनों पक्ष, राजस्थान सरकार एवम् अजमेर-मेरवाड़ा का नेतृत्व; जो मूलतः कांग्रेस से सम्बन्धित था, भी विलय के प्रश्न को लेकर सक्रिय थे। अजमेर-मेरवाड़ा के राजस्थान में विलय के पक्ष में व्याप्त आम भावना की पृष्ठभूमि में 4 अगस्त 1948 को भारत सरकार के गृह मंत्रालय के सचिव एच.वी.आर. आयंगर ने विलय के प्रश्न पर अजमेर के स्थानीय सरकारी व गैर-सरकारी लोगों से विचार-विमर्श करने तथा प्रान्त के प्रमुख जनसंगठनों के प्रतिनिधियों के माध्यम से जनभावना का पता लगाने के लिए अजमेर की यात्रा की।[4]

इस यात्रा सम्बन्धी आयंगर की रिपोर्ट, विलय के प्रश्न को लेकर उस समय अजमेर-मेरवाड़ा में प्रचलित भिन्न-भिन्न मतों, इस मुद्दे पर प्रान्तीय कांग्रेस तथा अन्य जनसंगठनों की राय, राजस्थान का पक्ष, भ्रामक प्रचार तथा गृह मंत्रालय के सम्बन्धित अधिकारियों तथा गृहमंत्री के मत की साक्षी है। उसके प्रमुख अंशों को यहाँ उद्धृत करना समीचीन होगा।[5]

1. पहले आयंगर को सूचना मिली थीं कि प्रान्तीय कांग्रेस व हिन्दू महासभा दोनों विलय के दृढ़ समर्थक थे किन्तु अजमेर-मेरवाड़ा के चीफ कमिश्नर की नवीनतम रिपोर्ट में उल्लेख था कि उनके मत में कुछ परिवर्तन हुआ है और स्थानीय लोग राजस्थान की तत्कालीन राजनीतिक व प्रशासनिक अवस्था में उसके साथ विलय के निर्णय की बुद्धिमत्ता पर संदेह करने लगे हैं।
2. चीफ कमिश्नर द्वारा गांधी हॉल में एक सभा का आयोजन किया गया जिसमें आयंगर को 70 प्रमुख स्थानीय लोगों से मिलवाया गया। किन्तु कांग्रेस को यह शिकायत थी कि विलय समर्थक लोगों को पर्याप्त संख्या में आमंत्रित नहीं किया गया।
3. आयंगर की यात्रा ने अजमेर-मेरवाड़ा प्रान्त में काफी उत्तेजना फैला दी।

विशेष रूप से कांग्रेस ने विलय समर्थक आन्दोलन को भड़काया और इस मामले में किसानों, इस्तेमरारदारों तथा श्रमिकों को दबाव समूहों के रूप में प्रयुक्त किया। साथ ही कांग्रेस द्वारा अपने सदस्यों के लिए निर्देश जारी किया गया कि वे विलय के विपक्ष में न बोले। तद्रूप कुछ कांग्रेसी नेता जो विलय के पक्ष में नहीं थे, वे सभा के दौरान शान्त रहे और ऐसा दर्शाने का प्रयास किया गया कि कांग्रेस में इस प्रश्न को लेकर पूर्ण एकता है।

4. कांग्रेस ने जनमानस में यह धारणा बनायी हुई थी कि अजमेर-मेरवाड़ा के राजस्थान में विलय का निर्णय सरदार पटेल द्वारा लिया जा चुका था और आयंगर वहाँ उसकी औपचारिक घोषणा करने आए थे। इस प्रकार के भ्रामक प्रचार के लिए राजस्थान के मुख्यमंत्री हीरालाल शास्त्री भी उत्तरदायी थे, आयंगर द्वारा यह रिपोर्ट देने के एक दिन पूर्व 19 अगस्त 1948 को ही 'द इण्डियन क्रॉनिकल' समाचार पत्र में शास्त्री का एक वक्तव्य छपा था कि 'भारत सरकार द्वारा शीघ्र ही राजस्थान में अजमेर के विलय के निर्णय की घोषणा की जाएगी।' इस प्रकार के वातावरण में आयंगर ने यह स्पष्ट कर देना उचित समझा कि उस समय तक भारत सरकार द्वारा इस प्रश्न पर कोई निर्णय नहीं लिया गया था।

5. कांग्रेस, समाजवादी, किसान तथा इस्तेमरारदार विलय के पक्ष में बोले। अन्य समूहों का मत विभाजित रहा। एक प्रमुख स्थानीय उद्योगपति विलय के विपक्ष में बोले तो एक अन्य उद्योगपति इसके पक्ष में। वकीलों की बार के कुछ सदस्य पक्ष में बोले और कुछ विपक्ष में। एक इसाई महिला विपक्ष में बोली किन्तु इण्डियन क्रिश्चियन एसोसिएशन के अध्यक्ष पक्ष में बोले। विलय के पक्ष में बोलने वाले लोग बहुसंख्या में थे।

6. विलय के पक्ष में बोलने वाले लोगों का मुख्य तर्क था कि राजस्थान के मध्य एक द्वीप की भाँति अजमेर लम्बे समय तक पृथक नहीं रह सकता। विलय की आवश्यकता के बारे में उन्होंने कहा कि 'वर्तमान समय विलय के लिए एक सुअवसर है क्योंकि अभी विलय से अजमेर के लोग एकीकृत राजस्थान की भावी विधानसभा के चुनावों के लिए अपने प्रतिनिधियों के बारे में राजस्थान के दलों के साथ संतोषजनक व्यवस्था कर पाएगें।' उनका मानना था कि यदि मामले को टाला गया तो उनकी मांगे संतोषजनक रूप से पूर्ण नहीं हो पाएगी। इसके विपरीत विलय

विरोधी लोगों का मत था कि अजमेर-मेरवाड़ा में कई वर्षों से ब्रिटिश-भारतीय पद्धति पर आधारित प्रशासनिक व्यवस्था रही है ऐतिहासिक रूप से यह सदैव पृथक प्रान्त रहा है राजस्थान का प्रशासन फिलहाल प्राथमिक स्तर पर है जब तक राजस्थान का प्रशासन संतोषजनक स्थिति में नहीं पहुँच जाता तब तक विलय जनहित के विरुद्ध होगा।

7. आयंगर के अनुसार 'इस बात में संदेह नहीं था कि राजस्थान का प्रशासन अत्यन्त प्राथमिक स्तर पर था। उन्होंने जयपुर मुख्यालय में नियुक्त भारत सरकार के अधिकारियों से भी बात की थी। स्वयं हीरालाल शास्त्री ने आयंगर के समक्ष स्वीकार किया था कि राज्य के अधिकांश भागों में एक सुस्थापित प्रशासन का अभाव था। अजमेर के पुलिस सुप्रिन्टेंडेन्ट ने आयंगर को बताया कि गत् कुछ महिनों से उसके क्षेत्राधिकार में मात्र एक डकैती हुई किन्तु किशनगढ़ के आस-पास तथा राजस्थान के अन्य भागों में लगभग 50 डकैतियाँ हो चुकी हैं। जब आयंगर ने जयपुर में सम्बन्धित अधिकारी से इस संदर्भ में बातचीत की तो उसने जवाब दिया कि उसके पास कोई सूचना नहीं है और न ही सूचना प्राप्त करने के कोई साधन उपलब्ध हैं। ऐसी परिस्थिति में अजमेर के लोगों की दृष्टि से इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि विलय का अर्थ है उस प्रशासन के तहत आना जो अजमेर की तुलना में निम्न स्तर का था।

इस यात्रा के बाद आयंगर ने स्टेटस् मंत्रालय के सलाहकार से इस संदर्भ में विचार-विमर्श किया और दोनों ने यह निष्कर्ष निकाला कि 'अजमेर के राजस्थान में विलय का प्रश्न अभी अपरिपक्व है और इस मामले पर तब तक कोई निर्णय नहीं लिया जाना चाहिए जब तक कि राजस्थान का प्रशासन संतोषजनक स्थिति में नहीं पहुँच जाता।' आयंगर ने गृह मंत्रालय में भी बात की, गृह मंत्री सरदार पटेल भी उनकी राय से सहमत थे। अतः उन्होंने पटेल को सुझाव दिया कि वे संसदीय वाद-विवाद के माध्यम से शीघ्रातिशीघ्र राजस्थान व अजमेर की जनता को अपने निर्णय से सूचित कर दें।'[6]

विलय का स्थगन और अजमेर पार्ट 'सी' स्टेट बनना—इस प्रकार विलय के पक्ष में प्रबल जनभावना के बावजूद केन्द्र सरकार द्वारा इस प्रश्न पर लिए जाने वाले निर्णय को स्थगित कर दिया गया। इस स्थगन के बाद विलय के प्रश्न पर प्रान्तीय कांग्रेस के मत में परिवर्तन आया। अब तक जो कांग्रेस विलय की प्रबल समर्थक थीं उसने अब राजस्थान में व्याप्त प्रशासनिक अव्यवस्था के नाम पर विलय का विरोध प्रारम्भ कर दिया। वर्ष 1951 में

'पार्ट 'सी' स्टेट विधेयक' के आ जाने पर जब अजमेर को पार्ट 'सी' स्टेट बना दिया गया तो अजमेर क्षेत्र को राजस्थान से अलग रहते हुए भी उत्तरदायी लोकतांत्रिक सरकार मिलने की संभावनाएँ प्रबल हो गईं अतः अजमेर प्रान्तीय कांग्रेस स्पष्ट रूप से विलय विरोधी खेंमे में आ खड़ी हुई। पार्ट 'सी' स्टेट के संवैधानिक व प्रशासनिक ढाँचे में राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं की आसानी से पूर्ति का सुनिश्चित हो जाना भी प्रान्तीय कांग्रेस के मत परिवर्तन का कारण रहा होगा। समकालीन समाचार पत्रों से भी ऐसा ही संकेत मिलता है। दिनांक 28 मार्च 1951 के 'वीर राजस्थान' के अंक के अनुसार 'समझ में नहीं आता कि प्रान्तीय कांग्रेस राजस्थान में अजमेर के विलय का विरोध क्यों कर रही हैं जबकि अजमेर की जनता विलय के पक्ष में है तथा भारत सरकार भी देर सवेर राजस्थान में अजमेर के विलय की अपनी इच्छा की घोषणा कर चुकी है।'[7]

दिनांक 2 अप्रेल 1951 के अंक में 'राष्ट्रवाणी' ने लिखा कि प्रान्तीय कांग्रेस समिति के अध्यक्ष बी.के. कौल ने दिल्ली में एक पत्रकार के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा 'भारत सरकार की राजस्थान में अजमेर के विलय की घोषणा, वर्तमान परिस्थितियों में अजमेर के लिए मृत्यु की घोषणा के समान है।'[8] दैनिक नवज्योति ने अपने 6 मई 1951 के अंक में कांग्रेस के प्रान्तीय नेताओं पर स्वार्थी होने का आरोप लगाते हुए यहाँ तक लिख दिया कि 'राजस्थान में मंत्रालय का गठन हो चुका है और यदि अजमेर को बिना विलम्ब किए राजस्थान में विलीन कर दिया जाए तो सभी समस्याएँ सुलझ जाएगी। शर्म की बात है कि हमारे कुछ नेता निजी स्वार्थ तथा मंत्री पद की चाह के कारण अजमेर को राजस्थान से अलग रखने का प्रयास कर रहे है।'[9]

प्रान्तीय कांग्रेस के विलय के विरुद्ध हो जाने के बावजूद प्रान्त के अन्य जनसंगठन अब भी इस प्रश्न पर विचार-विमर्श कर रहे थे व अपनी स्वतंत्र राय प्रकट कर रहे थे, अर्थात् विलय के प्रश्न को लेकर आमजन में सहमति न थी। उदाहरणार्थ 13 जून 1951 को ब्यावर म्युनिसिपैलिटी ने तत्काल अजमेर को राजस्थान में मिलाने का प्रस्ताव रखा। ब्यावर की व्यापारिक संस्थाओं ने एक प्रस्ताव द्वारा यह मांग की कि अजमेर को शीघ्र राजस्थान में मिलना चाहिए, क्योंकि इसके बिना ब्यावर, जो राजपूताने में ऊन व कपड़े की सबसे बड़ी मंडी है, को बहुत नुकसान हो रहा है व रूई प्राप्त करने तथा ऊन लाने ले जाने में बड़ी समस्या उठानी पड़ती है। चारों तरफ से राजस्थान से घिरे होने के कारण माल लाने व ले जाने के लिए चुंगी देनी पड़ती है।[10]

10 जुलाई 1951 को हरबिलास शारदा के सभापतित्व में ब्यावर के गांधी भवन में 'अजमेर राजस्थान विलीनीकरण सर्वदल सम्मेलन' का आयोजन हुआ, जिसमें ब्यावर के प्रमुख व्यापारी, अजमेर के प्रायः सभी पत्रकार, कुछ वकील, आसपास के ठाकुर, ग्रामीण कृषक आदि शामिल हुए। रामनारायण चौधरी, चांदकरण शारदा आदि विलय के पक्ष में बोले किन्तु किशन लाल लामरौर व प्रो. दत्तात्रे बोबले ने इसके विपक्ष में विचार प्रकट किए।[11] 15 जुलाई 1951 को 30 प्रान्तीय तथा स्थानीय संस्थाओं यथा किसान सभा, जिला बोर्ड, म्युनिसिपल कमेटी, समाजवादी पार्टी आदि के प्रतिनिधियों ने ब्रह्मदत्त भार्गव की अध्यक्षता में सभा की उनमें से कुछ वक्ताओं ने अजमेर के राजस्थान में विलय के पक्ष में अपने विचार प्रकट किए तो कुछ विलय से होने वाली हानियों पर बोले।[12]

इसी बीच 16 सितम्बर 1951 को भारतीय संसद द्वारा 'पार्ट 'सी' स्टेट्स् एक्ट' पारित कर दिया गया जिसके तहत अजमेर-मेरवाड़ा क्षेत्र पार्ट 'सी' राज्य बन गया और यहाँ निर्वाचित विधानसभा का गठन हुआ, यद्यपि संविधान सभा की समिति में अजमेर के प्रतिनिधियों ने यह विचार व्यक्त किया था कि 'क्षेत्र के आकार का छोटा होना, भौगोलिक अवस्थिति, संसाधनों की कमी जैसी विशेष समस्याएँ, कई जटिल प्रकृति की प्रशासनिक कठिनाईयों के साथ मिलकर इन क्षेत्रों को समीपस्थ क्षेत्रों में मिलाने की आवश्यकता उत्पन्न कर देंगी।'[13]

पार्ट 'सी' स्टेट विधेयक के पारित होने पर राजस्थान के तत्कालीन मुख्यमंत्री जयनारायण व्यास ने इस विषय पर अपनी चिन्ता प्रकट की। अजमेर क्षेत्र के बारे में व्यास की भावनाओं को यहाँ उद्धृत करना उचित होगा, जो उन्होंने भारत सरकार के राज्य मंत्री गोपालास्वामी आयंगर को दिनांक 17 सितम्बर 1951 को लिखे अपने पत्र में व्यक्त की थीं।

'............इसी प्रकार प्रबल भावना थी कि बदली हुई परिस्थितियों में राजस्थान का अभिन्न अंग होने के अतिरिक्त अजमेर राज्य का कोई भविष्य नहीं। सामान्य रूप से मैं इस प्रश्न को अभी नहीं उठाता और प्रशासनिक और भौगोलिक बाध्यताओं के चलते स्वाभाविक रूप से ही अजमेर का राजस्थान में विलय होने देता। किन्तु संसद में 'पार्ट 'सी' स्टेट' विधेयक के पारित होने से इस समस्या ने आपात रूप ग्रहण कर लिया है। भाषायी, सांस्कृतिक, जातीय तथा भौगोलिक रूप से एक-दूसरे के भीतर स्थित तथा चारों ओर से दूसरे राज्यों से घिरे हुए किन्तु पूर्णतः पृथक एवम् स्वायत्त प्रशासनिक इकाई के अस्तित्व का औचित्य सिद्ध करना कठिन है। वित्तीय रूप से यह राज्य अपने

सीमित संसाधनों के साथ, जैसा कि आप भी सहमत होंगे संसदीय सरकार के व्यापक तथा खर्चीले उपकरणों को बनाए रखने में असमर्थ है। किन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि लोकतांत्रिक व उत्तरदायी प्रशासनिक मशीनरी के परिलाभ अजमेर क्षेत्र के निवासियों को भी अवश्य मिलने चाहिए। राजस्थान की ही भाँति अजमेर में भी जनमत विलय के पक्ष में है। इस मामले पर हाल ही में मैंने ओर मेरे सहयोगियों ने केबिनेट में विचार किया है और हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि इस बारे में हमारी भावनाएं भारत सरकार तक पहुंचायी जाएं। मैं यहां राजस्थान की मंत्रिपरिषद् द्वारा पारित प्रस्ताव की प्रति साथ भेज रहा हूँ।'[14] अन्त में व्यास ने आशा व्यक्त की कि सिरोही और अजमेर दोनों मामलों में राजस्थान सरकार के मत को आयंगर तथा भारत सरकार का पूर्ण समर्थन प्राप्त होगा।

व्यास के इस पत्र का जवाब देते हुए भारत सरकार के स्टेटस् मंत्रालय के सचिव वी.शंकर ने कहा कि 'संसद में हुए वाद-विवाद में माननीय राज्यमंत्री ने अजमेर के मामले में स्पष्ट किया कि विधानसभा तथा मंत्रिपरिषद की स्थापना का यह अर्थ नहीं कि हमने अजमेर, भोपाल, कुर्ग जैसे छोटे राज्यों को पड़ौसी राज्यों में विलीन करने की संभावना को नकार दिया गया है और यह कि विलय के प्रश्न पर गंभीरता से विचार किया जाएगा।'[15]

जयनारायण व्यास को वी.शंकर द्वारा भेजे गए उपर्युक्त जवाब से स्पष्ट है कि राजस्थान में अजमेर के विलय का विचार पूर्णतः त्यागा नहीं गया वरन् उसे स्थगित कर दिया गया। उल्लेखनीय है कि वर्ष 1948 से 1950 के मध्य जब राजपूताना की रियासतों का एकीकरण हो रहा था तब जनता व नेताओं के मध्य व्याप्त आम धारणा थी कि अजमेर क्षेत्र को राजस्थान में मिलाया जाना चाहिए तथा वह अनिवार्यतः राजस्थान में मिलाया ही जाएगा, उसके बावजूद वे क्या घटक थे जिनके कारण उस समय विलय नहीं हो पाया? यदि राजनीतिक स्थिति का विश्लेषण करें तो निम्नलिखित चार प्रमुख घटक इसके लिए उत्तरदायी प्रतीत होते हैं—

1. रियासती राज्यों के विलय व एकीकरण की प्रक्रिया में नेताओं की अतिव्यस्तता, जो उभरते हुए नवीन राजनीतिक परिदृश्य में अपना स्थान सुनिश्चित कर लेना चाहते थे।
2. राजस्थान में कांग्रेस के मध्य अन्तःसंघर्ष था। इसके अलावा जयनारायण व्यास तथा सरदार पटेल के मध्य अच्छे सम्बन्ध नहीं थे जबकि अजमेर-मेरवाड़ा के नेताओं के केन्द्रीय नेताओं से अच्छे सम्बन्ध थे तथा प्रान्तीय

कांग्रेस का नेतृत्व सशक्त था। हरिभाऊ उपाध्याय के शब्दों को पर्याप्त महत्व दिया जाता था और जब तक वे सहमत न होते तब तक विलय करना कठिन था।

3. राजस्थान में राजनीतिक अस्थिरता का वातावरण था, जल्दी-जल्दी तथा बार-बार मंत्रिपरिषदों में परिवर्तन हो रहा था। अतः मंत्रिपरिषदों की अस्थिरता के कारण कोई सशक्त कदम नहीं उठाया जा सका। 7 अप्रेल 1949 को भारत सरकार के मिनिस्ट्री ऑफ स्टेट्स के परामर्श पर संयुक्त राज्य राजस्थान के लिए पं. हीरालाल शास्त्री के नेतृत्व में मंत्रिपरिषद का गठन हुआ किन्तु मंत्रिपरिषद व कांग्रेस पार्टी के मध्य मतभेद के कारण 11 जून 1949 को राजस्थान प्रान्तीय कांग्रेस समिति द्वारा मंत्रिपरिषद के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित कर दिया गया तथापि 5 जनवरी 1951 तक यही मंत्रिपरिषद कार्य करती रही। तत्पश्चात् सी.एस. वैंकटाचारी, आई.सी.एस. ने मुख्यमंत्री का पद संभाला। 26 अप्रेल 1951 तक यह व्यवस्था चलती रही। फिर जयनारायण व्यास ने राजस्थान के मुख्यमंत्री का पद ग्रहण किया। सन् 1952 में हुए आम चुनावों तक व्यास मुख्यमंत्री रहे। चुनावों के बाद 3 मार्च 1952 को टीकाराम पालीवाल मुख्यमंत्री बने। इस प्रकार लगभग 34 माह में तीन मंत्रिपरिषदों का गठन हुआ जिनमें से प्रत्येक ने औसत 11 माह काम किया। इतनी अस्थिरता के बीच वे अजमेर-मेरवाड़ा के प्रश्न पर कोई सशक्त कदम नहीं उठा पाए।

4. अजमेर-मेरवाड़ा की भौगोलिक अवस्थिति ने केन्द्र तथा राजस्थान के नेताओं को निश्चिन्त कर रखा था क्योंकि उन्हें पूर्ण विश्वास था कि अल्प संसाधनों वाला यह छोटा सा क्षेत्र, जो कि ठीक राजस्थान के केन्द्र में स्थित है तथा चारों ओर से राजस्थान से घिरा हुआ है, लम्बे समय तक राजस्थान से अलग नहीं रहेगा तथा अन्ततः राजस्थान में मिला लिया जाएगा। अन्ततः उन्होंने विलय के लिए जल्दबाजी करने व दबाव बनाने की अपेक्षा प्रतीक्षा करना उचित समझा।

विलय के लिए पुनः प्रयास (1952–56 ई.)

सन् 1952 के आम चुनावों के बाद अजमेर में हरिभाऊ उपाध्याय के मुख्यमंत्रीत्व में जननिर्वाचित उत्तरदायी सरकार का गठन हुआ। देश के प्रधानमंत्री पं. नेहरू ने वर्ष 1953 में संसद में घोषणा की कि भारत संघ के राज्यों के पुनर्गठन के प्रश्न का परीक्षण करने के लिए एक आयोग गठित किया जाएगा

ताकि राष्ट्र तथा इकाइयों की जनता के कल्याण को सुनिश्चित किया जा सके। फलतः 29 दिसम्बर 1953 को गृह मंत्रालय द्वारा राज्य पुनर्गठन आयोग की नियुक्ति की गई जिसे 30 जून 1955 तक अपनी सिफारिशें भारत सरकार को प्रेषित करनी थीं।[16] कालान्तर में यह तिथि बढ़ाकर 30 सितम्बर 1955 कर दी गई।[17]

दिनांक 23 फरवरी 1954 की अधिसूचना के माध्यम से आयोग ने जनता से सुझाव मांगे और राज्यों की सरकारों को सूचना भेजी कि वे 24 अप्रेल 1954 तक अपना पक्ष प्रस्तुत करें।[18] अतः राजस्थान तथा अजमेर दोनों राज्यों की सरकारों ने निम्नलिखित दावे तथा प्रतिदावे प्रस्तुत किए:

राजस्थान सरकार का दावा

राजस्थान सरकार ने कुछ क्षेत्रों पर दावा करने तथा अन्य राज्यों द्वारा राजस्थान के क्षेत्रों पर किए गए दावों का प्रत्युत्तर देने के लिए एक राज्य पुनर्गठन समिति का गठन किया। राजस्थान सरकार ने अजमेर राज्य और पूर्व सिरोही राज्य के आबू क्षेत्र, आबू रोड आदि पर दावा करने के अलावा मध्य भारत, पंजाब तथा पेप्सू (पटियाला एण्ड द ईस्ट पंजाब स्टेट्स यूनियन के कुछ भागों पर भी दावा किया।[19]

राजस्थान सरकार ने राज्य पुनर्गठन आयोग के समक्ष अपना पक्ष प्रस्तुत करते हुए, अजमेर के राजस्थान में विलय के पक्ष में अग्रांकित तर्क दिए)[20]

1. अजमेर क्षेत्र, भौगोलिक, जातीय तथा भाषायी रूप से राजस्थान का अभिन्न अंग है। ब्रिटिश शासन काल में राजनीतिक उद्देश्यों से यह अनिवार्य माना गया कि इस छोटे किन्तु रणनीतिक महत्व वाले क्षेत्र को अपने अधिकार में रखा जाए और यह सीधे केन्द्र द्वारा प्रशासित हो ताकि राजस्थान पर ब्रिटिश अधिसत्ता पर कोई आंच न आ सके।

   राजस्थान के गठन तक अजमेर कई राज्यों से घिरा रहा। तत्पश्चात् परिस्थितियाँ पूर्णतः बदल गई। अजमेर अब एक द्वीप की भाँति है और चारों ओर से राजस्थान से घिरा हुआ है। अजमेर को घेरे हुए राजस्थान के क्षेत्रों की जनसंख्या की परम्पराओं, रीति-रिवाजों, भाषा, संस्कृति व आदतों में बहुत कम अन्तर है। राजस्थान राज्य से गुजरे बिना अजमेर का शेष भारत से सम्पर्क रखना असंभव है। पार्ट 'सी' राज्य की तुलना में, पार्ट 'बी' राज्य के रूप में राजस्थान के लिए संविधान में अधिक प्रगतिशील और लोकतांत्रिक प्रशासनिक ढाँचे की व्यवस्था की गई है।

अजमेर-मेरवाड़ा क्षेत्र पर प्रत्यक्ष नियंत्रण रखने की अनिवार्यता के पीछे निहित रणनीतिक वैचारिक आधार, जो ब्रिटिश काल में बहुत महत्व रखते थे, वे आज अप्रासंगिक हो गए हैं और इस प्रकार वर्तमान में अजमेर राज्य को एक पृथक प्रशासनिक इकाई बनाए रखने का कोई औचित्य नहीं।

2. संसदीय सरकार पर आधारित विशाल लोकतांत्रिक प्रशासनिक मशीनरी के निर्माण तथा रखरखाव पर होने वाले व्यय को वहन करना अजमेर जैसे—छोटे आकार, कम जनसंख्या, अल्प राजस्व वाले क्षेत्र के संसाधनों की सीमा से बाहर है। यह मानने के कई कारण हैं कि अजमेर की जनसंख्या का बहुमत भी एक ऐसी व्यवस्था के पक्ष में होगा जो उनके संसाधनों का अत्यधिक शोषण किए बिना ही उनके लिए उत्तरदायी संसदीय सरकार के लाभ सुनिश्चित कर सके। इस प्रकार अजमेर क्षेत्र को लोकतांत्रिक प्रशासन देने का उद्देश्य इसे राजस्थान में विलीन कर के अच्छे प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है।

3. ऐसा माना जाता है कि उपर्युक्त वक्तव्यों को प्रमाणित करने के लिए कोई तथ्य व आंकड़े प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं है। कोई भी व्यक्ति, जिसे अजमेर की जानकारी है, वह इसे स्वयं सिद्ध रूप में लेगा। यह विश्वास किया जाता है कि आयोग इन तथ्यों को ध्यान में रखेगा। अजमेर के पुराने गजैटियर्स तथा सेटलमेन्ट रिपोर्ट्स आदि भी इन सुझावों की सत्यता की व्याख्या करते हैं और यदि आवश्यक हुआ तो प्रमाण भी उपलब्ध करवा दिए जाएगें। अजमेर को राजस्थान में विलीन करने को लिए जो मुख्य कारण दिए गए, वे इस प्रकार थे:[21]

(i) कोई प्राकृतिक बाधा दोनों राज्यों को पृथक नहीं करती, सीमाएँ कृत्रिम हैं।

(ii) वर्षा स्तर, जलवायु, मिट्टी, वनस्पति आदि की दृष्टि से अजमेर शेष राजस्थान से समानता रखता है।

(iii) अजमेर तथा राजस्थान दोनों राज्यों के निवासियों की संस्कृति, परम्पराऐं, भाषा, खान-पान, पहनावा, त्यौहार, आदतें, विश्वास तथा अंधविश्वास आदि समान हैं।

(iv) काननू एवं व्यवस्था के बनाए रखने की दृष्टि से भी अजमेर व राजस्थान पर एक प्रशासनिक नियंत्रण की स्थापना अनिवार्य है। अरावली में हाल में घटी डकैती की घटनाओं से यही निष्कर्ष निकलता है। पाली, भीलवाड़ा, उदयपुर में डाके डालने के बाद

डकैत अजमेर राज्य में चले जाते हैं अथवा अजमेर में अपराध करके इन क्षेत्रों में आ जाते हैं, प्रशासनिक कठिनाईयों के कारण राजस्थान पुलिस या अजमेर पुलिस कुछ नहीं कर पाती।

इन सभी तर्कों के आधार पर राजस्थान सरकार ने निष्कर्ष निकाला कि 2417 वर्गमील के छोटे क्षेत्रफल तथा मात्र सात लाख की जनसंख्या वाले अजमेर राज्य को राजस्थान में विलीन कर दिया जाए। अजमेर को पृथक राज्य बनाए रखना भारत सरकार की जीवन-क्षमता से रहित राजनीतिक इकाइयों (नॉन वायेबल यूनिट्स) को समाप्त करने की घोषित नीति के भी विरुद्ध है।

अजमेर सरकार का प्रत्युत्तर

राज्य पुनर्गठन आयोग के समक्ष अजमेर राज्य सरकार द्वारा प्रस्तुत मेमोरेण्डम में विलय के विरुद्ध कई तर्क प्रस्तुत किए गए।

अजमेर सरकार का कहना था कि 'कुछ समय से राजस्थान में अजमेर के विलय की चर्चा जोरों पर है। यह दावा नहीं किया जा सकता कि विलय से इस क्षेत्र के लोगों को लाभ होगा अथवा विलय प्रशासनिक कुशलता के लिए किया जा रहा है। इसके विपरीत सामान्य रूप से यह स्वीकार किया जाता है कि इस प्रकार का परिवर्तन विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया के विपरीत होगा तथा अजमेर को राजस्थान का एक जिला बनाने से यहाँ की जनता के भौतिक कल्याण पर बुरा प्रभाव पड़ेगा।'22 प्रशासनिक कुशलता के प्रश्न पर अजमेर सरकार का पक्ष था कि बिना किसी विरोधाभास के यह कहा जा सकता है कि अजमेर प्रशासन निश्चित रूप से पड़ौसी राज्यों से उच्च स्तर का है। अकाउन्ट्स कमेटी द्वारा राजस्थान सरकार के विविध विभागों की कार्यप्रणाली के संदर्भ में किया गया खुलासा इस बात का प्रमाण है 'हर विभाग बड़ी मात्रा में धन व्यय करने किन्तु उचित प्रकार से लेखा विवरण न रखने के कारण कड़ी आलोचना का पात्र है। वित्त विभाग अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन में असफल रहा है...'[23] जब वित्तीय मामलों में कुशलता की यह हालत है तब अन्य विभागों से अधिक कार्यकुशलता की अपेक्षा नहीं की जा सकती। स्पष्ट शब्दों में विलय के पक्ष में दिए जाने वाले अधिकांश तर्क जनकल्याण या प्रशासनिक कार्यकुशलता में सुधार के संदर्भ में कोई प्रासंगिकता नहीं रखते हैं।

विलय के पक्ष में दिए जाने वाले विविध तर्कों में से दो पर सर्वाधिक बल दिया जा रहा था। प्रथम, कि अजमेर राज्य जनसंख्या व क्षेत्रफल की दृष्टि से इतना छोटा है कि इसके पृथक अस्तित्व का औचित्य सिद्ध नहीं किया जा

सकता। द्वितीय, यह एक घाटेवाला राज्य है, इसका पृथक अस्तित्व शेष राष्ट्र पर भार है।

अजमेर राज्य के छोटे आकार के तर्क के विरुद्ध अजमेर सरकार का कहना था कि यह तर्क स्वीकार्य नहीं है। भारत का संविधान विकेन्द्रीकरण तथा लघु प्रशासनिक इकाइयों के पक्ष में हैं जैसा कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 20 से स्पष्ट है कि 'राज्य को ग्राम पंचायतों के गठन के लिए प्रयास करने चाहिए तथा उन्हें वे शक्तियाँ व अधिकार प्रदान करने चाहिए कि वे स्वशासन की इकाइयों की तरह कार्य कर सकें।' दूसरे शब्दों में सत्ता का विकेन्द्रीकरण होना चाहिए। सत्ता तथा उत्तरदायित्व के विकेन्द्रीकरण की सिफारिश योजना आयोग द्वारा भी की गईं। आयोग कहता है कि 'लोकतांत्रिक योजना निर्माण, सत्ता और उत्तरदायित्व के पर्याप्त विकेन्द्रीकरण के साथ नीतिगत एकता की मांग करता है।'[24]

अजमेर सरकार का मत था कि यद्यपि वर्तमान में बड़ी प्रशासनिक इकाईयों के गठन की प्रवृत्ति है परंतु इस सिद्धान्त के समर्थक अभी तक यह निश्चित नहीं कर पाए हैं कि इकाई का अधिकतम आकार क्या हो? यदि यह स्वीकार कर लिया जाए कि इकाई के आकार के अनुपात में कार्यकुशलता में भी वृद्धि होगी तो सारे देश को एक प्रशासनिक इकाई के रूप में संगठित कर दिया जाना चाहिए किन्तु इससे निरकुंशता का मार्ग प्रशस्त होगा।

जहाँ भी लोकतंत्र फला-फूला है, वहाँ हम एक संघीय प्रशासन के अधीन बहुत से राज्य देखते हैं। उदाहरणार्थ संयुक्त राज्य अमेरिका, जिसकी जनसंख्या भारत से आधी है, में 48 राज्य हैं। स्विट्जरलैण्ड जो लोकतंत्र का घर है, में भी 16000 वर्गमील क्षेत्र व लगभग 50 लाख जनसंख्या के बावजूद 22 केन्टन है। जनता के अधिकारों की रक्षा और जनता द्वारा जनता के लिए, जनता पर शासन को एक वास्तविकता बनाने के लिए आवश्यक प्रतीत होता है कि भारत में हर राज्य उतना छोटा हो, जितना कि संभव है तथा आत्म निर्भर हो।

अजमेर राज्य की वित्तीय स्थिति को भी उसके पृथक अस्त्विव के विरुद्ध एक तर्क रूप में प्रस्तुत किया जाता था। बार-बार कहा जाता था कि 'अजमेर एक घाटे का प्रान्त है, केन्द्र द्वारा पोषित शिशु है। इसका पृथक अस्तित्व एक उत्तरदायित्व है इसलिए जितना जल्दी हो इसे राजस्थान में विलीन कर दिया जाना श्रेष्ठ होगा।' इस तर्क के प्रत्युत्तर में अजमेर सरकार ने कहा 'यह स्पष्ट नहीं है कि मात्र इस या उस राज्य में विलीन हो जाने से घाटे का यह क्षेत्र लाभ के क्षेत्र में किस प्रकार परिवर्तित हो जाएगा। इसके अलावा इस प्रकार तो घाटे के

इस क्षेत्र का स्थानान्तरण केन्द्र के चौड़े तथा मजबूत कंधों से राजस्थान के कमजोर कंधों पर चला जाएगा। यह लोक वित्त के सामान्य सिद्धान्तों के खिलाफ है। यह भी आश्चर्यजनक है कि राजस्थान इस घाटे वाले क्षेत्र को प्राप्त करने में इतनी रुचि क्यों दर्शा रहा है? इस उदार संकेत का क्या कारण हो सकता है?'[25]

अजमेर की कमजोर वित्तीय स्थिति के बारे में वस्तुस्थिति को स्पष्ट करते हुए अजमेर सरकार द्वारा अंग्राकित बिन्दु उठाए गए :

1. प्रायः सभी पार्ट-ए राज्य आयकर के रूप में जितनी राशि केन्द्र को जमा करवाते हैं उससे कई गुणा अधिक राशि वापस प्राप्त करते हैं।[26] यदि केन्द्र राज्यों को आयकर से मिलने वाले अंश का भुगतान रोक दे तो प्रायः सभी राज्य घाटे का बजट पेश करेंगे।[27]
2. वर्ष 1951-52 का अजमेर राज्य का बजट दर्शाता है कि इस वर्ष अजमेर को प्राप्त राजस्व 51 लाख रुपये था। किन्तु आश्चर्यजनक रूप से आयकर, जो अन्य राज्यों में राजस्व का महत्वपूर्ण स्रोत है, बजट में उसका कोई आंकड़ा शामिल नहीं था। वस्तुतः यह राज्य आयकर में से कोई अंश प्राप्त नहीं करता जबकि यहाँ के लोग अपनी जनसंख्या तथा क्षेत्र के आर्थिक विकास के स्तर के अनुपात में एक बड़ी राशि आयकर के रूप में देते हैं। यदि अजमेर को भी केन्द्र सरकार से देश के संयुक्त आयकर कोष से एक अंश प्राप्त हो, तो उसे केन्द्र से सहायक अनुदानों की मांग करने की आवश्यकता नहीं रहेगी।[28]

निम्नलिखित तालिका से आयकर के संयुक्त कोष में जमा होने वाली राशि और उसमें से राज्यों को प्राप्त होने वाले अंश की स्थिति स्पष्ट होती है।[29]

वर्ष 1950-51 में राज्यों द्वारा एकत्र कुल आयकर तथा राज्यों को संयुक्त आयकर कोष से प्राप्त अंश

राज्य	कुल एकत्र आयकर	केन्द्र के संयुक्त आयकर कोष से प्राप्त अंश (रुपये)
बिहार	2,96,48,971	5,87,13,000
मध्यप्रदेश	2,70,17,825	2,81,82,000
उड़िसा	68,34,773	1,40,91,000
अजमेर	28,29,787	शून्य

उपर्युक्त आंकड़े दर्शाते हैं कि उड़ीसा व बिहार राज्य द्वारा केन्द्र को प्रदत्त आयकर तथा केन्द्र से प्राप्त आयकर अंश के मध्य 1 : 2 का अनुपात रहता है जबकि अजमेर को आयकर अंश के रूप में कुछ प्राप्त नहीं होता। उपर्युक्त अनुपात के अनुरूप अजमेर केन्द्र से आयकर अंश के रूप में 57 लाख रुपये का वैध दावा कर सकता है।

इसी भाँति अजमेर सरकार का कहना था कि 'केन्द्रीय आबकारी शुल्क में से भी अधिंकाश राज्यों को अपना हिस्सा मिलता है किन्तु अजमेर को कुछ नहीं मिलता जबकि वह केन्द्रीय आबकारी शुल्क के रूप में लगभग 11 लाख रुपये जमा करवाता है अर्थात् यदि वह उदारता जो केन्द्र द्वारा पार्ट 'ए' राज्यों के प्रति दर्शायी जाती है, अजमेर के प्रति भी दर्शायी जाए तो इसका राजस्व में 11 लाख की अतिरिक्त वृद्धि होगी।'

अजमेर राज्य विधानसभा द्वारा पारित 'राज्य बिक्री कर अधिनियम' लागू होने पर राज्य के कुल राजस्व में 14 लाख रुपये की वृद्धि होगी। इसी प्रकार इस्तेमरारदार व जागीरदार जैसे मध्यस्थों की समाप्ति से राजस्व में 15 लाख रुपये की वृद्धि होगी।

इन अतिरिक्त राजस्वों को मिलाकर तब राज्य का कुल राजस्व 51 लाख रुपये से बढ़कर 148 लाख रुपये हो जाएगा।[30]

वर्ष 1951-52 में राज्य का कुल वार्षिक व्यय 149 लाख रुपये था। व्यय का सबसे बड़ा मद था शिक्षा, जिस पर बजट का 40 प्रतिशत व्यय किया गया। नि:संदेह यह एक बुद्धिमत्तापूर्ण व्यय था किन्तु उल्लेखनीय है कि अजमेर राज्य द्वारा शिक्षा पर व्यय किया गया प्रतिशत कई पार्ट 'ए' व 'बी' राज्यों द्वारा शिक्षा पर व्यय के राशि-प्रतिशत की तुलना में अधिक है। यदि यह राज्य जनकल्याण की अपेक्षा अपने बजट को संतुलित करने पर अधिक ध्यान देता तो यह भी तथाकथित आत्मनिर्भर राज्य का उदाहरण होता। पुनश्च: अजमेर राज्य ने अधीनस्थ कर्मचारीवृन्द सम्बन्धी वेतन आयोग की समस्त सिफारिशों को भी अपने यहाँ लागू किया हुआ है जबकि किसी पार्ट 'ए' व 'बी' राज्य ने ऐसा नहीं किया। यदि अजमेर भी इन तथाकथित आत्मनिर्भर राज्यों का अनुसरण करता तो अपने वार्षिक व्यय में कमी कर सकता था।

इस प्रकार अजमेर राज्य सरकार का कहना था कि यदि अजमेर राज्य अपनी शिक्षा योजनाओं में अधिक महत्वाकांक्षी न होता और उपर्युक्त वर्णित प्रकार से व्यय में कमी करता तथा उसे अन्य राज्यों की भाँति केन्द्र के संयुक्त

कोष से उचित अंश प्राप्त होते तो वह अपने वार्षिक व्यय में कमी तथा वार्षिक राजस्व में वृद्धि कर के अधिशेष बजट प्रस्तुत कर सकता था।

इसके अलावा खनिज सम्पदा से, जिसका अब तक दोहन नहीं हुआ है और 'नॉन टैक्स रेवेन्यू' से भी राज्य की आय में वृद्धि की जा सकती है। राज्यीय वाणिज्यिक उद्यमों के लिए भी यहाँ पर्याप्त अवसर हैं।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि अजमेर राज्य भी वित्तीय दृष्टि से आत्मनिर्भर व सशक्त इकाई होता यदि इसके साथ भी पार्ट 'ए' राज्यों की तरह व्यवहार किया जाता। अतः अजमेर को एक घाटे का राज्य मानना भ्रामक है तथा तथ्यों पर आधारित नहीं है।[31]

विलय के पक्ष में दिए जाने वाले दो प्रधान तर्कों का उपर्युक्त प्रत्युत्तर देने के बाद अजमेर राज्य सरकार ने विलय के विपक्ष में अपने अग्रांकित तर्क प्रस्तुत किए :

1. राजस्थान के साथ विलय होने पर यदि इस क्षेत्र के विकास की उपेक्षा हुई तो यहाँ के लोगों में असंतोष उत्पन्न होगा और यदि राजस्थान के एक जिले के रूप में इसे विशेष सुविधाएँ प्रदान की गईं तो अन्य जिलों का असंतुष्ट होना स्वाभाविक है।[32]
2. राजस्थान के विशाल आकार पर टिप्पणी करते हुए 1951 की जनगणना रिपोर्ट में कहा गया था कि इस क्षेत्र का विस्तृत आकार प्रशासनिक व राजनीतिक कठिनाइयाँ उत्पन्न करता है। प्रायः यह माना जाता है कि आकार में बड़े क्षेत्रों की तुलना में छोटे क्षेत्रों का प्रबन्धन आसानी से किया जा सकता है, वहाँ सामान्य सहमति पर आसानी से पहुँचा जा सकता है और योजनाओं को अधिक कुशलता के साथ लागू किया जा सकता है।[33] ये सारे भय काल्पनिक नहीं हैं वरन राजस्थान में हाल ही घटी घटनाओं से इनकी पुष्टि होती है। 22 अप्रेल 1954 को 'द स्टेट्स्मेन' ने अग्रांकित समाचार प्रकाशित किया : जोधपुर जिला कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक लगातार चार दिन तक जयपुर में मुख्यमंत्री निवास पर हुई। कार्यकारिणी ने यहाँ एक प्रस्ताव पारित किया जिसे प्रदेश कांग्रेस तथा अखिल भारतीय कांग्रेस समिति को भी भेजा गया। इसमें कहा गया कि 'इस संभाग के निवासी जो एकीकरण के बाद श्रेष्ठ आर्थिक जीवन की आशा करते थे, आज निराश व कुंठित हैं। वे अनुभव करते हैं कि उनका आर्थिक भाग्य उनके राज्य के राजस्थान में एकीकरण से नष्ट हो गया है। विभागों तथा विकास कार्यों के जयपुर तथा उदयपुर में

> केन्द्रीकरण ने 8000 वर्ग मील क्षेत्र और 4 मिलीयन जनसंख्या वाले इस क्षेत्र को ऐसी स्थिति में ला दिया है जिससे कांग्रेस संगठन के विरुद्ध अंसतोष उपजा है तथा प्रतिक्रियावादी तत्वों को प्रोत्साहन मिला।'[34]

राज्य पुनर्गठन आयोग को प्रेषित ज्ञापन के अन्त में अजमेर सरकार ने कहा कि 'इस तरह के मामले में जनकल्याण को ही अन्तिम निर्णयात्मक तत्व माना जाना चाहिए। यदि इसकी स्वायत्तता को नष्ट कर दिया गया तो अजमेर राज्य द्वारा जो स्वस्थ परम्पराएँ स्थापित की गईं हैं तथा जो जनकल्याणकारी योजनाएँ प्रारम्भ की गईं हैं, वे बुरी तरह प्रभावित होंगी।

'इस विचार को राज्य के लघु आकार अथवा वित्तीय आत्मनिर्भरता सम्बन्धी अपूर्ण व भ्रामक आंकड़ों पर आधारित किसी विपरीत प्रस्ताव से अधिक महत्व दिया जाना चाहिए। अजमेर का अपना महान इतिहास रहा है। हाल ही में अजमेर को प्राप्त नए प्रशासनिक अवसरों ने इस इतिहास में एक नवीन अध्याय की शुरूआत की है। राज्य को इन अवसरों का अधिकतम उपयोग करने दिया जाना चाहिए ताकि यहाँ की जनता का कल्याण सुनिश्चित हो सके और यह शेष भारत के लिए मिसाल बन सके।'[35]

राज्य पुनर्गठन आयोग द्वारा विलय की सिफारिश

राजस्थान तथा अजमेर राज्य सरकारों के अग्रवर्णित दावों-प्रतिदावों की पृष्ठभूमि में राज्य पुनर्गठन आयोग ने विलय के मामले की जांच की और यह माना कि पार्ट 'सी' राज्यों को 'रेवेन्यू गेप ग्रान्ट्स-इन-एड' के रूप में केन्द्र सरकार द्वारा निरन्तर वृद्धिशील रियायतें प्रदान की जाती है। वित्तीय दृष्टि से पार्ट 'सी' राज्यों में प्रगति बहुत धीमी रही है। दूसरी ओर इन राज्यों का कहना है कि इस धीमी प्रगति के लिए केन्द्र का गतिहीन बना देने वाला नियंत्रण उत्तरदायी है। किन्तु आयोग की रिपोर्ट में कहा गया कि पार्ट 'सी' राज्यों में पंचवर्षीय योजना की धीमी प्रगति के लिए केन्द्र सरकार का नियंत्रण उत्तरदायी नहीं है। यह भी कहा गया कि 'पार्ट 'सी' राज्यों में प्रशासनिक सेवाओं की उचित व्यवस्था नहीं है, जिसका मुख्य कारण यह है कि ये सेवाएँ इन राज्यों में अपर्याप्त अवसर प्रस्तुत करती है। बड़ी इकाईयाँ में इन राज्यों के विलय का एक लाभ उनकी प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार होगा।[36]

'विलय को आवश्यक मानने का एक अन्य कारण है कि पार्ट 'सी' राज्य अधिकांश मामलों में अनियोजित एनक्लेव्स हैं, जिनके आस-पास के क्षेत्रों से घनिष्ठ आर्थिक सम्बन्ध हैं और इस प्रकार उनका विलय बड़ी योजनाओं के

क्रियान्वयन की दृष्टि से सुविधाजनक होगा।' आयोग द्वारा विलय का एक अन्य कारण यह बताया गया कि ये राज्य लोकतांत्रिक प्रयोग के क्षेत्र में इच्छित परिणाम प्राप्त करने में असफल रहे।[37]

अजमेर के विषय में आयोग की रिपोर्ट में कहा गया 'अजमेर, एक जिले वाला पार्ट 'सी' राज्य है जो चहुँ ओर से राजस्थान से घिरा हुआ है। अब तक वह ऐतिहासिक कारणों से अपना पृथक अस्तित्व बनाए रख सका। किसी बड़ी इकाई में इसके विलय की मांग सन् 1921 से चली आ रही हैं जब एशवर्थ समिति ने इस मांग की जांच की। यह तथ्य कि अजमेर राजस्थान में एक सुविधाजनक ब्रिटिश चौकी की तरह था और इसे तत्कालीन संयुक्त प्रान्त में भली-भाँति मिलाया नहीं जा सकता था, ब्रिटिश काल में इसके पृथक अस्तित्व का प्रधान कारण था।

'अजमेर भौगोलिक रूप से पृथक नहीं है और न ही अब प्रहरी की भूमिका निभा रहा है। इसलिए हम राजस्थान सरकार से सहमत हैं कि अजमेर तथा राजस्थान के मध्य स्थित भाषीय, सांस्कृतिक और भौगोलिक सम्बन्धों का सम्मान किया जाना चाहिए, और कुछ अन्य कारणों, उदाहरणार्थ-दोहरे नियंत्रण की समाप्ति से कानून तथा व्यवस्था की स्थिति में सुधार होगा, से अजमेर के विलय का प्रस्ताव औचित्यपूर्ण है। साथ ही यह भी याद रखना चाहिए कि 1947 में संविधान सभा द्वारा नियुक्त 'मुख्य आयुक्तों के प्रान्त पर आयोग' में अजमेर के प्रतिनिधियों ने स्वयं यह विचार दिया था कि निकट भविष्य में इस क्षेत्र को निकटस्थ इकाई में मिला दिया जाए।'[38]

उपर्युक्त वर्णित एवं राज्यों के पुनर्गठन सम्बन्धी अन्य सिफारिशों को भारत सरकार द्वारा स्वीकार कर लिया गया। तद्नुसार राज्य पुनर्गठन विधेयक का प्रारूप तैयार किया गया।

विलय का निर्णय और अजमेर की प्रतिक्रिया

'राज्य पुनर्गठन आयोग विधेयक', जिसमें अजमेर के राजस्थान में विलय का निर्णय समाहित था, पर अजमेर राज्य विधानसभा में हुई चर्चा विलय के निर्णय पर अजमेर राज्य की मन:स्थिति को भलीभाँति स्पष्ट करती है। वस्तुत: सामान्य रूप से इस निर्णय पर विवशतापूर्वक एवम् भविष्य के प्रति आशंकाओं से युक्त सहमति प्रदर्शित की गईं किन्तु आशावादिता व उत्साह का संचार करने का प्रयास करते हुए विलय को सकारात्मक रूप से स्वीकार करने पर भी बल दिया गया। इस विधेयक के प्रावधानों को स्वीकार करने सम्बन्धी प्रस्ताव को

सदन के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए सदन के नेता तथा अजमेर राज्य के मुख्यमंत्री हरिभाऊ उपाध्याय ने कहा 'इस सदन ने अजमेर को एक पृथक राज्य बनाए रखने का प्रस्ताव पारित किया था। सदन द्वारा स्वीकृत इस प्रस्ताव के अनुसार मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में मैंने सारी स्थिति स्पष्ट कर दी थीं। फिर प्रान्तीय कांग्रेस समितियों के सम्मेलन में अजमेर प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष मुकुट बिहारी लाल भार्गव ने भी इसी मत का पुरजोर समर्थन किया। हमने दृढ़ता के साथ अपना पक्ष रखा किन्तु फिर भी हमारी इच्छा तथा इसके समर्थन में प्रस्तुत तर्कों के बावजूद यदि भारत सरकार यह निर्णय करती है कि हमें राजस्थान में विलीन हो जाना चाहिए तो इस निर्णय का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व सिर्फ उनका; भारत सरकार का होगा। हम चाहते हैं कि भारत सरकार के निर्णय के परिणामस्वरूप अजमेर की जनता को होने वाले नुकसान के संदर्भ में जो भय तथा संदेह हमारे मन में है उसका भार भी वे ही ग्रहण करें तथा प्रथमत: वे स्वयं आश्वस्त हों तथा अजमेर व राजस्थान की जनता को आश्वस्त करें कि विलय से दोनों को लाभ होगा।

'इन सब के बावजूद भी विलय की सिफारिश की गईं तथा इस प्रावधान के साथ, कि अजमेर को राजस्थान का अंग बना दिया जाए, इस विधेयक का प्रारूप तैयार किया गया। इन परिस्थितियों में हमारे पास राजस्थान में विलीन हो जाने के अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प नहीं है। अत: मैं सदन से अपील करता हूँ कि जब हमें विलीन होना ही है तो क्या यह उचित नहीं होगा कि हम किसी पूर्वाग्रह के बिना विलीन हों। हमें आशा एवम् भाग्य में विश्वास के साथ विलय के निर्णय को स्वीकार करना चाहिए।

'...किन्तु इससे पूर्व कि हम राजस्थान में विलीन हो हमारे तथा भारत सरकार के लिए यह आवश्यक है कि यह सुनिश्चित कर लिया जाए कि विलय से अजमेर की जनता को कोई हानि नहीं पहुंचेगी। इसी साध्य को दृष्टिगत रखते हुए इस विधयेक को स्वीकार करने के प्रस्ताव में कुछ सुझाव दिए गए हैं।

'प्रस्ताव में दो मुख्य बाते हैं—प्रथम, कि हम विलय को स्वीकार करते हैं तथा द्वितीय, कि विलय के परिणामस्वरूप अजमेर की जनता को किसी प्रकार की कोई क्षति नहीं होनी चाहिए। इसके लिए हमने सुझाव दिया है तथा मांग की है कि विलय के बाद किसी भी दृष्टि से अजमेर का महत्व कम नहीं किया जाना चाहिए... अजमेर को राजस्थान की राजधानी बनाया जाए। महत्व की दृष्टि से अजमेर के बाद हमारे पास दो अन्य शहर भी हैं—ब्यावर व केकड़ी, विलय के बाद इन्हें जिला मुख्यालय बनाया जाए। इसके अलावा, नए राजस्थान राज्य के

आई.ए.एस. तथा आई.पी.एस. केडर के पुनर्गठन के समय हमारे अधिकारियों के सेवा सम्बन्धी दावों पर विचार करने पर भी हमने जोर दिया है। एक अन्य महत्वपूर्ण प्रस्ताव रीजनल कौन्सिल के सम्बन्ध में है। पंजाब, पेप्सू और आंध्र-तेलंगाना के लिए रीजनल कौन्सिल का गठन करने का प्रावधान विधेयक में है। हमारा विश्वास है कि कई कारणों से वर्तमान अजमेर राज्य पड़ौसी क्षेत्रों से कहीं अधिक प्रगतिशील है। हम कई मामलों में कुछ प्रान्तों व क्षेत्रों से बहुत आगे है और हमारे पास इस आशंका के कई कारण हैं, कि हमने जो प्रगति व समृद्धि प्राप्त की है, राजस्थान जैसे पिछड़े क्षेत्र में विलय से उसे आघात पहुँचेगा। इस कारण प्रस्ताव में यह सुझाव दिया गया है कि एक रीजनल कौन्सिल बने जिसमें अजमेर विधानसभा के सदस्य शामिल हों, तथा वे यह सुनिश्चित करें कि प्रगति की हमारी वर्तमान गति को कोई क्षति न पहुंचे।

'इसी भाँति यह भी सुझाव दिया गया कि भारत सरकार द्वारा अजमेर राज्य व जनता के हितों की रक्षार्थ भारत सरकार द्वारा स्थापित की जाने वाली किसी परामर्शदात्री समिति में अजमेर का प्रतिनिधि भी शामिल किया जाए। विलय के बाद भी अजमेर तथा अन्य शहरों व गांवों का महत्व बरकरार रहे।'[39]

इस प्रस्ताव पर विचार व्यक्त करने वाले सभी वक्ताओं ने अजमेर के ऐतिहासिक महत्व को बनाए रखते हुए इसे राजस्थान की राजधानी बनाने की मांग की। अजमेर राज्य के राजस्व मंत्री बृजमोहन लाल शर्मा ने कहा 'यह एक तथ्य है कि जब सन् 1818 में अंग्रेजों ने मराठों से अजमेर प्राप्त किया तब उन्होंने सैन्य एवम् अन्य कारणों से इसे पृथक रखा। किन्तु जब देश आजाद हुआ और राजस्थान के राज्यों का पुनर्गठन हुआ, तब स्थानीय कांग्रेस ने अजमेर, ब्यावर व महू में पॉलिटिकल कॉन्फ्रेन्स आयोजित कर अजमेर के विलय के पक्ष में प्रस्ताव पारित किए। ब्यावर कॉन्फ्रेन्स में स्वयं मैंने प्रस्ताव पारित किया कि ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और भौगोलिक रूप से अजमेर राजस्थान का अंग था, अतः इसे राजस्थान में विलीन कर दिया जाए। हमारी इस मांग के पीछे यह कारण था कि जब राजस्थान का गठन हो रहा था तब अजमेर अपना उचित स्थान प्राप्त कर सकता था, राजस्थान के राजनीतिक व प्रशासनिक ढांचे में उचित अंश प्राप्त कर सकता था। किन्तु अजमेर को उस समय विलीन नहीं किया गया तथा पार्ट 'सी' राज्य बना दिया गया।

'जब वृहद् राजस्थान का गठन किया गया तथा अजमेर को उसमें नहीं मिलाया गया तब राजस्थान के नेताओं ने अजमेर को राजस्थान की राजधानी बनाने के पक्ष में विचार व्यक्त किए थे। उस समय 100 में से 80 मतों के

साथ प्रस्ताव पारित किया गया कि अजमेर को राजस्थान में मिला दिया जाए तथा उसे राजस्थान की राजधानी बनाया जाए। इस प्रकार अजमेर को उस स्थिति से वंचित कर दिया गया जो उसे उस समय प्राप्त होती। यदि अजमेर को उसी समय विलय कर दिया जाता तो अजमेर राजस्थान की राजधानी बन गया होता। अत: जबकि अजमेर को राजस्थान में मिलाया जा रहा है तो यह भारत सरकार का विशेष उत्तरदायित्व है कि उसे उचित स्थान प्रदान करे।'[40]

विपक्षी दल के नेता महेन्द्र सिंह पंवार ने कहा 'अजमेर को पृथक इकाई बनाये रखने की कीमत हमें चुकानी पड़ेगी। हमारे वास्तविक घर, हमारे सांस्कृतिक घर राजस्थान के साथ अजमेर के विलय को अनावश्यक रूप से लम्बित कर दिया गया जिसकी हमें बहुत बड़ी कीमत चुकानी होगी। अजमेर को राजधानी बनाने का प्रश्न कमजोर पड़ गया है...।

'उस समय हम राजस्थान में विलीन नहीं हुए इसलिए आज यह दुर्भाग्य झेलना पड़ रहा है कि अजमेर का राजधानी बनाने का प्रश्न एक कठिन समस्या बन गया है। इस लम्बित विलय के लिए स्थानीय नेताओं के साथ केन्द्र सरकार भी उत्तरदायी है। ...अत: यह केन्द्र सरकार का विशेष कर्त्तव्य है कि अजमेर के महत्व की रक्षा करे।' अजमेर को राजधानी बनाने के अलावा महेन्द्र सिंह पंवार ने उच्च न्यायालय को भी यहां स्थापित करने की मांग की।[41]

विलय के निर्णय पर आम प्रतिक्रिया को निम्नलिखित तीन बिन्दुओं के रूप में स्पष्ट किया जा सकता है। (1) इस बात को लेकर असंतोष था कि राजस्थान के गठन के समय अजमेर का विलय न करके उसे राजस्थान के प्रशासनिक व राजनीतिक ढांचे में उचित स्थान प्राप्त करने से वंचित कर दिया गया। (2) भविष्य में इस क्षेत्र के महत्व को लेकर भय व आशंकाए विद्यमान थीं। अत: इसके हितों की सुरक्षा की सुनिश्चित कर लेने की मांग की गईं, इसे राजधानी या संभागीय मुख्यालय बनाने व उच्च न्यायालय को यहाँ स्थापित करने की मांग यही प्रकट करती है। (3) सभी विवशताओं और असंतोष के बावजूद अन्तत: सकारात्मक रूप से इस निर्णय को स्वीकारने तथा एकीकृत राजस्थान के हित में काम करने का संकल्प भी दिखायी देता है। जैसा कि चर्चा को समाप्त करते हुए सदन के नेता हरिभाऊ उपाध्याय ने कहा 'जब हमने नयी इकाई के साथ विलय का निर्णय कर लिया है तो हमें अनमने ढंग से नहीं वरन उत्साह के साथ इसे स्वीकार करना चाहिए। पीछे नहीं, आगे देखना चाहिए। विलय से पूर्व हमें अजमेर के कल्याण हेतु हर संभव प्रयास करना चाहिए तथा विलय के बाद हमें राजस्थान को सशक्त तथा विकसित बनाने का प्रयास करना चाहिए।'[42]

इन्हीं आशंकाओं और उम्मीदों की पृष्ठभूमि में राजस्थान राज्य पुनर्गठन अधिनियम के तहत 01 नवम्बर 1956 को अजमेर को राजस्थान में विलीन कर दिया गया। अजमेर को सम्भागीय मुख्यालय बनाया गया, वहाँ राजस्थान राजस्व मण्डल की स्थापना की गई और कालान्तर में राजस्थान माध्यमिक षिक्षा बोर्ड की स्थापना भी वहाँ हुई किन्तु अपने ऐतिहासिक महत्व के अनुरूप अजमेर नवगठित राजस्थान प्रान्त की राजधानी बनने में असफल रहा।

संदर्भ :

1. द *हिन्दुस्तान टाइम्स*, न्यू देहली, वॉल्यूम XXV, नं. 74 डेटेड 17.3.1948, पेज 3, राजपूताना यूनियन-प्रेस कटिंग्स फाइल नं. सी-16/जोधपुर इन्फॉरमेशन एण्ड पब्लिसिटि ऑफिस/आर.एस.ए.बी.।
2. *दरबार*, अजमेर, वाल्यूम 21, नं. 14 डेटेड 7.4.1948, पेज 4, राजपूताना यूनियन-प्रेस कटिंग्स फाइल नं. सी-16/जोधपुर इन्फॉरमेशन एण्ड पब्लिसिटि ऑफिस/आर.एस.ए.बी.।
3. द *हिन्दुस्तान टाइम्स*, न्यू देहली, वॉल्यूम XXV, नं. 184 डेटेड 30.6.1948, पेज 3, राजपूताना यूनियन-प्रेस कटिंग्स फाइल नं. सी-16/जोधपुर इन्फॉरमेशन एण्ड पब्लिसिटि ऑफिस/आर.एस.ए.बी.।
4. *फाइल* नं. 4(66)–P 49/मिनिस्ट्रि ऑफ स्टेटस्/पोलिटिकल ब्रांच 1949/ प्रप्रोज्ड मर्जर ऑफ अजमेर विद् राजस्थान, डिस्कशन रिगार्डिंग/एन.ए.आई.।
5. *फाइल* नं. 4(66)–P/49/मिनिस्ट्रि ऑफ स्टेट्स्/पोलिटिकल ब्रांच 1949/ प्रप्रोज्ड मर्जर ऑफ अजमेर विद् राजस्थान, डिस्कशन रिगार्डिंग/एन.ए.आई।
6. *फाइल* नं. 4(66)–P/49/मिनिस्ट्रि ऑफ स्टेट्स्/पोलिटिकल ब्रांच 1949/ प्रपोज्ड मर्जर ऑफ अजमेर विद् राजस्थान, डिस्कशन रिगार्डिंग/एन.ए.आई.।
7. *वीर राजस्थान/समरी* नं. 40 डेटेड 9.4.1951/अजमेर कॉन्फिडेन्शियल रिकॉर्ड/ग्रुप-सी/पेज 37/न्यूज पेपर्स कटिंग्स फाइल/आर.एस.ए.बी.।
8. *राष्ट्रवाणी/समरी* नं. 42 डेटेड 20.4.1951/अजमेर कॉन्फिडेन्शियल रिकॉर्ड/ ग्रुप-सी/पेज 37/न्यूज पेपर्स कटिंग्स फाइल/आर.एस.ए.बी.।
9. *दैनिक नवज्योति*/समरी नं. 45 डेटेड 14.5.1951/अजमेर कॉन्फिडेन्शियल रिकॉर्ड/ग्रुप-सी/पेज 37/न्यूज पेपर्स कटिंग्स फाइल/आर.एस.ए.बी.।
10. *दैनिक नवज्योति*, डेटेड 18 जून 1951, दैनिक नवज्योति कार्यालय, केसरगंज, अजमेर।
11. *दैनिक नवज्योति*, डेटेड 16 जुलाई 1951, दैनिक नवज्योति कार्यालय, केसरगंज, अजमेर।

12. *हिन्दुस्तान टाइम्स/समरी* नं. 45 डेटेड 15.7.1951/अजमेर कॉन्फिडेन्शियल रिकॉर्ड/ग्रुप-सी/पेज 37/न्यूज पेपर्स कटिंग्स फाइल/आर.एस.ए.बी.।
13. रिपोर्ट ऑफ द कमेटीज ऑफ द कॉन्स्टीटूएन्ट असेम्बली ऑफ इण्डिया, थर्ड सीरीज, पेज 120.
14. कॉन्फिडेन्शियल डी.ओ. लेटर नं. एच सी एम/एस/सी/एफ-1(10) पोलिटिकल–ए/51 डेटेड 17 सेप्टेम्बर 1951/एस.आर.सी./5412/क्लेम्स ऑफ राजस्थान/एग्जिबिट नं. I/राजस्थान स्टेट आर्काइव्ज, जयपुर शाखा
15. सिक्रेट डीओ लेटर नं. एफ.10(57)/पी.ए./51 डेटेड 21 सेप्टेम्बर 1951 फ्रॉम श्री वी.शंकर, सेक्रेट्री टू द गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया, मिनिस्ट्रि ऑफ स्टेट्स् न्यू देहली टू श्री जे.एन.व्यास, चीफ मिनिस्टर ऑफ राजस्थान, जयपुर/ आर.एस.ए.बी./5412/क्लेम्स ऑफ राजस्थान/एग्जिबिट नं–II /राजस्थान स्टेट आर्काइव्ज, जयपुर शाखा
16. होम डिपार्टमेन्टस् रिजोल्यूशन नं. 53/69/53/पब्लिक, डेटेड 29.12.1953 वाइड रिपोर्ट ऑफ द स्टेट्स् रिऑर्गनाइजेशन कमीशन, 1955, पब्लिकेशन ब्रांच, गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया, दिल्ली (1956)
17. रिपोर्ट ऑफ द स्टेट्स् रिऑर्गनाइजेशन कमीशन 1955, पब्लिकेशन ब्रांच, गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया, दिल्ली (1956)
18. रिपोर्ट ऑफ द स्टेट्स् रिऑर्गनाइजेशन कमीशन 1955, पब्लिकेशन ब्रांच, गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया, दिल्ली (1956)
19. व्यूज एण्ड सजेशन्स ऑफ राजस्थान गवर्नमेन्ट टू द स्टेट्स् रिआर्गनाइजेशन कमीशन (1954), अपेन्डिक्स-II, पेज 1-2.
20. लेटर फ्रॉम द चीफ सेक्रेट्री टू द गवर्नमेन्ट ऑफ राजस्थान टू द सेक्रेट्री, स्टेट्स् रिऑर्गनाइजेशन कमीशन, गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया, न्यू देहली, गिविंग सजेशन्स एण्ड व्यूज ऑफ स्टेट गवर्नमेट इन रिसपोन्स टू लेटर्स, लेटर नं. 55/254/एस आर सी डेटेड 18 मार्च 1954 एड्रेस्ड टू द चीफ सेक्रेट्रीज ऑफ पार्ट ए स्टेट्स्/ एस.आर.सी./5412/क्लेम्स ऑफ राजस्थान/एग्जिबिट्स/राजस्थान स्टेट आर्काइव्ज, जयपुर शाखा
21. व्यूज एण्ड सजेशन्स, गवर्नमेन्ट ऑफ राजस्थान टू द स्टेट्स् रिऑर्गनाइजेशन कमीशन (1954) (प्रिन्टेड बुकलेट)
22. मेमोरेण्डम सब्मिटेड टू द स्टेट्स् रिऑर्गनाइजेशन कमीशन बाय द अजमेर स्टेट गवर्नमेन्ट, नवल किशोर प्रेस, अजमेर, पृ. 2.
23. पब्लिक अकाउन्ट्स कमेटीज् रिपोर्ट ऑन अप्रोप्रिएशन अकाउन्ट्स ऑफ 1950-

51 एडमिटेड टू द राजस्थान स्टेट असेम्बली-समरी रिपोर्ट पब्लिश्ड् इन द स्टेट्स्मेन ऑफ 19 मार्च 1954./आर.एस.ए.बी.

24. ड्राफ़्ट I फाइव इयर प्लान, पृ. 10.
25. मेमोरण्डम सबमिटेड टू द स्टेट्स् रि-आर्गनाइजेशन कमीशन बाय द अजमेर स्टेट गवर्नमेन्ट, नवल किशोर प्रेस, अजमेर, पृ. 8.
26. *युगवाणी*, 3 अप्रेल 1954, पृ. 86, वाइड मेमोरण्डम सबमिटेड टू द स्टेट्स् रिआर्गनाइजेशन कमीशन बाय द अजमेर स्टेट गवर्नमेन्ट, नवल किशोर प्रेस, अजमेर, पृ. 8.
27. रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया बुलेटिन, मई 1953, पृ. 379-80.
28. रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया बुलेटिन, मई 1953, पृ. 379-80.
29. रिपोर्ट ऑन करन्सी एण्ड फाइनेन्स फॉर द इयर 1951-52/स्टेटमेन्ट 64 पृ. 216.
30. मेमोरण्डम सबमिटेड टू द स्टेट्स् रिआर्गनाइजेशन कमीशन बाय द अजमेर स्टेट गवर्नमेन्ट, पृ. 12.
31. उपर्युक्त, पृ. 13.
32. उपर्युक्त, पृ. 15.
33. *सेन्सस् रिपोर्ट,* 1951, वाल्यूम 10, पार्ट ए, पृ. 4.
34. *स्टेट्समेन*, नोर्दर्न एडिशन, थर्सडे, द 22 अप्रेल 1954, पृ. 1./आर.एस.ए.बी.
35. मेमोरण्डम सबमिटेड टू द स्टेट्स् रिआर्गनाइजेशन कमीशन बाय द अजमेर स्टेट गवर्नमेन्ट, नवल किशोर प्रेस, अजमेर, पृ. 15.
36. रिपोर्ट ऑफ द स्टेट्स् रिऑर्गनाइजेशन कमीशन, 1955 पृ. 75.
37. उपर्युक्त।
38. उपर्युक्त, पृ. 136.
39. लेजिस्लेटिव असेम्बली अजमेर/समरी ऑफ प्रोसिडिंग्ज रिलेटिंग टू डिशकशन ऑन रिजोल्यूशन रिगार्डिंग ड्राफ़्ट स्टेट्स् रिऑर्गनाइजेशन बिल, 8 अप्रेल 1956, पृ. 2-4.
40. उपर्युक्त, पृ. 37, 38.
41. उपर्युक्त, पृ. 23-29.
42. उपर्युक्त, पृ. 71.

डॉ. विधि शर्मा

सहायक आचार्य, इतिहास

राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा

❑❑❑

जयपुर रियासत के खालसा क्षेत्रों में संचालित ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का ऐतिहासिक अध्ययन (1937-1942 ई.)

• डॉ. रश्मि मीना

जयपुर रियासत के शासक कछवाहा राजपूत थे जो स्वयं को श्रीराम के पुत्र 'कुश' के वंशज मानते थे। सूर्यवंशी होने के कारण माघ (जनवरी-फरवरी) माह में 'भानू-सप्तमी' उत्सव द्वारा वे सूर्य देव की पूजा करते थे।[1] कछवाहा शासक अयोध्या (वर्तमान अवध) में शासन कर रहे थे तथा यहां से नरवर, ग्वालियर होते हुए जयपुर क्षेत्र में पहुंचे, जिसकी राजधानी दौसा थी।[2] दुलहराय ने यहां के मीणा शासकों को पराजित कर ढूंढाड़ क्षेत्र पर अपना अधिकार स्थापित किया। 967 ई. में जयपुर में कछवाहा वंश का शासन दुलहराय द्वारा स्थापित किया गया तथा काकिलदेव तथा जान्हड़देव के समय इसका क्षेत्र विस्तार हुआ। 1200 ई. में काकिलदेव द्वारा आम्बेर नगर की स्थापना की गई। सवाई जयसिंह (1699-1743 ई.) कछवाहा वंश के सर्वाधिक प्रसिद्ध शासक हुए तथा इन्होंने 25 नवम्बर, 1727 ई. को जयपुर नगर की नींव रखी। महाराजा मानसिंह प्रथम (1590-1650 ई.) मिर्जा राजा जयसिंह (1622-1668 ई.), महाराजा सवाई जगतसिंह (1803-1818 ई.), महाराजा सवाई रामसिंह द्वितीय (1835-1880 ई.), इत्यादि इस राजवंश के अन्य प्रमुख शासक हुए, जिनके शासनकाल में इस रियासत ने उत्तरोत्तर प्रगति की। महाराजा सवाई जगतसिंह (1803-1818 ई.) के शासनकाल में 1818 ई. में जयपुर रियासत ने अंग्रेजों के साथ मैत्री सन्धि की। जिसके पश्चात् जयपुर रियासत के प्रशासन में कई परिवर्तन किए जाते रहे। जयपुर रियासत का भू-राजस्व प्रबंधन दो भागों में बंटा हुआ था-खालसा क्षेत्र एवं जागीर क्षेत्र। खालसा क्षेत्र सीधे राजदरबार के नियंत्रण में रहता था तथा राज्य के विभिन्न राजस्व अधिकारी-

दीवान, आमिल, अमीन, फौजदार, चौधरी, कानूनगों, पटेल, पटवारी, शहना इत्यादि खालसा भूमि का राजस्व प्रशासन संभालते थे। जागीर भूमि रियासत के ठिकानेदारों को प्रदान की जाती थी,जो इसके बदले में निर्धारित सेवाएं राजा को प्रदान करते थे। जयपुर रियासत के प्रमुख ठिकाने-शेखावाटी, सीकर, खेतड़ी, नवलगढ़, खंडेला, खाचरियावास, डूंडलोद, मंडावा, बिसाऊ, उणियारा, डिग्गी, चौमूं इत्यादि थे। जयपुर रियासत के खालसा क्षेत्र के राजस्व प्रशासन को 11 निजामतों तथा 29 तहसीलों में विभाजित किया गया था, जिसका विवरण निम्नानुसार है—

सारणी-1

जयपुर रियासत के खालसा क्षेत्र की राजस्व प्रशासनिक इकाई विभाजन[3]

पूर्वी निजामत		पश्चिमी निजामत	
निजामत	तहसील	निजामत	तहसील
दौसा	दौसा, बसवा, सिकराय, लालसोट	सवाई जयपुर	सवाई जयपुर, चाकसू
हिन्डौन	हिन्डौन, घोंसला, टोडाभीम, महवा	आम्बेर	आम्बेर, जमवा रामगढ़
गंगापुर	गंगापुर, वजीरपुर, बामनवास, नादौती	सांभर	सांभर, दांता रामगढ़, मौजमाबाद
सवाई माधोपुर	सवाई माधोपुर, खंडार, बौंली, मलारना-डूंगर	शेखावटी (झुंझुनूं)	शेखावाटी
कोट कासिम	कोई तहसील नहीं	तोरावाटी (नीम का थाना)	तोरावाटी, बैराठ
		मालपुरा	मालपुरा, टोडारायसिंह, निवाई

वर्ष 1937-38 की जयपुर प्रशासनिक रिपोर्ट के अनुसार रियासतों की प्रशासनिक संरचना इस प्रकार थी 2 दीवान, 2 नायब दीवान, 11 नाजिम, 5 नायब नाजिम, 29 तहसीलदार (1 अतिरिक्त तहसीलदार शेखावाटी क्षेत्र हेतु) तथा 31 नायब तहसीलदार।[4] वर्ष 1937-38 में जयपुर रियासत का कुल क्षेत्रफल 16,682 वर्ग मील था, जिसमें खालसा क्षेत्र के अंतर्गत 3,224 वर्ग मील का भू-भाग सम्मिलित था।[5] इस समय खालसा क्षेत्र में स्थित कुल गांवों की संख्या 2,135 थी, जिसमें 1,750 गांवों में नकद राजस्व तथा 227 गांवों में 'अनाज' के रूप में भू-राजस्व वसूल किए जाने की व्यवस्था थी।[6] वर्ष 1937-38 में खालसा क्षेत्र के लगभग 14,67,081 बीघा (सिंचित क्षेत्र 3,82,192 बीघा व असिंचित क्षेत्र 10,84,929 बीघा) भूमि कृषि हेतु प्रयुक्त की गई। वर्ष 1937-38 में जयपुर रियासत द्वारा बड़े स्तर पर ग्रामीण विकास कार्य शुरू करवाए गए। बड़े स्तर पर खाली पड़ी हुई भूमि पर कृषि करने की व्यवस्था की गई। गैर उपयोगी कुंओं की मरम्मत कर उन्हें उपयोग योग्य बनाया गया। नए कुंए भी खुदवाए गए। कृषकों को फसल उत्पादन बढ़ाने हेतु उन्नत किस्म के बीज उपलब्ध करवाए गए तथा इस हेतु किसानों को तकावी ऋण भी प्रदान किए गए। अप्रैल, 1938 ई. में 'ग्राम पंचायत अधिनियम' पारित कर शीघ्र ही खालसा क्षेत्र के ग्रामीण इलाकों में 'पंचायत कोर्ट' स्थापित करने की व्यवस्था की गई।[7]

दिनांक 5 मार्च, 1938 ई. को महाराजा सवाई मानसिंह द्वितीय (1922-1970 ई.) के समय जयपुर राज्य परिषद द्वारा 'ग्रामीण विकास समिति' का गठन किया गया, जिसका मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में विविध कार्यक्रमों के माध्यम से ग्रामीण जीवन स्तर उन्नत करना तथा कृषि, शिक्षा, स्वच्छता, स्थानीय ग्रामीण उद्योगों इत्यादि का विकास करना था। इस समिति में कुल बारह सदस्य थे।[8]

दिनांक 12 अप्रैल, 1938 ई. को 'ग्रामीण विकास समिति' की प्रथम बैठक हुई, जिसमें इस समिति के सदस्य कैप्टन ए.डब्ल्यु. टी. वेब (सीनियर ऑफिसर, ठिकाना सीकर) ने एक प्रस्ताव रखा[9], जिसमें ग्रामीण पुनर्गठन की आवश्यकता बताते हुए कहा गया कि ग्रामोत्थान की कोई भी योजना इस मूलभूत सिद्धांत पर आधारित होनी चाहिए कि भौतिक एवं आर्थिक विकास से ही सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास संभव है। इस तथ्य को पहचानना आवश्यक है कि गरीबी एवं ऋणग्रस्तता, ग्रामीण जीवन की सबसे बड़ी कमी

है तथा जब तक इन दोनों समस्याओं का समाधान नहीं किया जायेगा, तब तक ग्रामीणों के बौद्धिक स्तर को बढ़ाने की आशा रखना एक आदर्शात्मक स्थिति ही रहेगी। ग्रामीण क्षेत्रों के भौतिक एवं आर्थिक विकास हेतु मि. वेब ने निम्नलिखित आवश्यकताओं पर जोर दिया[10]—

● काश्तकारों की भू-राजस्व टैन्योर अवधि की सुरक्षा देना; ● सिंचाई हेतु और अधिक कुएं, बांध तथा अन्य सुविधाओं को बढ़ाना, मुख्य रूप से शेखावाटी क्षेत्र में; ● अच्छी गुणवत्ता युक्त कृषि-जुताई, कीड़ों पर नियंत्रण, कृषि की उर्वरक क्षमता बढ़ाने के प्रयास, अच्छे बीज तथा नई एवं नकद खेती को प्रोत्साहन, इत्यादि हेतु प्रोत्साहन देना; ● उचित बाजार सुविधाओं को बढ़ाना, इसके अन्तर्गत वित्तीय क्रेडिट, पिछले ऋणग्रस्तता का परिसमापन और निर्यात टैरिफ का एक संभावित संशोधन लागू करना तथा ऋणग्रस्तता से राहत देने के लिए भावनगर योजना को जयपुर में लागू किया जाना; ● जंगली जानवरों से फसलों की रक्षा करना- सुअर, रोज (नीलगाय) तथा हिरणों द्वारा फसलों को गंभीर नुकसान पहुंचना, कृषकों की एक वास्तविक समस्या बताई गई; ● कॉटेज इंडस्ट्रीज को बढ़ावा देना, इसके अन्तर्गत कस्बे के लोगों के लिए ग्रामीण क्षेत्रों से कच्चा माल उपलब्ध कराये जाने को प्रोत्साहन दिया जाये; ● नए छोटे स्तर के उद्योगों की स्थापना—जयपुर राज्य की आयात निर्यात नीति का अध्ययन करने पर स्पष्ट है कि पूर्व में यह राज्य लगभग आत्मनिर्भर था। अत: पुन: वह स्थिति प्राप्त करने के लिए नए छोटे उद्योगों की स्थापना आवश्यकता पर जोर दिया गया।

दिनांक 12 अप्रैल, 1938 को 'ग्रामीण विकास समिति' की इस प्रथम मीटिंग में सर्वसम्मति से निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किये गये[11]—

1. समिति ने 'ग्रामीण विकास' शब्द के निहितार्थ पर गहन चर्चा करते हुए निष्कर्ष निकाला कि कृषकों को उनके राजस्व टेन्योर अवधि की सुरक्षा एवं आनुवांशिक अधिकार दिये जाने के आश्वासन के बिना 'ग्रामीण विकास' पूरे राज्य में होना संभव नहीं होगा।
2. कर्नल कोल ने प्रस्ताव रखा कि अन्य उपायों के अलावा, राज्य को शुरुआती अवसर पर कानून बनाना चाहिए, ताकि अप्रतिबंधित ऋण देने से उत्पन्न बुराइयों को कम किया जा सके। पूर्व ऋणग्रस्तता समाप्ति हेतु भी उपयुक्त कानून बनाए जाने की आवश्यकता बताई गई।

3. समिति ने संवत् वर्ष 1995 (1 सितम्बर, 1938 से 31 अगस्त, 1939) में 'ग्रामीण विकास योजना' हेतु कम से कम 40000 रूपयों का बजट दिया जाना आवश्यक बताया।

4. समिति ने यह भी स्पष्ट किया कि जब तक पर्याप्त निधि उपलब्ध नहीं होगी, तब तक ग्रामीण विकास योजना के सफल क्रियान्वयन की गारंटी नहीं दी जा सकती।

5. यह निर्णय भी किया गया कि प्रस्तावित योजना के अन्तर्गत गांवों का चयन करते समय सड़क एवं रेल मार्गों से उन गांवों के जुड़ने की सुविधा हो। यह भी सुनिश्चित किया गया कि चयनित गांवों में या उसके आसपास के क्षेत्र में राजकीय औषधालय स्थित हो, जहां कुछ उत्साही स्वैच्छिक कार्यकर्त्ताओं को तैयार करने की संभावना हो तथा जिनकी आबादी 500 से 1000 के मध्य हो।[12]

6. प्रमुख ठिकानेदारों से भी इस योजना को कम से कम ठिकाने के एक गांव में लागू करने के लिए निवेदन किया जायेगा तथा उन्हें इस कार्य हेतु समिति द्वारा यथासंभव परामर्श दिया जायेगा।

7. अन्त में अगली मीटिंग की तारीख तय कर निदेशक (शिक्षा विभाग), निदेशक (चिकित्सा सेवाएं) तथा राजस्व मंत्री की सम्मिलित उपसमिति का गठन किया गया।

जयपुर राज्य द्वारा शुरू की गई ग्रामीण विकास योजना के अन्तर्गत खालसा क्षेत्र के निम्नलिखित गांवों का चयन किया गया—

सारणी-2

ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अंतर्गत चयनित गांवों का विवरण[13]

पूर्वी विभाजन		पश्चिमी विभाजन	
तहसील	गांव	तहसील	गांव
लालसोट	i. डिडिवाना ii. मण्डावरी iii. कल्याणपुर iv. छानसाइन	सवाई माधोपुर	i. भांखरोटा ii. सांगानेर iii. तुंगा iv. पाटन
दौसा	i. भंडाना ii. खैरवाल iii. झारैड़ा iv. पापरदा	चाकसू	i. शिवदासपुरा ii. माधोराजपुरा iii. रेनवाल iv. मोहनपुरा
घौंसला	i. मुंदरी ii. पीपरलखेड़ा iii. क्यारड़ा iv. बोनल	जमवा रामगढ़	i. भानपुरा कलां ii. आंधी iii. तलाह iv. चांवडिया
वजीरपुर	i. फुलवाड़ा ii. बारौली iii. खानदीप iv. भरौंदा	बैराठ	i. पावटा ii. बगरू iii. रामपुरा iv. अन्तेला
मलारपुर-डूंगर	i. मलारना चौड़ ii. भादोती iii. बिच्छोछ iv. भूका	आम्बेर	i. गोविन्दगढ़ ii. छांवड-का-मिंड iii. ल्बाना iv. गुनाओत
खंडार	i. भूरी पहाड़ी ii. भरौंदा iii. कुंडेरा iv. बरवास		

'ग्रामीण विकास समिति' की नवम्बर, 1938 ई. की प्रस्तावित मीटिंग में निम्नलिखित कार्य सूची प्रस्तुत की गई।[14]

1. कृषि के उन्नतिकरण हेतु आयातित उन्नत कृषि औजारों तथा कृषि बीजों पर कस्टम विभाग द्वारा कस्टम ड्यूटी से मुक्त किया जाये। यह भी प्रस्ताव रखा गया कि इन उन्नत कृषि उपकरणों, जैसे-फसल काटने की मशीनें, जुताई की मशीनें तथा कुओं (Boring) में सुधार के उपकरण, इत्यादि की कीमतें बहुत ही कम रखी जाये, जिससे किसानों द्वारा सरलता से इनका उपयोग किया जा सके।
2. कुओं की बोरिंग को ज्यादा प्रचलित किया जाये। राज्य द्वारा इस प्रकार के कुओं के निर्माण में रियायत देकर कृषकों को इसके उपयोग के विषय में बताया जाये तथा इनकी निर्माण लागत का आधा भाग राज्य द्वारा तथा आधा भाग खेत के मालिक द्वारा वहन किया जाये। इस प्रकार के कुओं का निर्माण उन कृषकों के खेतों में करवाया जाये जो ग्रामीण विकास कार्यक्रम को पूर्ण सहयोग दे रहे थे।
3. वर्तमान में कृषक, पशु चारे के लिए उपयोगी फसलों को उगाने में रुचि नहीं ले रहे थे। चारा फसलों को प्रोत्साहन देने हेतु इनकी खेती किये जाने पर रियायत दी जानी चाहिए। चारा फसलों वाले खेतों से तय किये गये लगान से कम लगान की वसूली की जानी चाहिए।
4. यह प्रस्ताव रखा गया कि पशुओं के बधियाकरण के पुराने क्रूर तरीकों को 'पशुक्रूरता निवारण अधिनियम' के अन्तर्गत अपराध घोषित कर पशुओं के प्रति क्रूरता को रोका जाये।
5. पशु बधियाकरण के परम्परागत क्रूर तरीके को प्रतिबंधित कर रक्तरहित पद्धति 'बरदीज्जो' (Burdizzo) को परीक्षण अवधि के लिए शुरूआत की गई। कृषि विभाग द्वारा जारी 'मवेशी सुधार' कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रत्येक तहसील में नियुक्त कर्मचारियों को पशु बधियाकरण की इस नई पद्धति का प्रशिक्षण दिया गया तथा उन्हें 'बरदीज्जो पिकर्स' दी गई।
6. यह प्रस्ताव रखा गया कि कम से कम दो पशु चिकित्सकों की नियुक्ति की जाये तथा उन्हें सभी आवश्यक चिकित्सा उपकरण, दवाईयां, सीरम और टीके उपलब्ध करवाये जायें ताकि वे ग्रामीण क्षेत्रों में जाकर पशुओं में फैलने वाली बीमारियों के फैलाव को रोकने हेतु यथोचित प्रयास कर सकें।
7. दीवानी क्षेत्र के किसानों के लिए जलसों का आयोजन समय-समय पर किया जाये तथा ग्रामीण विकास में भाग लेने वाले किसानों को नवीन कृषि उपकरण

उपहार में देकर पुरस्कृत किया जाये। पुरस्कार हेतु तीनों विभागों कृषि, मेडिकल तथा शिक्षा विभाग द्वारा प्रस्ताव प्रस्तुत किये जायें।

8. राजस्व विभाग के समक्ष प्रस्ताव रखा गया कि किसानों को, पेड़ों के समूह लगाने के लिए जो जमीन दी जाये वो जितना संभव हो उतना उनके कुओं के निकट स्थित हो। अभी तक इस प्रकार की जमीन बंजर शामलात भूमि में से दी जा रही थी।
9. उन्नत खेती से प्राप्त कृषि उत्पादों के उचित मूल्य प्राप्ति हेतु ग्रामीण विकास के गांवों में मार्केटिंग समितियां स्थापित किया जाना आवश्यक बताया गया।
10. ग्रामीण विकास कार्यक्रम में कार्यरत कर्मचारियों की संख्या को बढ़ाया जाना आवश्यक बताया गया।
11. जिन गांवों में उन्नत नस्ल के बैल उपलब्ध हो गये हों, वहां पर कमजोर नस्ल के बैलों का अनिवार्यतः बधियाकरण करवाया जाये।
12. कुछ गांवों का चयन पूर्व में ग्रामीण विकास कार्यक्रम लागू करने हेतु किया गया जिनको विभिन्न कारणों से हटा दिया गया।[15] वे गाँव हैं अजीतगढ़, तालाह, गोनेर, पीलोदा, भैरवदां कलां एवं डूंगरी।

वर्ष 1937-38 में जयपुर रियासत में प्रारंभ किए गए 'ग्रामीण विकास कार्यक्रम' के धीरे-धीरे सकारात्मक परिणाम प्राप्त होने लगे। कृषि योग्य भूमि, कृषि उत्पादन, कुंओं एवं टैंकों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हुई। परिणामस्वरूप भू-राजस्व में भी वृद्धि हुई। वर्ष 1937-38 की जयपुर प्रशासनिक रिपोर्ट के अनुसार इस योजना के अंतर्गत तहसील व्यवस्थापक के रूप में नियुक्त किए गए तथा 99 स्कूलों में उद्यान पाठ्यक्रम शुरू किए गए। 32 स्कूलों में हस्तशिल्प प्रशिक्षण भवन बना गए तथा प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम में बड़ी संख्या में छात्रों को पंजीकृत किया गया। चयनित गांवों में 12 मुकद्दम नियुक्त किए गए, जो कृषकों को प्रशिक्षित करने के लिए कृषि प्रदर्शनी लगाते थे। 20 हिसार नस्ल के बैल खरीदकर बस्सी फार्म में रखे गए। खड्डे खोदकर खाद रखने का प्रयोग बड़े स्तर पर कृषकों को सिखाया गया। कुएं बनवाएं गए। दवाईयों का वितरण किया गया। सार्वजनिक स्वास्थ्य कार्यक्रम प्रारंभ किया गया तथा ग्रामीणों को व्यक्तिगत व सामूहिक स्वच्छता कार्यों से परिचित करवाया गया।[16] वर्ष 1941-42 में जयपुर रियासत में Grow more Food and Fodder Campaing शुरू किया गया तथा खाद्य एवं पशुचारा फसलों के उत्पादन के उत्पादन को बढ़ाने हेतु निरन्तर प्रयास किए गए। इस कार्यक्रम के अंतर्गत मुख्य खाद्य फसलों का उत्पादन क्षेत्र वर्ष 1941-42 में 8,13,269

एकड़ से बढ़कर वर्ष 1942-43 में 12,01,804 एकड़ हो गया।[17] वर्ष 1942-43 में 'ग्रामीण विकास बोर्ड' का गठन किया गया तथा नवम्बर, 1942 में ग्रामीण विकास विभाग, कृषि विभाग के साथ एकीकृत कर दिया गया तथा कुछ समय पश्चात् ग्रामीण विकास विभाग समाप्त कर दिया गया।[18] इसके स्थान पर ग्रामीण विकास बोर्ड, युद्धोपरान्त पुर्नगठित कृषि उप समिति, केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड तथा टिड्डी नियंत्रण अधिकारी व बाजारीकरण अधिकारी की नियुक्ति की गई।[19] अब कृषि एवं ग्रामीण विकास का कार्य उक्त संस्थाओं एवं अधिकारियों के निर्देशन में सम्पन्न किया जाने लगा।

जयुपर रियासत द्वारा लागू 'ग्रामीण विकास योजना के सकारात्मक परिणाम प्राप्त हुए। यद्यपि वर्ष 1939-40 ई. में राज्य में अकाल की परिस्थितियां उत्पन्न हो जाने के कारण इस वर्ष कृषि एवं ग्रामीण विकास कार्यक्रम में कुछ शिथिलता आई परन्तु शिक्षा के क्षेत्र में संतोषजनक प्रगति हुई। वर्ष 1939-40 ई. की प्रशासनिक रिपोर्ट में उल्लेख है कि इस सत्र में प्रौढ़ शिक्षा के दो सत्र पूर्ण हुए तथा 226 प्रौढ़ छात्रों ने साक्षरता परीक्षा उत्तीर्ण की। 143 छात्राओं में प्राथमिक शिक्षा ग्रहण की, सात स्कूलों में सह-शिक्षा प्रारंभ की गई तथा पावटा में कन्या विद्यालय की स्थापना की गई। 32 गांवों में मेडिकल कैम्प लगाए गए तथा 11,253 ग्रामीणों का सफल उपचार किया गया। जून, 1940 से 30 सितम्बर, 1940 के मध्य इस योजनान्तर्गत सम्मिलित 45 गांवों की स्वयंसेवी संस्थाओं को निम्नलिखित विषयों का प्रशिक्षण दिया गया-पशु चिकित्सा, चिकित्सीय सहायता एवं ग्रामीण स्वच्छता, स्काउटिंग, कृषि तकनीक इत्यादि। योजना के प्रचार हेतु इस वर्ष एक सिनेमा प्रोजेक्ट, माइक्रोजोन व एम्पलीफायर तथा लाउड स्पीकरों की भी व्यवस्था की गई। 31 अगस्त, 1940 को 'ग्राम सुधार पत्रिका' का प्रथम भाग जारी किया गया (महाराजा साहब बहादुर के जन्मदिवस के उपलक्ष्य में)।[20] वर्ष 1941-42 में Grow more Food and Fodder Campaing कार्यक्रम चलाया गया तथा जनवरी, 1941 में उन्नत सब्जियों के उत्पादन हेतु बसवा में एक फार्म स्थापित किया गया। यहां पर एक सर्किल ऑफिसर तथा एक मुकद्दम व एक चौधरी नियुक्त किया गया। इस वर्ष कृषकों को 1000 मण बीज वितरित किया गया- गेहूं, जौ, पूसा मूंग, कपास (सी. 520), गंगापुरी मूंगफली, गन्ने के बीज तथा 45 पाउण्ड सब्जियों के बीज भी वितरित किए गए।[21] वर्ष 1937-38 से वर्ष 1941-42 तक जयपुर राज्य के खालसा क्षेत्र में कृषि क्षेत्र में विकास को निम्नलिखित सारणी के माध्यम से समझा जा सकता है— सारणी-3

सारणी-3

वर्ष 1937-38 से वर्ष 1941-42 तक खालसा क्षेत्र में कृषि एवं भू-राजस्व का विवरण[22]

क्र.सं.	विषय	वर्ष 1937-38	वर्ष 1938-39	वर्ष 1939-40	वर्ष 1940-41	वर्ष 1941-42
1.	कुल खालसा क्षेत्र	3,224 वर्ग मील	3,224 वर्ग मील	3,224 वर्ग मील	......	......
2.	कृषि भूमि (बीघा) (खालसा क्षेत्र)	14,67081 बीघा	13,51,836 बीघा	13,73,501 बीघा	.....	15,46,838 बीघा
3.	गांवों की संख्या (खालसा क्षेत्र)	2,135	2,147	2,164	2,167	2,176
4.	कुंओं की संख्या (खालसा क्षेत्र)	49170	50,146	52,054	52,717	60,685
	(1) उपयोग में	(1) 32,925	(1) 33,754	(1) 34,697	.....	.....
	(2) अनुपयोग में	(2) 16,245	(2) 16,392	(2) 17,357	.....	.....
5.	टैंकों की संख्या (खालसा क्षेत्र)	670	671	737	.....	940
	(1) उपयोग में	(1) 498	(1) 423	(1) 267	.....	(1) 615
	(2) अनुपयोग में	(2) 172	(2) 248	(2) 470	.....	(2) 325
6.	भू-राजस्व (रुपये में)	38,36112	28,93,270	33,99,870	38,75,915	42,72,064

'ग्रामीण विकास कार्यक्रम' के अंतर्गत ही नवम्बर, 1937 में 'राज्य

परिषद' द्वारा 'ग्राम पंचायत अधिनियम' पारित कर, इस योजनान्तर्गत चयनित गांवों में 'पंचायत बोर्ड' गठित किए गए।[23] वर्ष 1938-39 की प्रशासनिक रिपोर्ट के अनुसार इस वर्ष तक जयपुर रियासत की विभिन्न तहसीलों के 80 गांवों में 'पंचायत बोर्ड' गठित किए गए तथा वर्ष 1938-39 की अवधि में इनके द्वारा 1804 विवाद सुलझाए गए। साथ ही ग्रामों में सड़कों की सफाई, तालाबों में चमड़े की रंगाई करने पर रोक लगाने, मृत पशुओं को दफनाने की व्यवस्था करने तथा कृषि एवं कृषि उत्पादों के भंडारण व्यवस्था को सुधारने संबंधी विभिन्न कार्य भी करवाए गए।[24]

अन्तत: का जा सकता है कि 'ग्रामीण विकास कार्यक्रम' की यह योजना यद्यपि ग्रामीण विकास के क्षेत्र में अत्यन्त उपयोगी सबित हो रही थी तथापि पर्याप्त प्रशिक्षित अधिकारियों के अभाव, ग्रामीण कृषक वर्ग का अशिक्षित, गरीब व ऋणग्रस्तता, कृषि के परम्परागत तरीकों पर अधिक विश्वास तथा सिंचाई के सीमित संसाधन, इस योजना के क्रियान्वयन के समक्ष बड़ी चुनौतियां थी। हालांकि राज्य द्वारा 1942 ई. के पश्चात् भी विभिन्न कृषि विभागों एवं अधिकारियों की व्यवस्था की गई तथा ग्रामीण विकास एवं कृषि उत्पादन बढ़ाने हेतु निरन्तर प्रयास किए जाते रहे। परन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् ही, विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के सफलतम क्रियान्वयन के पश्चात् ही इस क्षेत्र में सफलता प्राप्त हो सकी तथा किसानों को अपनी भूमि पर स्वामित्व प्राप्त हुआ। फिर भी यह एक महत्त्वपूर्ण ग्रामीण विकास योजना कही जा सकती है, जिसका उद्देश्य कृषि उत्पादन में सुधार के साथ-साथ ग्रामीण जीवन स्तर में सुधार करना भी था।

संदर्भ

1. जयपुर एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, वर्ष 1946-47, रा.रा.अभिलेखागार, बीकानेर, पृ. 1
2. वही, पृ. 2
3. जयपुर एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, वर्ष 1937-38, रा.रा.अभिलेखागार, बीकानेर, पृ. 9
4. वही, पृ. 10
5. वही, पृ. 10
6. वही, पृ. 10
7. वही, पृ. 11
8. वही, पृ. 11

9. महकमा खास, रेवेन्यू फाईल नं. 4.188.1939, रा. रा. अभिलेखागार, जयपुर शाखा, सचिवालय, जयपुर, पृ. 1
10. वही, पृ. 2
11. वही, पृ 4
12. वही, पृ 5
13. वही, पृ. 9
14. वही, पृ. 2
15. वही, पृ. 4
16. जयपुर एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, वर्ष 1937-38, रा.रा.अभिलेखागार, बीकानेर, पृ. 11
17. जयपुर एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, वर्ष 1942-43, रा.रा.अभिलेखागार, बीकानेर, पृ. 59
18. वही, पृ. 60
19. वही, पृ. 60
20. जयपुर एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, वर्ष 1939-40, रा.रा.अभिलेखागार, बीकानेर, पृ. 11-12
21. जयपुर एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, वर्ष 1942-43, रा.रा.अभिलेखागार, बीकानेर, पृ. 15
22. जयपुर एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, वर्ष 1937-38 से वर्ष 1941-42 तक, रा.रा.अभिलेखागार, बीकानेर
23. जयपुर एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, वर्ष 1937-38, रा.रा.अभिलेखागार, बीकानेर, पृ. 11
24. जयपुर एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, वर्ष 1938-39, रा.रा.अभिलेखागार, बीकानेर, पृ. 11

डॉ. रश्मि मीना

(सहायक आचार्य)

इतिहास विभाग

जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

❑❑❑

चिकित्सक एवं रोगी के मध्य सम्बन्ध : आवश्यकता एवं चुनौतियाँ

(जशपुर जिले के विशेष संदर्भ में)

• डॉ. क्रेसेन्सिया बक्सला

स्वास्थ्य, औषधि, चिकित्सक एवं रोगी ये सभी समाज के एक अनिवार्य अंग के साथ पारस्परिक अन्र्तसंबंधित हैं। जब भी समाज में चिकित्सक शब्द का उपयोग होता है तब एक ऐसा चेहरा प्रतिबिम्बित होता है जो सेवा के प्रति समर्पित एवं बीमार व्यक्तियों की आशा का केन्द्र बिन्दु होता है। रोगी के जीवन को बचाने में चिकित्सक की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। प्रस्तुत शोध अध्ययन चिकित्सक एवं रोगी के मध्य संबंध : आवश्यकता एवं चुनौतियां (जशपुर जिले के विशेष संदर्भ में) से संबंधित है।

शब्दकुंजी—स्वास्थ्य, चिकित्सक, रूग्णता, संबंध।

प्रस्तावना—स्वस्थ रहना मानव की इच्छा रहती है किन्तु अच्छा स्वास्थ्य आकस्मिक रूप से प्राप्त नहीं होता है इसे प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना पड़ता है[1]। मनुष्य समाज तथा राष्ट्र की एक महत्वपूर्ण इकाई है अत: अच्छे समाज के लिये व्यक्तियों का स्वस्थ होना आवश्यक है[2]। स्वास्थ्य शब्द में व्यक्ति की रोग शून्यता से भी अधिक कुछ निहित है और यह व्यक्ति की शारीरिक व मानसिक वातावरण के संदर्भ में उसके शरीर तथा मस्तिष्क के समरस कार्य संचालन की उस अवस्था की ओर संकेत करता है जिसमें वह यथासंभव पूर्ण बिन्दु तक जीवन का आनंद उठाने और उत्पादन क्षमता के अधिकतम स्तर तक पहुंचने योग्य बनता है[3]। स्वास्थ्य, औषधि, चिकित्सक एवं रोगी ये सभी समाज के एक अनिवार्य अंग हैं ये सभी एक-दूसरे से अन्तर्सम्बन्धित हैं। जब भी समाज में चिकित्सक शब्द का उपयोग होता है एक ऐसा चेहरा प्रतिबिम्बित होता है जो सेवा के प्रति समर्पित एवं बीमार व्यक्तियों

की आशा का केन्द्र बिन्दु होता है। चिकित्सक रोगी के जीवन को बचाने में सबसे अहम योगदान निभाता है न जाने कितने ही रोते हुए चेहरों पर मुस्कान लाने का नेक कार्य प्रतिदिन चिकित्सक करते हैं।

वर्तमान में स्वास्थ्य सेवाएं दुनियाँ की लगभग आधी आबादी की सेहत संभल रही है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने हमेशा प्रत्येक व्यक्ति के लिये रोग, अपंगता और कमजोर स्वास्थ्य से मुक्त जीवन जीने के अधिकारों की वकालत की है[4]। सिंह (2002)[5] ने उतराचंल में रोग की अवधारणा एवं उपचार पद्धति की लोक संस्कृति पर किये गये अध्ययन में रोग की अवधारणा उनके प्रकार, पारम्परिक चिकित्सकों की भूमिका व वनौषधियों के प्रभावी ढंग से व्याधियों के उपचार संबंधी तथ्यों की विवेचना व विश्लेषण किया है। खटावा (1998)[6] ने जशपुर जिले के पहाड़ी कोरवा जनजाति पर किये गये अध्ययन में बताया कि उनके रोग व स्वास्थ्य की अवधारणा, रोग निदान विधियाँ व उनके उपचार व्यवहार में काफी जटिलता प्रदर्शित होती है तथा उनमें रोग के कारण व उपचार पद्धति भी बहुत हद तक जादुई-धार्मिक विश्वास से संबंधित होती है।

स्वास्थ्य सेवाएँ देना किसी वस्तु या समान को बेचने जैसा नहीं है उपचार के दौरान चिकित्सक को रोगी के संबंध में कई ऐसी बातों की जानकारी होती हैं जिनका संबंध रोगी के निजी जीवन से होता है और चिकित्सक भी रोगी की गोपनीय बातों को समाज के सामने उजागर करने से परहेज करते हैं। ये चिकित्सक एवं रोगी के मधुर संबंध का ही स्वरूप है।

चिकित्सक का मुख्य उद्देश्य रोगियों की चिकित्सा के लिये बेहतर सुविधाएँ प्रदान करना एवं किसी भी व्यक्ति की मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य से संबंधित मुद्दों से जुड़ी समस्याओं को दूर करना है। रोगी व्यक्ति भी अपने रोगों का उपचार चिकित्सक से ही कराते हैं सलाह मशविरा करते हैं चिकित्सक भी रोगी व्यक्ति का तब तक उपचार करते हैं जब तक कि किसी रोगी की बीमारी जड़ से खत्म न हो जाए। रोगों के उपचार में रोगी तथा उनके परिजन चिकित्सक पर विश्वास करते हैं। भाट्ट (1984)[7] ने मेघालय की पनार जनजातियों के संदर्भ में स्वास्थ्य व रोग से संबंधित अवधारणाओं, उनके विश्वास व उपचार प्रक्रिया का अध्ययन किया है। उन्होंने पनार जनजाति में उनकी आवश्यकतानुसार वातावरणीय परिवर्तन, अत्यधिक भोजन सेवन, अलौकिक शक्तियों का नाराज होना या टोना-टोटका के रूप में रोग के कारणों को चार भागों में वर्गीकृत किया है।

व्यक्ति का स्वास्थ्य एक परिवर्तनशील प्रक्रिया है यह लोलक की तरह सकारात्मक स्वास्थ्य के एक सिरे से मृत्यु के दूसरे सिरे तक झूलता रहता है जिसके बीच में बेहतर स्वास्थ्य, रोगों से छुटकारा, अनजानी बीमारी, हल्की रूग्णता तथा भारी रूग्णता के बिन्दु पड़ते है[8] स्वास्थ्य जीवन के प्रत्येक पहलुओं को प्रभावित करता है मानव का सर्वांगीण उन्नति का आधार स्वास्थ्य ही है[9] अत: स्वास्थ्य समाज के विकास एवं रोगी के उपचार में चिकित्सक की भूमिका सर्वोपरि होती है।

सारा संसार चाहता है कि सिर्फ रोग की अक्षमता की ही नहीं बल्कि शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक खुशहाली की अवस्था वाले जिसके वे हकदार है, रोग से लड़ना जरूरी है इसलिए सवाल यह है रोग या सेहत? रोगी का स्वास्थ्य तब तक ठीक नहीं होगा, जब तक कि रोगों के उपचार में चिकित्सक का साथ न हो। चिकित्सक के अभाव में स्वस्थ समाज की कल्पना असंभव है। चिकित्सक व्यक्ति एवं समाज को रोगमुक्त रखने में अपना अमूल्य योगदान निभाता है। वह केवल बीमार व्यक्ति को न केवल दवा देता है अपितु उसे वह स्वस्थ व्यक्ति की दिनचर्या भी बताता है उनके आहार-विहार के संबंध में जानकारी देता है लेकिन विडम्बना यह है कि आज चिकित्सकों के समक्ष काफी चुनौतियाँ हैं।

औद्योगिकीकरण, नगरीकरण, पश्चिमीकारण नये-नये तकनीकी उद्योग के अनुसंधान एवं प्रदूषण के कारण नए-नए रोगों का प्रकोप बढ़ने लगा है इसका सबसे ज्वलन्त उदाहरण कोविड-19 है। जो पूरे विश्व के लिए एक चुनौती है इस प्रौद्योगिकी एवं मशीनी युग की दुनियाँ में भी जहाँ स्वास्थ्य क्षेत्र का काफी विस्तार हुआ है लेकिन इसके बावजूद देश में स्वास्थ्य सेवाओं के क्षेत्र में इतनी बदहाली है? दरअसल जन स्वास्थ्य सेवाओं की बदलाही में परिपक्व राष्ट्रीयता की भावना की कमी के साथ-साथ उपभोक्तावादी, भौतिकवादी, नगरीय पूंजीवादी संस्कृति की अहम भूमिका है जिसने चिकित्सकों को आधे भगवान होने के मूल्य को कमजोर किया है ऐसा क्यो? क्या इनका संबंध आमदनी से है? हां! स्वास्थ्य जैसे—जरूरी क्षेत्र जो कि सीधे जीवन से जुड़ा है, उस पर बाजार का प्रभुत्व है। धरती के भगवान कहे जाने वाले चिकित्सकों में सेवाभाव के बजाय पेशागत होना चिकित्सक एवं रोगी के मध्य में कड़वाहट ला रहा है साथ ही जन साधारण की जागरूकता एवं चेतना व अधिकार बोध का कमी होना भी एक महत्वपूर्ण कारण है। आये दिन मीडिया चैनलों एवं समाचार पत्रों

की सुर्खियों में चिकित्सा सेवाओं की अव्यवस्था, चिकित्सक एवं रोगी के मध्य तनाव, कड़वाहट, हो-हल्ला, तोड़फोड़ आदि की खबरें देश के किसी न किसी हिस्से से आती रहती हैं। इन परिस्थितियों में रोगी एवं उनके परिजन चिकित्सक पर कारवाई की मांग करते हैं दूसरी तरफ चिकित्सक भी इसके विरोध में हड़ताल पर चले जाते हैं इससे चिकित्सक एवं रोगी दोनों प्रभावित होते हैं। ऐसी स्थिति में चिकित्सक के सामने काफी चुनौतयाँ होती हैं। चिकित्सक एवं रोगी के मध्य संबंध बहुत ही संवेदनशील होता है। इन परिस्थितियों में दोनों के मध्य विश्वास की आवश्यकता है।

समाज के लोगों को चिकितसक से काफी उम्मीदें होती हैं क्योंकि चिकित्सा के व्यवसाय में माननीय संवेदना का बहुत महत्व है। रोगी को सहानुभूति एवं हमदर्दी के साथ-साथ दुलार की भी आवश्यकता होती है। उपचार के दौरान अनहोनी होने पर रोगी या परिजनों के द्वारा चिकित्सालय में तोड़-फोड़ करना या चिकित्सक को अपशब्द कहना या उस पर हमला करना अपरिपक्व मानसिकता का परिचायक है। यह आवश्यक है कि देश में स्वास्थ्य प्रणाली में सुधार की बुनियादी आवश्यकताओं में एक अच्छा चिकित्सक होना आवश्यक है। जाहिर है बुनियादी स्वास्थ्य सेवाओं को मजबूत एवं प्रभावी बनाए बगैर स्वस्थ समाज की कल्पना बेमानी है। अतः चिकित्सक का मान सम्मान करना हर व्यक्ति का परम दायित्व है जिससे कि चिकित्सक एवं रोगी तथा परिजनों के मध्य मधुर संबंध बने रहें।

महर्षि चरक ने कहा है कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों का मूलाधार समाज है। मानव जीवन की सफलता धर्म अर्थ काम, मोक्ष प्राप्त करने में निहित है किन्तु सबका आधार है मनुष्य का स्वास्थ्य। स्वास्थ्य का प्रत्येक व्यक्ति एवं समाज से गहरा संबंध है इसमें चिकित्सकों की भूमिका सर्वोपरि होती है अतः व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र के विकास में स्वस्थ समाज अति महत्वपूर्ण है।

प्रस्तुत अध्ययन चिकित्सक एवं रोगी के मध्य संबंध-आवश्यकता एवं चुनौतियां (जशपुर जिले के विशेष संदर्भ में) से संबंधित है। प्रस्तुत शोध अध्ययन में चिकित्सक एवं रोगी के मध्य संबंध तथा चिकित्सक एवं रोगी के मध्य बिगड़ते रिश्ते के कारण एवं इनके निवारण हेतु गहन चिंतन जैसे तथ्यों को रेखांकित करने प्रयास किया गया है।

उत्तरदाताओं का चयन—प्रस्तुत शोध अध्ययन में अध्ययन हेतु जशपुर जिले के दो चिकित्सालयों का चयन किया गया है :— 1. शासकीय जिला चिकित्सालय जशपुर नगर, 2. निजी चिकित्सालय कुनकुरी। इन दोनों चिकित्सालयों से उत्तरदाताओं का चयन दो भागों में किया गया है, प्रथम भाग में शासकीय जिला चिकित्सालय जशपुर नगर में पंजीकृत 750 में से 75 (10 प्रतिशत) एवं द्वितीय भाग में निजी चिकित्सालय कुनकुरी में पंजीकृत 550 (10 प्रतिशत) रोगी का चयन उत्तरदाता के रूप में किया गया है इस प्रकार कुल 150 उत्तरदाताओं का चयन उद्देश्य निदर्शन के माध्यम से किया गया है।

तालिका क्रमांक - 1

क्रम	जिला	उत्तरदाताओं का चयन चिकित्सालय	चिकित्सालय में पंजीकृत रोगियों की संख्या	अध्ययन हेतु चयनित उत्तरदाता (10%)
1.	जशपुर	1. शासकीय जिला चिकित्सालय जशपुर नगर	750	75
		2. निजी चिकित्सालय कुनकुरी	550	55
		योग	1300	130

प्रस्तुत अध्ययन में तथ्यों के संकलन हेतु साक्षात्कार उपकरण का उपयोग किया गया है एवं अवलोकन प्रविधि की सहायता से आवश्यक सूचनाओं का संकलन किया गया है तथा अध्ययन से संबंधित जानकारी प्राथमिक स्रोतों के साथ-साथ आवश्यकतानुसार द्वितीयक स्रोतों से भी प्राप्त किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन में अध्ययनगत उत्तरदाताओं से चिकित्सक एवं रोगी के मध्य संबंध जैसे संबंधित तथ्यों को जानने का प्रयास किया गया है जिसका विवरण तालिका क्रमांक 02 में दर्शाया गया है—

तालिका क्रमांक-2

चिकित्सक एवं रोगी के मध्य संबंध

क्रम	संबंध	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	बहुत अच्छा	56	43
2.	अच्छा	35	27
3.	सामान्य	39	30
4.	खराब	–	–
5.	बहुत खराब	–	–
	योग	130	100

उपर्युक्त तालिका से ज्ञात होता है कि 43 प्रतिशत उत्तरदाता ने कहा कि चिकित्सक एवं रोगी के मध्य संबंध बहुत अच्छा होना चाहिए, 27 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने अच्छा एवं 30 प्रतिशत उत्तरदाता ने सामान्य होना चाहिए कहा, खराब या बहुत खराब किसी ने नहीं कहा। इससे यह स्पष्ट होता है कि— चिकित्सक एवं रोगी के मध्य संबंध प्रायः अच्छे एवं मधुर होते हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में चिकित्सक एवं रोगी के मध्य बिगड़ते रिश्ते के कारणों को जानने का प्रयास किया गया है जिसका विवरण तालिका क्र. 03 में वर्णित है

तालिका क्रमांक-3

चिकित्सक एवं रोगी के मध्य बिगड़ते रिश्ते का कारण

क्रम	बिगड़ते रिश्ते का कारण	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	चिकित्सक में कुशल व्यवहार का अभाव, संवेदनशीलता एवं सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार का अभाव, वार्ता एवं संवाद की अल्प अवधि, संक्षिप्त परामर्श अवधि, चिकित्सकों का दबाव इत्यादि।	42	32

2.	रोगी की समुचित परामर्श में कमी, चिकित्सक पर कार्यभार अधिक होने का दबाव, उचित परामर्श का अभाव, आवश्यकता से अधिक औषधि पर खर्च, रोगी का चिकित्सक पर अधिक निर्भरता इत्यादि।	36	28
3.	चिकित्सक की संख्या में भारी असमानता, सही चिकित्सक के चयन का अभाव, चिकित्सक की उपलब्धता में कमी, चिकित्सकीय सेवा का फीस अधिक होना, चिकित्सकीय भूलों की जोखिम का बढ़ना, बदलती कार्य संस्कृति से चिकित्सकों में निराशा इत्यादि।	24	18
4.	रोगी एवं उनके परिजनों का चिकित्सक से पर कार्यभार अधिक होने का दबाव, उचित कुशल व्यवहार का अभाव, चिकित्सक की चिकित्सा पर विश्वास की कमी, चिकित्सक से वाद-संवाद का अभाव, ड्यूटी उपरान्त चिकित्सक का नदारद होना, बुनियादी सुविधाओं का अभाव, अनुकुल परिस्थितियों का अभाव आदि।	28	32
	योग	130	100

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि 32 प्रतिशत उत्तरदाता चिकित्सक एवं रोगी के मध्य बिगड़ते रिश्ते के लिये चिकित्सक में कुशल व्यवहार का अभाव, संवेदनशीलता एवं सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार का अभाव, वार्ता एवं संवाद की अल्प अवधि, संक्षिप्त परामर्श अवधि, चिकित्सकों का दबाव इत्यादि जैसे कारणों को उत्तरदायी मानते हैं जबकि 28 प्रतिशत उत्तरदाता रोगी को रोगी की समुचित परामर्श में कमी, चिकित्सक पर कार्यभार अधिक होने का दबाव, उचित परामर्श का अभाव, आवश्यकता से अधिक औषधि पर खर्च, रोगी का चिकित्सक पर अधिक निर्भरता इत्यादि को उत्तरदायी मानते हैं, 18 प्रतिशत उत्तरदाता चिकित्सक की संख्या में भारी कमी एवं असमानता, सही चिकित्सक

के चयन का अभाव, चिकित्सक की उपलब्धता में कमी, चिकित्सकीय सेवा का फीस अधिक होना, चिकित्सकीय भूलों की जोखिम का बढ़ना, बदलती कार्य संस्कृति से चिकित्सकों में निराशा इत्यादि को उत्तरदायी मानते है, 22 प्रतिशत उत्तरदाता रोगी एवं उनके परिजनों का चिकित्सक से कुशल व्यवहार का अभाव, चिकित्सक की चिकित्सा पर विश्वास की कमी, चिकित्सक से वाद-संवाद का अभाव, ड्यूटी उपरान्त चिकित्सक का नदारद होना, बुनियादी सुविधाओं का अभाव, अनुकूल परिस्थितियों का अभाव आदि को चिकित्सक एवं रोगी के मध्य बिगड़ते रिश्तों लिए उत्तरदायी कारण मानते हैं।

चिकित्सक एवं रोगी के मध्य बिगड़ते रिश्ते पर निवारण हेतु गहन चिन्तन एवं उत्तरदाता के सुझाव को चित्रित करने का प्रयास किया गया है जिसे तालिका क्रमांक 04 में दर्शाया गया है।

तालिका क्र. 4

चिकित्सक एवं रोगी के मध्य बिगड़ते रिश्ते पर निवारण हेतु सुझाव

क्रम	बिगड़ते रिश्ते पर निवारण हेतु सुझाव	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	चिकित्सक एवं रोगी के मध्य मधुर संबंध की आवश्यकता संवेदनशीलता एवं सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार के साथ उपचार, चिकित्सक एवं रोगी के मध्य वाद-संवाद के लिए अत्यधिक अवधि, सही तरीके से उपचार एवं खर्चे सीमित होना आदि।	0	0
2.	बुनियादी सुविधाओं की उपलब्धता, चिकित्सक का ड्यूटी अवधि के पश्चात भी चिकित्सक का रोगी के उपचार में आवश्यकता एवं सेवाभाव से उपचार की आवश्यकता, रोगी एवं परिजनों के द्वारा भी चिकित्सक के साथ कुशल व्यवहार की एवं मान-सम्म्मान की आवश्यकता है।	0	0
3.	चिकित्सकों में अभिमान एवं पक्षपात की भावना न हो, चिकित्सकों के व्यावसाय का बाजरीकरण न हो, रोगी एवं उनके परिजन	0	0

	द्वारा चिकित्सकों की चिकित्सा भरोसा, अनुकूल परिस्थितियाँ होने पर चिकित्सा से खुलकर चर्चा एवं वार्ता आदि।		
	योग	130	100

उपरोक्त तालिका से ज्ञात होता है कि चिकित्सक एवं रोगी के मध्य बिगड़ते रिश्तों के निवारण हेतु 40 प्रतिशत उत्तरदाता ने यह सुझाव दिया चिकित्सक एवं रोगी के मध्य मधुर संबंध की आवश्यकता, संवेदनशीलता एवं सहानुभूति पूर्ण व्यवहार के साथ उपचार, चिकित्सक एवं रोगी के मध्य वाद-संवाद के लिए अत्यधिक अवधि, सही तरीके से उपचार एवं खर्चे सीमित होना आदि का सुझाव दिया गया जबकि 35 प्रतिशत उत्तरदाता बुनियादी सुविधाओं की उपलब्धता, चिकित्सक के द्वारा ड्यूटी अवधि के पश्चात भी सेवाभाव से उपचार की आवश्यकता, रोगी एवं परिजनों के द्वारा भी चिकित्सक के साथ कुशल व्यवहार एवं मान-सम्म्मान की आवश्यकता, चिकित्सकीय पेशे का बाजारीकरण नहीं होने जैसे तथ्यों का सुझाव दिया गया, 25 प्रतिशत उत्तरदाता चिकित्सकों में अभिमान एवं पक्षपात की भावना नहीं होने, चिकित्सकों के व्यावसाय का बाजारीकरण नहीं होने, रोगी एवं उनके परिजन के द्वारा चिकित्सक के चिकित्सा पर भरोसा करने एवं अनुकूल परिस्थितियाँ होने पर चिकित्सक से खुलकर चर्चा एवं वार्ता करने जैसे बातों का सुझाव दिया गया।

निष्कर्ष—स्वास्थ हर व्यक्ति का जन्म सिद्ध अधिकार है। देश में स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली में सुधार की बुनियादी आवश्यकताओं में एक अच्छे चिकित्सक का होना आवश्यक है। जाहिर है बुनियादी स्वास्थ्य सेवाओं को मजबूत एवं प्रभावी बनाए बगैर स्वस्थ समाज की कल्पना बेमानी है समाज एवं देश के विकास में चिकित्सक की भूमिका सर्वोपरि होती है। अतः चिकित्सक एवं रोगी के मध्य मधुर संबंध होने की आवश्यकता है।

संदर्भ-सूची

1. बी.डी. हरवालाणी, *मातृकला, शिशु पालन एवं बाल विकास,* अग्रवाल पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण 2011, नई दिल्ली, पृ. 197.
2. उमेश कुमार वर्मा, *(भारत का जनजातीय समाज,* इंस्टीट्यूट फॉर सोशल डेवलपमेंट एण्ड रिसर्च, रांची, झारखण्ड, पृ. 127.

3. जी आर मंदन (*भारतीय सामाजिक समस्याएं,* विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली-7, पांचवा संस्करण 2000, पृष्ठ-267.

4. गिरिश कुमार, *समाज कार्य के क्षेत्र,* महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी उत्तर प्रदेश, हिन्दी संस्थान लखनऊ, प्रथम संस्करण-1996, पृ. 121-139.

5. A.P. Singh; *Concept of Disease and Healing Among the folkcutrers* of Uttaranchal Himalaya,-*Jour,* Ori. Anth. 2(1), 2002, P. 51-54.

6. N. Khatua, 'Sickness and healing among the Hill korwas', a paper Persented at the National Seminar on Health Hygiene, Andhra University, Vishakhapatnam' (A.P.), 1998.

7. K.H. Bhatt, *concept of Health and Disease Among the Panars of Meghalaya,* in Tribal Health, Socio Culture Dimensions (Buddha Chaudhuri. Ed.), Inter-India publication, New Delhi, 1986.

8. ए.के. श्रीवास्तव, *शारीरिक शिक्षा एवं स्वास्थ्य* कक्षा-XII, स्पोर्ट्स पब्लिकेशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2004, पृ. C3.66.

9. अशोक प्रधान, *जनजातीय जनांकिकी* (छ.ग. के संवारा जनजाति के विशेष संदर्भ में) (शताश्री प्रकाशन, रायपुर, संस्करण, 2004, पृ. 178.

10. महेश शुक्ल, मोहम्मद शरीफ खान, *खैरवार जनजाति* (सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन), अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, प्रथम संस्करण, 2004, पृ. 98.

डॉ. क्रेसेन्सिया बक्सला

(Asst. Professor)

Lt. Shri Jayadev Satpathi Govt. College

Basna, Mahasamund (C.G.)

❑❑❑

गाँधी की बुनियादी शिक्षा योजना : वर्तमान में प्रासंगिकता एवं सम्भावनाएँ

• डॉ. कैलाश चन्द गुर्जर

शोध सारांश

महात्मा गाँधी एक प्रयोगकर्ता के रूप में मानव कल्याण की भावना से ओत-प्रोत आदर्श पुरुष थे। उनके कार्यों एवं विचारों के लक्ष्य समाज व मानव का उत्थान, अन्याय व शोषण का विरोध, अवसरों की समान उपलब्धता, हर व्यक्ति को स्वावलम्बन के साथ विकास करने का अधिकार आदि था। गांधी की शिक्षा साक्षर बनाने वाली न होकर एक आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति का संकल्प थी। उनके लेखों एवं भाषणों से स्पष्ट होता है कि वे परिश्रम आधारित रोजगारपरक शिक्षा व्यवस्था का समर्थन करते थे। स्वावलम्बन का विकास ही स्वास्थ्य एवं समृद्ध व्यक्तित्व का निर्माण कर सकता है जिससे समाज व राष्ट्र का आदर्श रूप तैयार किया जा सकता है। अत: गाँधीजी प्रत्येक व्यक्ति को स्थानीय वातावरण एवं जरूरतों के अनुसार काम उपलब्ध कराने की शिक्षा पद्धति को बढ़ावा देना चाहते थे। गाँधी की शिक्षा योजना मूलत: परिश्रम, रोजगार, बौद्धिक कुशलता, आध्यात्मिकता एवं नैतिकता जैसे आयामों का मिश्रण थी।

संकेताक्षर : बुनियादी शिक्षा, स्वावलम्बन, शिल्प-कला, गुरुकुल पद्धति, शिक्षा आयोग, नई शिक्षा नीति, शैक्षणिक संस्थान, पाठ्यक्रम, राष्ट्रीय शिक्षा, पाश्चात्य शिक्षा।

महात्मा गाँधी एक युग पुरुष थे। आज भी वैश्विक स्तर पर गाँधी के सत्य, अहिंसा व नैतिक मूल्यों का प्रयोग किया जा रहा है। इसी कड़ी में गाँधी की बुनियादी शिक्षा व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास का साधन मानी जा सकती है। शिक्षा व्यक्ति को सभी समस्याओं को पहचान कर उनका समाधान निकालने का मार्ग

प्रशस्त करती है। गाँधी की शिक्षा सामाजिक समानता, आर्थिक सम्मान अवसरों की उपलब्धता, नैतिक व मानवीय मूल्यों का समर्थन करती है।

गाँधी की बुनियादी शिक्षा 3H (Head, Hand, Heart) पर आधारित थी। इसमें स्वावलम्बन और जीविकोपार्जन के साथ-साथ चरित्र निर्माण की व्यवस्था थी। गाँधी का आदर्श **सा विद्या या विमुक्तये** अर्थात् शिक्षा ही हमें समस्त बन्धनों से मुक्ति दिलाती है। गाँधी की शिक्षा संकल्पना अक्षर ज्ञान तक सीमित ना होकर व्यक्तित्व निर्माण का साधन/हथियार मानी जाती है।

भारत में वर्तमान में प्रचलित अंग्रेजी शिक्षा पद्धति तथा हाल ही में जारी नई शिक्षा नीति 2020 का तुलनात्मक अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि आज के परिवेश में गाँधी की शिक्षा व्यवस्था कितनी कारगर है।

महात्मा गाँधी के प्रत्येक क्षेत्र व विषय में विचार एवं साधन बहुत ही व्यवहारिक एवं मानवीय गुणों का समन्वय है। शिक्षा व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास की महत्वपूर्ण कड़ी होती है।

गांधी के अनुसार शिक्षा की योजना में हाथ में कलम से पहले औजार होना आवश्यक है। गाँधी का मानना है कि तालीम बेसिक व स्वाभाविक होगी जो बच्चों पर लादी नहीं जाएगी बल्कि वे स्वतः ही दिलचस्पी लें। इसीलिये यह तालीम दूसरी तमाम शिक्षा पद्धतियों से जल्दी फल देने वाली और सस्ती होगी।[1] इस प्रकार गाँधी का मानना है कि शिक्षा की संकल्पना में व्यक्ति के शरीर, मन व आत्मा की उत्तम क्षमताओं को उद्घाटित कर प्रकाश में लाया जाये। शिक्षा से मेरा अभिप्राय है—'बालक और मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क व आत्मा में पाये जाने वाले सर्वोच्च गुणों का चहुँमुखी विकास।'[2]

गांधी ने समय-समय पर अपने लेखों व भाषणों के द्वारा शिक्षा सम्बन्धी विचार प्रकट किये। शिक्षा का बहुआयामी स्वरूप प्रस्तुत किया। शिक्षा को व्यक्ति के व्यक्तित्व व कृतित्व का मूल आधार माना। साथ ही शिक्षा को राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक व आर्थिक प्रगति का आधारभूत तत्व भी माना। गांधी के अनुसार साक्षरता शिक्षा नहीं है, स्वावलम्बन शिक्षा है। शिक्षा का मूल उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास है। शिक्षा मातृभाषा में हो, सात वर्ष तक निःशुल्क हो तथा रोजगारपरक हो। गांधी के अनुसार परिवर्तन एवं प्रयोग होते रहने चाहिये।

गांधी जी कहा करते थे कि 'मैं भारत के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा के सिद्धान्त में दृढ़तापूर्वक विश्वास रखता हूँ।[3] गांधी की शिक्षा में आदर्श नागरिक व समाज के निर्माण की भावना थी। समाज में शोषण का स्थान नहीं

हो। गांधी के अनुसार अंगेजी शिक्षा से दम्भ, राग और द्वेष बढ़े हैं।[4] अतः गांधी पाश्चात्य शिक्षा व भाषा के समर्थक नहीं थे। उनका मानना था कि अंग्रेजी भाषा व शिक्षा से भारतीयों का सर्वांगीण विकास नहीं हो सकता अतः भारतीय ज्ञान व भाषा का प्रयोग आवश्यक है।

भारत में बड़े-बड़े कार्यालयों में अंग्रेजी भाषा का बोलबाला है ऐसे में भारतीय नागरिक से न्याय कैसे होगा? इसलिए प्रांतीय भाषाओं की सत्ता कायम करनी चाहिए। उनके अनुसार मातृभाषा मनुष्य के मानसिक विकास के लिए उतनी ही आवश्यक है जिस प्रकार माँ का दूध शिशु के मानसिक विकास के लिए है।

अतः हिन्दुस्तान के निवासियों को अपनी भाषाओं का ज्ञान होना चाहिए। प्रत्येक पढ़े-लिखे व्यक्ति को भी अपनी भाषा व संस्कृति का ज्ञान होना चाहिये। हिन्दू को संस्कृत, मुस्लिम को अरबी, पारसी को फारसी भाषा तथा सभी को हिंदी भाषा का ज्ञान होना चाहिए। हिंदी भाषा को उर्दू या नागरी लिपि में लिखने की छूट होनी चाहिए जिससे कि हिन्दू-मुस्लिम आपस में सद्भाव व समन्वय से अपने सम्बन्ध बनाये रखें।[5]

गांधी के अनुसार हमें पश्चिमी सभ्यता का अधिक प्रभाव नहीं होने देना चाहिये। इंग्लण्ड में ही अंग्रेजी भाषा के बजाय स्थानीय भाषा के प्रयोग का प्रचलन चल रहा है। वेल्स परगने के बालक स्थानीय वेल्स भाषा का प्रयोग करें ऐसा प्रयास किया जा रहा है। दूसरी ओर हम अंग्रेजी भाषा को अपनी शान और शौकत मानने में लगे हैं जो हमारी मौलिक सभ्यता व संस्कृति के लिए घातक सिद्ध हो रही है। भारतीय मानस का अधिकतम विकास अंग्रेजी के ज्ञान के बिना सम्भव होना चाहिये।[6] गांधी के अनुसार अंग्रेजी शिक्षा ने हमें कमजोर बना दिया। साहसी नागरिक का निर्माण अंग्रेजी शिक्षा नहीं कर सकती।[7] गांधी के अनुसार श्रम की शिक्षा आवश्यक रूप से देनी चाहिए। प्रारम्भ से ही श्रम का महत्व समझाया जायेगा तो व्यक्ति अपने पारिवारिक एवं परम्परागत पेशे कृषि व मजदूरी व शिल्प आदि से दूर नहीं जा पायेगा।[8]

गांधी का मानना है कि शिल्प, कला, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि को एक योजना में समन्वित कर एक उपयोगी तालीम की व्यवस्था करनी चाहिये। शिल्प और उद्योग को शिक्षा से अलग न मानकर शिक्षा का ही अंग मानना चाहिये।[9] इस प्रकार आपसी सहयोग व स्वाभिमान की शिक्षा प्राप्त करें, सामुदायिक जीवन पद्धति का अनुसरण करें।

स्त्रियों को पुरुषों के बराबर शिक्षा के साथ-साथ यदि कहीं आवश्यकता

हो तो उन्हें विशेष सुविधा भी दी जाए। गांधी जी स्त्रियों को भी शिक्षा में अग्रणी होने की वकालात करते थे। वे धार्मिक शिक्षा के सन्दर्भ में सभी धर्मों के सिद्धान्तों एवं शिक्षाओं का अध्ययन करने के पक्षधर थे। विद्यार्थियों को ऐसी तालीम दी जानी चाहिये कि संसार के विभिन्न धर्मों के सिद्धान्तों का आदर तथा उदारतापूर्ण सहनशीलता की भावना के साथ उनका आदर व सम्मान करने की आदत डालें।[10] सत्य, अहिंसा, न्याय व भाईचारे के महत्व में विश्वास ही सच्चा धर्म होता है, ऐसी अवधारणा आम व्यक्ति के मन और मस्तिष्क में विकसित करना गांधी की धार्मिक शिक्षा का उद्देश्य रहा है। गांधी सभी धर्मों के नेक सिद्धान्तों को मानवीय विकास के लिए लाभदायक मानते हैं तथा आदर्श व्यक्तित्व, समाज के निर्माण में उनका उपयोग बेहतर किया जाना चाहिये। धार्मिक शिक्षा चाहे स्कूली शिक्षा का हिस्सा ना हो, परन्तु एक प्रौढ़ को अन्य विषयों के साथ-साथ धार्मिक विषयों पर भी अध्ययन व स्वावलम्बन की आदत डालनी चाहिये।[11]

गाँधी धार्मिक शिक्षा में पाखण्ड व अंधविश्वास का समर्थन नहीं करते हैं। वे ऐसी प्राचीन परम्पराओं, मान्यताओं का समर्थन करते हैं जो नीतिगत सत्य पर आधारित आध्यात्मिक विकास का मार्ग प्रशस्त करती हो। आत्मा का पतन व बुद्धि का स्खलन नहीं करती हों। वे ऐसे धर्म-कर्म, विधि-विधान एवं सनातन शास्त्र, अनुमोदित आध्यात्मिक गुणों के प्रबल समर्थक थे।[12]

गाँधी जी का मानना था कि निरक्षर लोगों को साक्षर करना चाहिये परन्तु सिर्फ अक्षर ज्ञान ही नहीं अपितु उन्हें रोजमर्रा की जिन्दगी में काम आने वाली शिक्षा भी देनी चाहिये। प्रौढ़ शिक्षा का समर्थन भी गाँधी ने किया। उन्हें सच्ची शिक्षा होगी सीधी बातचीत के माध्यम से दी जाने वाली शिक्षा। जुबानी तालीम के साथ-साथ लिखने-पढ़ने की तालीम भी चलेगी।

गाँधी ने अपने समय की शिक्षण पद्धति को दोषपूर्ण बताया तथा उसमें बदलाव की आवश्यकता पर बल दिया। उनके अनुसार बालक और शिक्षक के बीच की खाई समाप्त हो। उन्होंने कार्य-प्रधान शिक्षण-पद्धति को अपनाने की जरूरत बतायी। उनके अनुसार विद्यार्थी को निरीक्षणकर्ता एवं प्रयोगकर्ता होना चाहिये। शिक्षण पद्धति के प्रयोगात्मक ढाँचे को विकसित कर उपयोग में लाने पर जोर दिया।

भारत में वर्तमान में मैकाले पद्धति आधारित शिक्षा व्यवस्था संचालित है। प्राचीनकाल में गुरुकुल शिक्षा पद्धति का प्रचलन था। तुलनात्मक दृष्टि से गांधी

की शिक्षा की संकल्पना अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था की बजाय गुरुकुल शिक्षा पद्धति का समर्थन करती नजर आती है। गांधी ने अंग्रेजी शिक्षा पद्धति को बाबू बनाने वाली शिक्षा कहा है। अंग्रेजी शिक्षा भारतीय मूल भी संस्कृति व संस्कारों का पोषण नहीं करके उन्हें नष्ट करने के मार्ग खोलती है। वह भारतीय समाज में विभाजन व शोषणकारी तत्वों को समाहित करती है तथा अंग्रेजी को श्रेष्ठ बताने व बनाने वाली है।

गुरुकुल शिक्षा पद्धति में व्यक्ति के नैतिक, आध्यात्मिक चारित्रिक उन्नयन के लिए पाठ्यक्रम व शिक्षा होती थी। गांधी भी कहते हैं कि भारतीय लोगों को नैतिक बल, रचनात्मक, आर्थिक उत्पादन, सर्वांगीण व्यक्तित्व निर्माण करने वाली शिक्षा दी जाए। इससे मानवीय गुणों का निर्माण व विकास होगा तथा साथ ही आदर्श समाज व राष्ट्र का निर्माण भी होगा। सामाजिक-आर्थिक समानता आधारित शिक्षा पर बल दिया। शिक्षा सैद्धान्तिक होने की बजाय व्यावसायिक व परिश्रम पर आाारित हो जो गुरुकुल शिक्षा व्यवस्था में दिखाई देती है।

मैकाले स्मरण पत्र पर आधारित शिक्षा प्रणाली भारतीयों को प्रवृत्ति, विचार, नैतिकता एवं संस्कारों से अंग्रेज बनाने वाली दिखाई देती है। लार्ड बैंटिक ने मैकाले स्मरण पत्र को मार्च, 1835 में स्वीकार करके अंग्रेजी भाषा को प्रशासन व उच्च शिक्षा का आधार माना। इसी वर्ष राजभाषा फारसी के स्थान पर अंग्रेजी बन गई। यह शिक्षा व्यवस्था आज तक जारी है जो कई मायनों में अप्रासंगिक दिखाई देती है।

1854 ई. में वुड्स डिस्पैच लागू किया गया जिसे भारतीय शिक्षा का 'मैग्नाकार्टा' कहा जाता है। इसके तहत् कुछ बदलाव करते हुए स्थानीय / देशी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने की छूट दी गई। ग्रामीण स्तर पर प्राथमिक पाठशालाएँ तथा निजी क्षेत्र में शिक्षा के प्रोत्साहन की व्यवस्था की गई। भारत में विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई। व्यावसायिक एवं तकनीकि शिक्षा, शिक्षक प्रशिक्षण केन्द्र व बालिका शिक्षा को बढ़ावा देने की व्यवस्था की गई।

परन्तु वर्तमान में बदलते परिवेश में परिवर्तन की गुंजाइश दिखाई देती है। आजादी के पश्चात् विभिन्न शिक्षा आयोग गठित कर कुछ परिवर्तन किए गए। परन्तु गांधी की शिक्षा की संकल्पना का सपना पूरा होता हुआ दिखाई नहीं दे रहा। हाल ही में भारत में नई शिक्षा नीति 2020 का प्रस्ताव पारित किया गया है। इसमें शिक्षा का बजट बढ़ाकर जी. डी. पी. का 6 प्रतिशत कर दिया गया। इसमें रोजगारपरक, गुणवत्तायुक्त, स्थानीय भाषाओं को प्रोत्साहित करके शिक्षा देने के प्रावधान किये गए हैं। गांधी ने देशी भाषाओं के प्रचार-प्रसार व

उपयोग कर बल दिया था, नई शिक्षा नीति में भी स्थानीय भाषा, प्राचीन भारतीय संस्कृति के संरक्षण एवं संवर्धन की सम्भावनाएँ देखी जा सकती हैं।

21वीं सदी की आवश्यकताओं एवं चुनौतियों को दृष्टिगत रखते हुए नई शिक्षा नीति में बहु-विषयक, बहु-वैकल्पिक, श्रम, कौशल व शिल्प पर आधारित शिक्षा प्रणाली का रोड मैप बनाया गया है। इसमें कला, खेल, योग, संवाद, कहानियाँ, परम्परागत कौशल आदि को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया गया है। देश की मौलिक, आदिवासी संस्कृति, वन संरक्षण, पर्यावरण संरक्षण, कृषि के परम्परागत तौर-तरीके आदि भी अध्ययन व अनुसंधान के विषय होंगे। इन सबके लिए आधारभूत सुविधाएँ, मैकेनिज्म आदि बड़ी चुनौतियाँ हो सकती हैं। परिवर्तन को स्वीकार करना, उसके लिए सुविधाएँ प्रदान करना भी भारतीय परिवेश में एक चुनौती है।

पूर्व में भी शिक्षा में परिवर्तन के लिए 1964 में संसद सदस्य श्री सिद्धेश्वर प्रसाद ने शिक्षा के दर्शन और दृष्टिकोण को लेकर प्रश्न उठाये थे। इसी आधार पर तत्कालीन यू.जी.सी. चेयरमैन डी.एस. कोठारी के नेतृत्व में 17 सदस्यीय शिक्षा आयोग बना था। उसने शिक्षा पद्धति का नया तरीका इजाद किया जिसे 1968 ई. में संसद में मंजूर किया गया जो प्रथम शिक्षा नीति के रूप में जाना जाता है। 1986 ई. में दूसरी शिक्षा नीति तथा 1992 ई. में उसकी पुनर्समीक्षा की गई।

इनमें अंग्रेजी शिक्षा पद्धति को आंशिक रूप से बदला गया परन्तु फिर भी भारतीय दृष्टिकोण से शिक्षा प्रणाली की स्थापना नहीं हुई। अधिकांश भारतीय आम नागरिक का जीवन जीते हैं। उनके हितों, आय के संसाधनों को ध्यान में रखकर शिक्षा के पाठ्यक्रम, डिप्लोमा, डिग्री, शिक्षण, प्रशिक्षण की व्यवस्था अधिक प्रासंगिक होगी।

नई शिक्षा नीति में परिवर्तन के प्रयास तो किया गया है लेकिन इसे लागू करने की चुनौती मुख्य है। क्या वर्तमान शैक्षणिक संस्थानों, संसाधनों आदि में यह सम्भव है? क्या गाँधी की शिक्षा संकल्पना का सपना पूरा हो सकता है? क्या वर्तमान परिदृश्य में वैश्विक स्तर पर यह कारगर सिद्ध हो सकती है? ऐसे अनेक प्रश्न विचारणीय हैं।

भारतन कुमारप्पा द्वारा सम्पादित पुस्तक बेसिक ऐजुकेशन (1951 ई.) एवं टुआर्डस न्यू ऐजुकेशन (1953) में गांधी के शिक्षा दर्शन का विस्तृत उल्लेख मिलता है जो उनको पत्रों, लेखों व भाषणों से संकलित किया गया है। इसमें गांधी व्यक्ति को जिम्मेदार नागरिक बनाने वाली शिक्षा का समर्थन करते

हैं। उन्होंने काम और ज्ञान को एक-दूसरे से अलग न मानकर एक-दूसरे से अन्तर्सम्बन्ध रखने वाला बताया है।

प्रारम्भिक तौर पर बच्चों को मजबूत, उपयोगी व विश्वास से लबरेज बनाने हेतु शिक्षा में स्वच्छता, पोषक तत्व, संगीतमय वातावरण आदि तत्वों का समावेश कारगर बताया है। साथ ही स्वदेशी, राष्ट्रीय शिक्षा की बात भी की जाती है। भारतीय वातावरण के अनुसार बालक को शिक्षा दी जानी चाहिये। महंगी शिक्षा से तुरंत वापस कुछ लाभ नहीं होता अतः कताई-बुनाई को भी पाठ्यक्रम से जोड़ना चाहिये।[14] शिक्षा में सेवा भाव का होना, चारों तरफ के वातावरण की अनुभूति, आत्मनिर्भर अनुशासित एवं स्वावलम्बी आदि गुणों का विकास करने वाली शिक्षा बालकों को दी जानी चाहिए।

यदि शिक्षा के पाठ्यक्रम में शिल्प व श्रम को जोड़ा जाए तो बालक स्वयं अपना खर्चा वहन करते हुए आत्मनिर्भर बनता है। मानसिक व शारीरिक रूप से प्रशिक्षत होगा तथा स्वदेशी की संकल्पना को पूरी करने में सहयोगी बनेगा। इस प्रकार एकीकृत शिक्षा जिसके पाठ्यक्रम में बालक को व्यावहारिक शिक्षा, रोजगारपरक शिक्षा श्रम आधारित शिक्षा, संस्कारयुक्त शिक्षा प्रदान की जाए तो ज्यादा उपयोगी होगी।[15]

नई शिक्षा नीति 2020 में डॉ. कस्तूरी रंजन का मानना है कि कक्षा 6 से ही बालक को व्यावसायिक व कौशल विकास की, शिक्षा दी जानी चाहिये। इसमें कही ना कहीं गांधी जी की शिक्षा की संकल्पना का समर्थन दिखाई देता है परन्तु क्या व्यावहारिक तौर पर इसे अमली जामा पहनाया जा सकेगा।

गांधी की शिक्षा की संकल्पना पूरी तरह आत्मनिर्भर व स्वावलम्बन के तत्वों का समावेश है। गांधी की शिक्षा का मूल उद्देश्य व्यक्ति के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास, सामाजिक संस्कारों का विकास, आर्थिक स्वावलम्बन, स्वभाषा राष्ट्रीय दृष्टिकोण पर आधारित बेसिक शिक्षा की संकल्पना है।

भारत में अभी संचालित शिक्षा अंग्रेजी पद्धति पर है जो वैश्विक स्तर पर कुछ उपयोगी भी दिखाई देती है परन्तु भारत के भौगोलिक, सामाजिक व सांस्कृतिक वातावरण के अनुरूप कुछ परिवर्तनों की गुंजाइश भी दृष्टिगत है। भारत सरकार ने नई शिक्षा नीति 2020 के तहत् बड़े परिवर्तन का खाका तैयार किया है। सरकार व आम नागरिक मिलकर कुछ उपयोगी बदलावों को मूर्त रूप दे पाते हैं तो कुछ अच्छे परिणाम मिलने की उम्मीद है। गांधी के सपनों का भारत बनाने में हम सभी को अपना योगदान देना होगा। इसके लिए प्रत्येक नागरिक

को रोजगार के अवसर, समानता व स्वतंत्रता की भावना का आभास कराना होगा।

आज के दौर में विविध समस्याओं के अनेक रूप हमारे सामने खड़े हुए हैं जैसे पर्यावरण संकट, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, भुखमरी, सामाजिक एवं आर्थिक असमानता आदि-आदि। गाँधी की बेसिक शिक्षा इन मुख्य चुनौतियों के समाधान का मार्ग प्रशस्त करती है। नई शिक्षा नीति में कुछ प्रयास इस तरह के दिखाई देते हैं लेकिन उनका क्रियान्वयन किस रूप में होता है यह एक प्रश्न हमारे सामने हैं। नई शिक्षा नीति ने गाँधी की बेसिक शिक्षा को और अधिक प्रासंगिक बना दिया तथा नई-नई सम्भावनाओं का मार्ग खोल दिया।

संदर्भ

1. *हरिजन*, 28 अगस्त, 1937
2. *हरिजन*, 31 जुलाई, 1937
3. *हरिजन*, 9 अक्टूबर, 1937
4. *गांधीजी*, अनुवादक अमृतलाल ठाकरदास, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1941, पृ. 73
5. वही, पृ. 74
6. *यंग इण्डिया*, 2 फरवरी, 1921
7. आर. के. प्रभु तथा यू. आर. राव, महात्मा गांधी के विचार, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, 1994, पृ. 363-364
8. *यंग इण्डिया*, 1 सितम्बर, 1921
9. *हरिजन*, 10 नवम्बर, 1964
10. *यंग इण्डिया*, 6 दिसम्बर, 1928
11. हिंदी *नवजीवन*, 25 अगस्त, 1926
12. महात्मा गांधी, *मेरे सपनों का भारत*, राजपाल एंड सन्स, दिल्ली, 2010, पृ. 177
13. रचनात्मक कार्यक्रम, पृ. 30-31
14. *'टुआर्ड्स न्यू एजुकेशन'*, सं. भारतन कुमारप्पा, पृ. 29-30
15. *यंग इण्डिया*, 15 जून, 1921

डॉ. कैलाश चन्द गुर्जर

सहायक आचार्य, इतिहास विभाग,

मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)

❑❑❑

पर्यावरण-संरक्षण (प्राचीन एवं आधुनिक चिन्तन के सन्दर्भ में)

• डॉ. प्रतिमा गोंड

मनुष्य एवं पर्यावरण के बीच अटूट संबंध होता है दोनों एक-दूसरे पर आश्रित हैं। उनकी समस्त क्रियाएं पर्यावरण के संपर्क से ही संभव होती हैं। *पर्यावरण शब्द परि तथा आवरण के संयोग से बना है। 'परि' का आशय चारों ओर तथा 'आवरण' का आशय परिवेश है।* दूसरे शब्दों में वनस्पतियों, प्राणियों और मानव जाति सहित सभी सजीवों और उनके साथ संबंधित भौतिक परिसर को पर्यावरण कहते हैं। वास्तव में पर्यावरण में वायु, जल, भूमि, पेड़-पौधे, जीव-जन्तु, मानव और उसकी विविध गतिविधियों के परिणाम आदि सभी का समावेश होता हैं। सारांशतः पर्यावरण शब्द का अर्थ है हमारे चारों ओर का वातावरण होता है और पर्यावरण संरक्षण का तात्पर्य है कि हम अपने चारों ओर के वातावरण को संरक्षित करें तथा उसे जीवन के अनुकूल बनाए रखें।

पर्यावरण संरक्षण का समस्त प्राणियों के जीवन तथा इस धरती के समस्त प्राकृतिक परिवेश से घनिष्ठ सम्बन्ध है परन्तु प्रदूषण के कारण सारी पृथ्वी दूषित हो रही है और निकट भविष्य में मानव सभ्यता पर खतरा मंडरा रहा है। विश्व में बढ़ते बंजर इलाके, फैलते रेगिस्तान, कटते जंगल, लुप्त होते पेड़-पौधों और जीव जन्तु, प्रदूषणों से दूषित पानी, कस्बों एवं शहरों पर गहराती गन्दी हवा और हर वर्ष बढ़ते बाढ़ एवं सूखे के प्रकोप इस बात के साक्षी हैं कि हमने अपने धरती और अपने पर्यावरण की देखभाल नहीं की। अब इससे होने वाले संकटों का प्रभाव बिना किसी भेदभाव के समस्त विश्व, वनस्पति जगत और प्राणी मात्र पर समान रूप से पड़ रहा है। हम देखते हैं कि हमारे जीवन के तीनों बुनियादी आधार वायु, जल एवं मृदा आज खतरे में हैं। सभ्यता के विकास के शिखर पर बैठे मानव के जीवन में इन तीनों प्रकृति प्रदत्त उपहारों का संकट बढ़ता जा रहा

है। पर्यावरण विघटन की समस्या आज समूचे विश्व के सामने प्रमुख चुनौती है जिसका सामना सरकार तथा जागरूक जनमत द्वारा किया जाना है।

प्राचीन भारतीय चिन्तन में पर्यावरण संरक्षण :

भारतीय संस्कृति में पर्यावरण के संरक्षण को बहुत महत्त्व दिया गया है। यहाँ मानव जीवन को हमेशा मूर्त या अमूर्त रूप में पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, नदी, वृक्ष एवं पशु-पक्षी आदि के साहचर्य में ही देखा गया है। भारतीय संस्कृति का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि यहाँ पर्यावरण संरक्षण का भाव अति पुरातनकाल में भी मौजूद था पर उसका स्वरूप भिन्न था। उस काल में कोई राष्ट्रीय वन नीति या पर्यावरण पर काम करने वाली संस्थाएँ नहीं थीं। पर्यावरण का संरक्षण हमारे नियमित क्रियाकलापों से ही जुड़ा हुआ था। इसी वजह से वेदों से लेकर कालीदास, दाण्डी, पंत, प्रसाद आदि तक सभी के काव्य में इसका व्यापक वर्णन किया गया है।

सिंधु सभ्यता की मोहरों पर पशुओं एवं वृक्षों का अंकन, सम्राटों द्वारा अपने राज-चिन्ह के रूप में वृक्षों एवं पशुओं को स्थान देना, गुप्त सम्राटों द्वारा बाज को पूज्य मानना, मार्गो में वृक्ष लगवाना, कुएँ खुदवाना, दूसरे प्रदेशों से वृक्ष मँगवाना आदि तात्कालिक प्रयास पर्यावरण प्रेम को ही प्रदर्शित करते हैं। वैदिक ऋषि प्रार्थना करते हैं कि पृथ्वी, जल, औषधि एवं वनस्पतियाँ हमारे लिये शान्तिप्रद हों। ये शान्तिप्रद तभी हो सकते हैं जब हम इनका सभी स्तरों पर संरक्षण करें।

प्राचीन भारत के वैदिक वाङ्मय में ऐसे अनेक सूक्त-ऋचाएं, उक्तियां व कथानक मिलते हैं जिनमें प्रकृति के प्रति गहरा श्रद्धाभाव है।यजुर्वेद का अध्ययन इस तथ्य का संकेत करता है कि उसके शांतिपाठ में पर्यावरण के सभी तत्वों को शांत और संतुलित बनाए रखने का भाव है, वहीं इसका तात्पर्य यह भी है कि समूचे विश्व का पर्यावरण संतुलित और परिष्कृत हो। ऋग्वेद की ऋचा कहती हैहे वायु! अपनी औषधि ले आओ और यहां से सब दोष दूर करो क्योंकि तुम ही सभी औषधियों से भरपूर हो। सामवेद कहता हैइन्द्र! सूर्य रश्मियों और वायु से हमारे लिए औषधि की उत्पत्ति करो। हे सोम! आपने ही औषधियों, जलों और पशुओं को उत्पन्न किया है। अथर्ववेद मानता है कि मानव जगत के अधिक सन्निकट है। व्यक्ति स्वस्थ, सुखी दीर्घायु रहे, नीति पर चले और पशु, वनस्पति एवं जगत के साथ साहचर्य रखे। वैदिक कर्मकांडों की अनेक विधाओं ने भी पर्यावरण संरक्षण और सुरक्षा का दायित्व निभाया है। रामायणकालीन

सभी ग्रंथों में जड़ व चेतन सभी तत्वों को चेतना संपन्न बताया गया है। रामचरित मानस के उत्तरकांड में वर्णन मिलता है कि चरागाह, तालाब, हरित भूमि, वन-उपवन के सभी जीव आनंदपूर्वक रहते थे। भगवान श्रीकृष्ण द्वारा गाई गई गीता में प्रकृति को सृष्टि का उपादान कारण बताया गया है। प्रकृति के कण-कण में सृष्टि का रचयिता समाया हुआ है।

भारतीय दर्शन यह मानता है कि प्रकृति हो या शरीर, इनकी रचना पर्यावरण के महत्त्वपूर्ण घटकों पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश से ही हुई है तभी समुद्र मंथन से वृक्ष जाति के प्रतिनिधि के रूप में कल्पवृक्ष का निकलना, कामधेनु और ऐरावत हाथी का निकलना व देवताओं द्वारा उसे अपने संरक्षण में लेना, पर्यावरण संरक्षण के उदाहरण हैं। कृष्ण की गोवर्धन पर्वत की पूजा की शुरुआत का लौकिक पक्ष यही है कि जन सामान्य मिट्टी, पर्वत, वृक्ष एवं वनस्पति का आदर करना सीखें। जिस प्रकार राष्ट्रीय वन-नीति के अनुसार सन्तुलन बनाए रखने हेतु 33 प्रतिशत भू-भाग वनाच्छादित होना चाहिए, ठीक इसी प्रकार प्राचीन काल में जीवन का एक तिहाई भाग प्राकृतिक संरक्षण के लिये समर्पित था, जिससे कि मानव प्रकृति को भली-भाँति समझकर उसका समुचित उपयोग कर सके और प्रकृति का सन्तुलन बना रहे तभी भारतीय संस्कृति में पर्यावरण संरक्षण की इस विराट अवधारणा की सार्थकता है।

आधुनिक चिन्तन में पर्यावरण संरक्षण :

पर्यावरण प्रदूषण व संरक्षण के सम्बन्ध में अन्तरराष्ट्रीय चिन्ता 20वीं सदी के उत्तरार्द्ध में बढ़ गई थी। 30 जुलाई, 1968 को मानव पर्यावरण की समस्या पर अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन बुलाने के लिये संयुक्त राष्ट्र संघ की आर्थिक तथा सामाजिक परिषद ने प्रस्ताव संख्या 1946 के तहत एक प्रस्ताव पारित किया, जिसमें कहा गया कि आधुनिक वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास के परिप्रेक्ष्य में मानव तथा उसके पर्यावरण के मध्य सम्बन्धों में परिवर्तन हुआ है। सामान्य सभा ने इस बात पर संज्ञानता प्रकट की। वैज्ञानिक तथा तकनीकी विकास ने मानव को अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप पर्यावरण को आकार देने के उद्देश्य से अप्रत्याशित अवसरों को जन्म दिया है। यदि इन अवसरों को नियंत्रित ढंग से उपयोग नहीं किया गया तो अनेक गम्भीर समस्याएँ उत्पन्न होंगी। सामान्य सभा ने जल प्रदूषण, क्षरण तथा भूमि के विनिष्टीकरण के अन्य प्रारूप, ध्वनि, कूड़ा-करकट तथा कीटनाशकों के गौण प्रभावों पर भी विचार किया। मानव पर्यावरण की कुछ समस्याओं पर संयुक्त राष्ट्र संघ तथा उसकी

अन्य एजेंसियाँ यथा अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन, खाद्य एवं कृषि संगठन, विश्व स्वास्थ्य संगठन, अन्तरराष्ट्रीय परमाणु अभिकरण आदि कार्य कर रहे हैं।

दुनिया में बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मीडिया में पर्यावरण के मुद्दों ने अपनी उपस्थिति दर्ज की थी। भारतीय परिदृश्य में देखें तो छठे-सातवें दशक में पर्यावरण से जुड़ी खबरें यदाकदा ही स्थान पाती थी। उत्तराखण्ड के चिपको आन्दोलन और 1972 के स्टाकहोम पर्यावरण सम्मेलन के बाद इन खबरों का प्रतिशत थोड़ा बढ़ा। देश के अनेक हिस्सों में पर्यावरण के सवालों को लेकर जन जागृतिपरक समाचारों का लगातार आना प्रारम्भ हुआ। वर्ष 1984 में शताब्दी की सबसे बड़ी औद्योगिक दुर्घटना, भोपाल गैस त्रासदी के बाद तो समाचार पत्रों में पर्यावरणीय खबरों का प्रतिशत यकायक बढ़ गया। सन् 1992 के पृथ्वी सम्मेलन तक आते-आते अनेक ऐजेंसियां इस पर विशेष फीचर देने लगी। समाचार पत्रों में पर्यावरण विषयों पर लिखने वाले लेखक भी सामने आये, जो पर्यावरण के विविध आयामों पर साधिकार लिखने की क्षमता रखते हैं। कुछ पत्रों ने तो पर्यावरण को लेकर स्थायी स्तंभ बना रखे हैं, कुछ पत्र पत्रिकायें पूर्ण रूप से पर्यावरण पर ही केन्द्रित हैं।

आधुनिक सन्दर्भ में प्रयास :

मानव पर्यावरण स्टॉक होम सम्मेलन : इस सम्मेलन का प्रमुख उद्देश्य अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर मानवीय पर्यावरण के संरक्षण तथा सुधार की विश्वव्यापी समस्या का निदान करना था। पर्यावरण के संरक्षण के सम्बन्ध में अन्तरराष्ट्रीय स्तर का यह पहला प्रयास था। इस सम्मेलन में 119 देशों ने पहली बार 'एक ही पृथ्वी' का सिद्धान्त स्वीकार किया। इसी सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम का जन्म हुआ। सम्मेलन में मानवीय पर्यावरण का संरक्षण करने तथा उसमें सुधार करने के लिये राज्यों तथा अन्तरराष्ट्रीय संस्थाओं को दिशा-निर्देश दिये गए। प्रत्येक वर्ष 5 जून को विश्व पर्यावरण दिवस मनाने की घोषणा इसी सम्मेलन में की गई।

पृथ्वी सम्मेलन : सन् 1992 में ब्राजील में विश्व के 174 देशों का 'पृथ्वी सम्मेलन' आयोजित किया गया। इसके पश्चात सन् 2002 में जोहान्सबर्ग में पृथ्वी सम्मेलन आयोजित कर विश्व के सभी देशों को पर्यावरण संरक्षण पर ध्यान देने के लिये अनेक उपाय सुझाये गए। वस्तुतः पर्यावरण के संरक्षण से ही धरती पर जीवन का संरक्षण हो सकता है, अन्यथा मंगल आदि ग्रहों की तरह धरती का जीवन-चक्र भी एक दिन समाप्त हो जाएगा। प्रदूषण की

इस विनाशकारी समस्या से जूझने एवं बचने के लिए विश्वभर में पर्यावरण संरक्षण व संवर्द्धन के अनेक प्रयास किए जा रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम ने 5 जून 1997 के दिन को विश्व पर्यावरण दिवस के रूप में मनाया। इसे 'पृथ्वी सम्मेलन' के रूप में जाना जाता है।

पर्यावरण बचाओ आन्दोलन :

पर्यावरण को बचाने एवं उसकी सुरक्षा हेतु देश में कई उल्लेखनीय आन्दोलन हुवे। उनमें महत्त्वपूर्ण हैं—बिश्नोई आन्दोलन, सुन्दरलाल बहुगुणा एवं चंडीप्रसाद भट्ट द्वारा प्रणीत 'चिपको आन्दोलन', चिपको आन्दोलन की तर्ज पर दक्षिण का 'अप्पिको आन्दोलन', केरल का 'साईलेंटघाटी आन्दोलन', 'जंगल बचाओ आन्दोलन', मेधा पाटकर एवं उनके सहयोगियों द्वारा संचालित 'नर्मदा बचाओ, आन्दोलन' एवं उत्तराखंड के गढ़वाल का टिहरी बांध आन्दोलन आदि। इन आन्दोलनों ने पर्यावरण के महत्त्व को न केवल उजागर किया बल्कि इसे लोगों की अस्मिता एवं जीवन से सम्बद्ध कर दिया। इन आन्दोलन ने लोगों में पर्यावरण के प्रति जागृति पैदा करने में उल्लेखनीय भूमिका निभाई।

उपरोक्त आन्दोलनों एवं विश्व में पर्यावरण से सम्बन्धित होने वाले परिवर्तनों के परिणामस्वरूप भारत में इसकी सुरक्षा हेतु निम्न अधिनियम बनाए गए।

पर्यावरण संरक्षण अधिनियम :– 19 नवम्बर, 1986 से पर्यावरण संरक्षण अधिनियम लागू हुआ। तदनुसार जल, वायु, भूमि . इन तीनों से सम्बन्धित कारक तथा मानव, पौधों, सूक्ष्म-जीव, अन्य जीवित पदार्थ आदि पर्यावरण के अन्तर्गत आते हैं। पर्यावरण संरक्षण अधिनियम के कई महत्त्वपूर्ण बिन्दु हैं, जैसे—पर्यावरण की गुणवत्ता के संरक्षण हेतु सभी आवश्यक कदम उठाना; पर्यावरण प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण और उपशमन हेतु राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम की योजना बनाना और उसे क्रियान्वित करना; पर्यावरण की गुणवत्ता के मानक निर्धारित करना; पर्यावरण सुरक्षा से सम्बन्धित अधिनियमों के अन्तर्गत राज्य-सरकारों, अधिकारियों और सम्बन्धितों के काम में समन्वय स्थापित करना एवं ऐसे क्षेत्रों का परिसीमन करना, जहाँ किसी भी उद्योग की स्थापना अथवा औद्योगिक गतिविधियाँ संचालित न की जा सकें। उक्त-अधिनियम का उल्लंघन करने वालों के लिये कठोर दंड का प्रावधान है।

पर्यावरण नीतियां तथा कानून :

भारतीय संविधान जिसे 1950 में लागू किया गया था परन्तु सीधे तौर पर

पर्यावरण संरक्षण के प्रावधानों से नहीं जुड़ा था। सन् 1972 के स्टॉकहोम सम्मेलन ने भारत सरकार का ध्यान पर्यावरण संरक्षण की ओर खींचा। सरकार ने 1976 में संविधान में संशोधन कर दो महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद 48 ए तथा 51 ए (जी) जोड़ें। अनुच्छेद 48 ए राज्य सरकार को निर्देश देता है कि वह 'पर्यावरण की सुरक्षा और उसमें सुधार सुनिश्चित करे, तथा देश के वनों तथा वन्यजीवन की रक्षा करे। अनुच्छेद 51 ए (जी) नागरिकों को कर्तव्य प्रदान करता है कि वे 'प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा करे तथा उसका संवर्धन करे और सभी जीवधारियों के प्रति दयालु रहे'। स्वतंत्रता के पश्चात बढते औद्योगिकरण, शहरीकरण तथा जनसंख्या वृद्धि से पर्यावरण की गुणवत्ता में निरंतर कमी आती गई। पर्यावरण की गुणवत्ता की इस कमी में प्रभावी नियंत्रण व प्रदूषण के परिप्रेक्ष्य में सरकार ने समय-समय पर अनेक कानून व नियम बनाए। इनमें से अधिकांश का मुख्य आधार प्रदूषण नियंत्रण व निवारण था जिनका विस्तारपूर्वक वर्णन निम्नलिखित हैं।

1. **जल** (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1974 तथा 1977 : निरंतर बढ़ते जल प्रदूषण के प्रति सरकार का ध्यान 1960 के दशक में गया और वर्ष 1963 में गठित समिति ने जल प्रदूषण निवारण व नियंत्रण के लिए एक केंद्रीय कानून बनाने की सिफारिश की। वर्ष 1969 में केंद्र सरकार द्वारा एक विधेयक तैयार किया गया जिसे संसद में पेश करने से पहले इसके उद्देश्यों व कारणों को सरकार द्वारा इस प्रकार बताया गया, 'उद्योगों की वृद्धि तथा शहरीकरण की बढ़ती प्रवृति के फलस्वरूप हाल में वर्षों में नदी तथा दरियाओं के प्रदूषण की समस्या काफी आवश्यक व महत्त्वपूर्ण बन गयी है। अतः यह आश्वस्त किया जाना आवश्यक हो गया है कि घरेलू तथा औद्योगिक बहिस्राव उस जल में नहीं मिलने दिया जाए जो पीने के पानी के स्रोत, कृषि उपयोग तथा मत्स्य जीवन के पोषण के योग्य हो, नदी व दरियाओं का प्रदूषण भी देश की अर्थव्यवस्था को निरंतर हानि पहुँचाने का कारण बनता है। यह विधेयक 30 नबम्बर, 1972 को संसद में प्रस्तुत किया गया। दोनों सदनों से पारित होकर इस विधेयक को 23 मार्च, 1974 को राष्ट्रपति की स्वीकृति मिली जो जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1974 कहलाया। यह अधिनियम 26 मार्च, 1974 से पूरे देश में लागू माना गया। यह अधिनियम भारतीय पर्यावरण विधि के क्षेत्र में प्रथम व्यापक प्रयास है जिसमें प्रदूषण की विस्तृत व्याख्या की गई है। इस अधिनियम ने एक संस्थागत संरचना की स्थापना की ताकि वह जल प्रदूषण रोकने के उपाय करके स्वच्छ जल आपूर्ति सुनिश्चित कर सके। इस कानून ने एक केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड तथा राज्यों के प्रदूषण

नियंत्रण बोर्डो की स्थापना की। इस कानून के अनुसार, कोई व्यक्ति जो जानबूझकर जहरीले अथवा प्रदूषण फैलाने वाले तत्त्वों को पानी में प्रवेश करने देता है, जो कि निर्धारित मानकों की अवहेलना करते हैं, तब वह व्यक्ति अपराधी होगा, तथा उसे कानून में निर्धारित दंड दिया जायेगा। इस कानून में प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के अधिकारों को समुचित शक्तियाँ दी गई हैं ताकि वे अधिनियम के प्रावधानों को ठीक से कार्यान्वित कर सकें। इस प्रकार जल प्रदूषण को रोकने की दिशा में यह कानून सरकार द्वारा उठाया गया महत्त्वपूर्ण कदम था। जल प्रदूषण को रोकने में जल (प्रदूषण और नियंत्रण) अधिनियम, 1977 भी एक अन्य महत्त्वपूर्ण कानून है जिसे राष्ट्रपति ने दिसम्बर, 1977 को मंजूरी प्रदान की। जहाँ एक ओर यह जल प्रदूषण को रोकने के लिए केंद्र तथा राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड को व्यापक अधिकार देता है वहीं जल प्रदूषित करने पर दंड का प्रावधान भी करता है। यह अधिनियम केंद्रीय तथा राज्य प्रदूषण बोर्डों को निम्न शक्तियाँ प्रदान करता हैं : किसी भी औद्योगक परिसर में प्रवेश का अधिकार; किसी भी जल में छोड़े जाने वाले तरल कचरे के नमूने लेने का अधिकार; औद्योगिक ईकाइयां तरल कचरा तथा सीवेज के तरीकों के लिए बोर्ड से सहमति लें। बोर्ड किसी भी औद्योगिक इकाई को बंद करने के लिए कह सकता है। वह दोषी इकाई को पानी व बिजली आपूर्ति भी रोक सकता है।

2. **वायु (प्रदूषण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1981** :– बढ़ते औद्योगिकरण के कारण पर्यावरण में निरंतर हो रहे वायु प्रदूषण तथा इसकी रोकथाम के लिए यह अधिनियम बनाया गया। इस अधिनियम के पारित होने के पीछे जून, 1972 में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा स्टाकहोम (स्वीडन) में मानव पर्यावरण सम्मेलन की भूमिका रही है। इसकी प्रस्तावना में कहा गया है कि इसका मुख्य उद्देश्य पृथ्वी पर प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण हेतु समुचित कदम उठाना है। प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में वायु की गुणवत्ता और वायु प्रदूषण का नियंत्रण सम्मिलित है। यह 29 मार्च, 1981 को पारित हुआ तथा 16 मई, 1981 से लागू किया गया। इस अधिनियम में मुख्यत: मोटर-गाडियों और अन्य कारखानों से निकलने वाले धुएं और गंदगी का स्तर निर्धारित करने तथा उसे नियंत्रित करने का प्रावधान है। 1987 में इस अधिनियम में शोर प्रदूषण को भी शामिल किया गया। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड को ही वायु प्रदूषण अधिनियम लागू करने का अधिकार दिया गया है। अनुच्छेद

19 के तहत, केंद्रीय बोर्ड को मुख्यतः राज्य बोर्डों के काम में तालमेल बैठाने के अधिकार दिए गये हैं। राज्यों के बोर्डो से परामर्श करके संबंधित राज्य सरकारे किसी भी क्षेत्र को वायु प्रदूषण नियंत्रण क्षेत्र घोषित कर सकता है और वहाँ स्वीकृत ईंधन के अतिरिक्त, अन्य किसी भी प्रकार के प्रदूषण फैलाने वाले ईधन का प्रयोग पर रोक लगा सकती है। इस अधिनियम में यह प्रावधान है कि कोई भी व्यक्ति राज्य बोर्ड की पूर्व अनुमति के बिना वायु प्रदूषण नियंत्रण क्षेत्र में ऐसी कोई भी औद्योगिक इकाई नहीं खोल सकता, जिसका वायु प्रदूषण अनुसूची में उल्लेख नहीं है। इस अधिनियम के अनुसार केंद्र व राज्य सरकार दोनों को वायु प्रदूषण से हाने वाले प्रभावों का सामना करने के लिए निम्नलिखित शक्तियां प्रदान की गई हैं : राज्य के किसी भी क्षेत्र को वायु प्रदूषित क्षेत्र घोषित करना; प्रदूषण नियंत्रित क्षेत्रों में औद्योगिक क्रियाओं को रोकना; औद्योगिक इकाई स्थापित करने से पहले बोर्ड से अनापत्ति प्रमाण-पत्र लेना; वायु प्रदुषकों के सैंपल इकट्ठा करना; अधिनियम में दिए गए प्रावधानों के अनुपालन की जाँच के लिए किसी भी औद्यागिक इकाई में प्रवेश का अधिकार; अधिनियम के प्रावधानों को उल्घंन करने वालों के विरुद्ध मुकदमा चलाने का अधिकार; प्रदूर्षित इकाइयों को बंद करने का अधिकार।

3. **वन्य जीवन संरक्षण अधिनियम, 1972 :** कृषि, उद्योगों और शहरीकरण से वनों का काफी कटाव हुआ है। वनों के अधिक कटाव से अनेक वन्यजीव जंतुओं की कई प्रजातियाँ या तो लुप्त हो गई हैं या लुप्त होने के कगार पर हैं। वन्यजीवन के महत्त्व को ध्यान में रखकर व लुप्त होती प्रजातियों को बचाने के लिए सरकार ने अनेक कदम उठाए हैं। सन 1952 में भारतीय वन्यजीवन बोर्ड का गठन किया गया। इस बोर्ड के अंतर्गत वन्य-जीवन पार्क और अभयारणय बनाए गए। 1972 में भारतीय वन्यजीवन संरक्षण अधिनियम पारित किया गया। भारत जीव-जंतुओं और वनस्पतियों की समाप्त होने के खतरे में पड़ी प्रजातियों के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संबंधी समझौते (1976) का सदस्य बना। संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संगठन (युनेस्को) का 'मानव और जैव मण्डल' कार्यक्रम भी भारत में चलाया गया और विलुप्त होती विभिन्न प्रजातियों के संरक्षण के लिए परियोजनाएँ चलाई गईं। सिंह के संरक्षण के लिए 1972 में, बाघ के लिए 1973 में, मगरमच्छ के लिए 1984 में तथा भूरे रंग के हिरण के लिए ऐसी परियोजनाएँ चलाई गईं।

वन्यजीवन संरक्षण अधिनियम (1972) में लुप्त होती प्रजातियों के संरक्षण की व्यवस्था है तथा इन जातियों के व्यापार की मनाही है।

वन्यजीवन संरक्षण अधिनियम, (1972) को अधिक व्यावहारिक व प्रभावी बनाने के लिए इसमें वर्ष 1986 तथा 1991 में संशोधन किए गये। वन्यजीवन संरक्षण अधिनियम को सफलतापूर्वक कार्यान्वित करने के लिए वन्यजीवन संरक्षण निर्देशक तथा दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता में चार नई उपनिदेशकों की व्यवस्था की गई है।

4. **वन संरक्षण अधिनियम, 1980 :** भारत सरकार ने वनों के संरक्षण तथा वनों के विकास के लिए वन संरक्षण अधिनियम (1980) पारित किया। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य वनों का विनाश और वन भूमि को गैर-वानिकी कार्यो में उपयोग से रोकना था। इस अधिनियम के प्रभावी होने के पश्चात कोई भी वन भूमि केंद्रीय सरकार की अनुमति के बिना गैर वन भूमि या किसी भी अन्य कार्य के लिए प्रयोग में नहीं लाई जा सकती तथा न ही अनारक्षित की जा सकती है। आबादी के बढने तथा मानव जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वनों का कटना स्वाभाविक है। अतः ऐसे कार्यो की योजनाएँ बनाते समय तथा वनों को काटने हेतु मार्गदर्शिकायें तैयार की गई हैं जिससे वनों को कम से कम नुकसान हो।

देश की स्वतंत्रता के पश्चात राष्ट्रीय वन नीति (1952) घोषित की गई लेकिन वनों के विकास पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। 1970 के दौरान अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण के प्रति चेतना की जागृति का विकास होने से वन संरक्षण को भी बल मिला। वन संरक्षण अधिनियम (1980) का इस दिशा में विशेष योगदान रहा। सन् 1951 से 1980 के बीच वन भूमियों का अपरदन 1.5 लाख हैक्टेयर प्रति वर्ष था जबकि इस अधिनियम के लागू होने के पश्चात भूमि का अपरदन 55 हजार हैक्टेयर रह गया है। इस अधिनियम को अधिक प्रभावी ढंग से कार्यान्वित करने के लिए इसमें वर्ष 1988 में संशोधन किया गया।

5. **ध्वनि प्रदूषण नियंत्रण कानून** : भारत में ध्वनि प्रदूषण नियंत्रण के लिए पृथक अधिनियम का प्रावधान नहीं है। भारत में ध्वनि प्रदूषण को वायु प्रदूषण में ही शामिल किया गया है। वायु (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1981 में सन् 1987 में संशोधन करते हुए इसमें 'ध्वनि प्रदूषकों' को भी 'वायु प्रदूषकों' की परिभाषा के अंतर्गत शामिल किया गया है। पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 की धारा 6 के अधीन भी ध्वनि प्रदूषकों सहित

वायु तथा जल प्रदूषकों की अधिकता को रोकने के लिए कानून बनाने का प्रावधान है। इसका प्रयोग करते हुए ध्वनि प्रदूषण (विनियमन एवं नियंत्रण) अधिनियम, 2000 पारित किया गया है। इसके तहत विभिन्न क्षेत्रों के लिए ध्वनि के संबंध में वायु गुणवत्ता मानक निर्धारित किए गए हैं। विद्यमान राष्ट्रीय कानूनों के अंतर्गत भी ध्वनि प्रदूषण नियंत्रण का प्रावधान है। ध्वनि प्रदूषकों को आपराधिक श्रेणी में मानते हुए नियंत्रण के लिए भारतीय दण्ड संहिता की धारा 268 तथा 290 का प्रयोग किया जा सकता है। पुलिस अधिनियम, 1861 के अंतर्गत पुलिस अधिक्षक को अधिकृत किया गया है कि वह त्योहारों और उत्सवों पर संगीत नियंत्रित कर सकता है।

6. **पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम 1986 :** संयुक्त राष्ट्र का प्रथम मानव पर्यावरण सम्मेलन 5 जून, 1972 में स्टाकहोम में संपन्न हुआ। इसी से प्रभावित होकर भारत ने पर्यावरण के संरक्षण लिए पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 पास किया। यह एक विशाल अधिनियम है जो पर्यावरण के समस्त विषयों को ध्यान में रखकर बनाया गया है। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य वातावरण में घातक रसायनों की अधिकता को नियंत्रित करना व पारिस्थितिकी तंत्र को प्रदूषण मुक्त रखने का प्रयट्न करना है। इस अधिनियम में 26 धाराएं है जिन्हें 4 अध्यायों में बाँटा गया है। यह कानून पूरे देश में 19 नवम्बर, 1986 से लागू किया गया। अधिनियम की पृष्ठभूमि व उद्द्श्यों के अंतर्गत शामिल बिन्दुओं के आधार पर सारांश में अधिनियम के निम्न उद्द्श्यों हैं:

पर्यावरण का संरक्षण एवं सुधार करना; मानव पर्यावरण के स्टॉकहोम सम्मेलन के नियमों को कार्यान्वित करना। मानव, प्राणियों, जीवों, पादपों को संकट से बचाना; पर्यावरण संरक्षण हेतु सामान्य एवं व्यापक विधि निर्मित करना एवं विद्यमान कानूनों के अंतर्गत पर्यावरण संरक्षण प्रधिकरणों का गठन करना तथा उनके क्रियाकलापों के बीच समन्वय करना।

मानवीय पर्यावरण सुरक्षा एवं स्वास्थ्य को खतरा उत्पन्न करने वालों के लिए दण्ड की व्यवस्था करना। पर्यावरण संरक्षण अधिनियम (1986) एक व्यापक कानून है। इसके द्वारा केंद्र सरकार के पास ऐसी शक्तियां आ गई हैं जिनके द्वारा वह पर्यावरण की गुणवत्ता के संरक्षण व सुधार हेतु उचित कदम उठा सकती है। इसके अंतर्गत केंद्रीय सरकार को पर्यावरण गुणवत्ता मानक निर्धारित करने, औद्योगिक क्षेत्रों को प्रतिबंध करने, दुर्घटना से बचने के लिए सुरक्षात्मक उपाय निर्धारित करने तथा हानिकारक तत्वों का निपटान करने, प्रदूषण के मामलों की जांच एवं शोध कार्य करने, प्रभावित क्षेत्रों का तत्काल निरीक्षण

करने, प्रयोगशालाओं का निर्माण तथा जानकारी एकत्रित करने के कार्य सौंपे गए हैं। इस कानून की एक महत्वपूर्ण बात यह है कि पहली बार व्यक्तिगत रूप से नागरिकों को इस कानून का पालन न करने वाली फैक्ट्रियों के खिलाफ केस दर्ज करने का अधिकार प्रदान किया गया है।

7. **जैव-विविधता संरक्षण अधिनियम, 2002 :** भारत विश्व में जैव-विविधता के स्तर पर 12वें स्थान पर आता है। अकेले भारत में लगभग 45000 पेड-पौधों व 81000 जानवरों की प्रजातियां पाई जाती हैं जो विश्व की लगभग 7.1 प्रतिशत वनस्पतियों तथा 6.5 प्रतिशत जानवरों की प्रजातियों में से है। जैव-विविधता संरक्षण हेतु केंद्र सरकार ने 2000 में एक राष्ट्रीय जैव-विविधता संरक्षण क्रियान्वयन योजना शुरू की जिसमें गैर सरकारी संगठनों, वैज्ञानिकों, पर्यावरणविदों तथा आम जनता को भी शामिल किया गया। इसी प्रक्रिया में सरकार ने जैव विविधता संरक्षण कानून 2002 पास किया जो इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। वर्ष 2002 में पारित इस कानून का उद्देश्य है-जैविक विविधता की रक्षा की व्यवस्था की जाए उसके विभिन्न अंशों का टिकाऊ उपयोग किया जाए, तथा जीव-विज्ञान संसाधन ज्ञान के उपयोग का लाभ सभी में बराबर विभाजित किया जाये। अधिनियम में, राष्ट्रीय स्तर पर जैव-विविधता प्राधिकरण बनाने का भी प्रावधान है, राज्य स्तरों पर राज्य जैव विविधता बोर्ड स्थापित करने, तथा स्थानीय स्तरों पर जैव-विविधता प्रबंधन समितियों की स्थापना करने का प्रावधान है ताकि इस कानून के प्रावधानों को ठीक प्रकार से लागू किया जा सके।

8. **राष्ट्रीय जलनीति, 2002 :** 21वीं सदी में जल के महत्व को स्वीकारते हुए जल संसाधनों के नियोजन, विकास और प्रंबधन के साथ ही इसके सदुपयोग का मार्ग प्रशस्त करने के लिए 'राष्ट्रीय जल संसाधन परिषद' ने 1 अप्रैल, 2002 को राष्ट्रीय जल नीति पारित की। इसमें जल के प्रति स्पष्ट व व्यावहारिक सोच अपनाने की बात कही गई है। इसके कुछ महत्वपूर्ण बिंदु निम्नलिखित है:

1. इसमें आजादी के बाद पहली बार नदियों के जल संग्रहण क्षेत्र संगठन बनाने पर आम सहमति व्यस्त की गई है।
2. जल बंटवारे की प्रक्रिया में प्रथम प्राथमिकता पेयजल को दी गई है। इसके बाद सिंचाई, पनबिजली, आदि को स्थान दिया गया है।
3. इसमें पहली बार जल संसाधनों के विकास और प्रबंध पर सरकार के साथ-साथ सामुदायिक भागीदारी सुनिश्चित करने की बात कही गई है।

इसमें पहली बार किसी भी जल परियोजना के निर्माण काल से लेकर परियोजना पूरी होने के बाद भी उसके मानव जीवन पर पड़ने वाले असर का मूल्यांकन करने को कहा गया है, जल के बेहतर उपयोग व बचत के लिए जनता में जागरूकता बढ़ाने एवं उसके उपयोग में सुधार लाने के लिए पाठ्यक्रम, पुरस्कार आदि के माध्यम से जल संरक्षण चेतना उत्पन्न करने की बात कही गई है।

9. **राष्ट्रीय पर्यावरण नीति, 2004 :** पर्यावरण तथा वन मंत्रालय ने दिसम्बर 2004 को राष्ट्रीय पर्यावरण नीति 2004 का ड्राफ्ट जारी किया है। इसकी प्रस्तावना में कहा गया है कि समस्याओं को देखते हुए एक व्यापक पर्यावरण नीति की आवश्यकता है। साथ ही वतर्मान पर्यावरणीय नियमों तथा कानूनों को वतर्मान समस्याओं के संदर्भ में संशोधन की आवश्यकता को भी दर्शाया गया है। राष्ट्रीय पर्यावरण नीति के निम्न मुख्य उद्देश्य रखे गये हैं :

- संकटग्रस्त पर्यावरणीय संसाधनों का संरक्षण करना।
- पर्यावरणीय संसाधनों पर सभी के विशेषकर गरीबों के समान अधिकारों को सुनिश्चित करना।
- संसाधनों का न्यायोचित उपयोग सुनिश्चित करना ताकि वे वतर्मान के साथ-साथ भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं की भी पूर्ति कर सकें।
- आर्थिक तथा सामाजिक नीतियों के निर्माण में पर्यावरणीय संदर्भ को ध्यान में रखना।
- संसाधनों के प्रबंधन में खुलेपन, उत्तरदायित्व तथा भागीदारिता के मूल्यों को शामिल करना।

10. **वन अधिकार अधिनियम, 2006 :** वन अधिकार अधिनियम (2006), वन संबंधी नियमों का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है जो 18 दिसम्बर, 2006 को पास हुआ। यह कानून जंगलों में रह रहे लोगों के भूमि तथा प्राकृतिक संसाधनों पर अधिकार से जुड़ा हुआ है जिनसे, औपनिवेशिक काल से ही उन्हें वंचित किया हुआ था। इसका उद्देश्य जहां एक ओर वन संरक्षण है वहां दूसरी ओर यह जंगलों में रहने वाले लोगों को उनके साथ सदियों तक हुए अन्याय की भरपाई का भी प्रयास है। इस कानून के मुख्य प्रावधान निम्न है:

- यह जंगलों में निवास करने वाले या वनों पर अपनी आजीविका के लिए निर्भर अनुसूचित जनजातियों के अधिकारों की रक्षा करता है।
- जंगलों में रहने वाले लोगों तथा जनजातियों को उनके द्वारा उपयोग की जा रही भूमि पर उनको अधिकार प्रदान करता है।

- उन्हें पशु चराने तथा जल संसाधनों के प्रयोग का अधिकार देता है।
- विस्थापन की स्थिति में उनके पुर्नस्थापन का प्रावधान करता है।
- जंगल प्रबंधन में स्थानीय भागीदारी सुनिश्चित करता है।
- जंगल में रह रहे लोगों का विस्थापन केवल वन्यजीवन संरक्षण के उद्देश्य के लिए ही किया जा सकता है। यह भी स्थानीय समुदाय की सहमति पर आधारित होना चाहिए।

वन संरक्षण अधिनियम (2006) स्थानीय लोगों का भूमि पर अधिकार प्रदान कर वन संरक्षण को बढ़ावा देता है। यह वन भूमि पर गैर कानूनी कब्जों को रोकता है तथा वन संरक्षण के लिए स्थानीय लोगों के विस्थापन को अंतिम विकल्प मानता है। विस्थापन की स्थिति में यह लोगों का पुर्नस्थापन का अधिकार भी प्रदान करता है। पर्यावरण संरक्षण में न्यायपालिका की भूमिका, भारत में पर्यावरण संरक्षण की दिशा में न्यायपालिका द्वारा महत्वपूर्ण पहल की गई है। जीवन का अधिकार जिसका उल्लेख संविधान के अनुच्छेद 21 में है, की सकारात्मक व्याख्या करके, न्यायपालिका ने इस अधिकार में ही स्वस्थ्य पर्यावरण के अधिकार को निहित घोषित किया है। सामाजिक हित, विशेषकर पर्यावरण के संरक्षण के प्रति, न्यायपालिका की वचनबद्धता के कारण ही 'जनहित मुकद्मों' का विकास हुआ। भारतीय न्यायपालिका ने 1980 से ही पर्यावरण-हितैषी दृष्टि कोण अपनाया है। न्यायपालिका ने विविध मामलों में निणर्य देते हुए यह स्पष्ट किया है कि गुणवतापूर्ण जीवन की यह मूल आवश्यकता है कि मानव स्वच्छ पर्यावरण में जीवन व्यतीत करे।

11. **पर्यावरण जागरूकता मामला, 1992 :** इस मामले में सर्वोच्च न्यायलय ने देश में पर्यावरणीय शिक्षा और जागरूकता का प्रसार करने के निर्देश दिये। इन उपायों में स्कूलों में कक्षा एक से बाहरवीं तक पर्यावरण को अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाने की व्यवस्था, विश्वविद्यालयों में एक विषय के रूप में पर्यावरण शिक्षा का प्रावधान, सिनेमाघरों में पर्यावरण विषय पर संदेशों का प्रसार-प्रचार तथा दूरदर्शन एवं रेडियों पर पर्यावरण कार्यक्रमों के प्रसारण शामिल है। पर्यावरण संरक्षण की प्रक्रिया में न्यायलय द्वारा दिए गए कुछ महत्त्वपूर्ण मौलिक नियम निम्नलिखित हैं :

- प्रत्येक नागरिक को स्वच्छ पर्यावरण में जीने का मौलिक अधिकार है जो संविधान के अनुच्छेद 21 में दिए गये 'जीवन जीने के अधिकार' में निहित है।

- सरकारी एजेसियाँ पर्यावरणीय कानूनों के प्रति अपने कर्तव्य को पूरा न करने के लिए वित्तिय या कर्मचारियों की कमी का बहाना नहीं दे सकती।
- प्रदूषणकर्ता द्वारा आदयगी का सिद्धान्त पर्यावरणीय कानून का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है जिसका तात्पर्य है कि प्रदूषणकर्ता न केवल पर्यावरण की क्षतिपूर्ति के लिए बल्कि प्रदूषण से प्रभावित लोगों को हुई हानि की भी भरपाई करेगा।
- पूर्ण दायित्व के नियम के अनुसार यदि कोई उद्योग किसी ऐसे खतरनाक व्यवसाय में रत है जिससे लोगों के स्वास्थ्य तथा सुरक्षा को खतरा है तब उसका यह पूर्ण दायित्व बन जाता है कि वह यह सुनिश्चित करे कि उस कार्य से किसी को किसी प्रकार का संकट न हो। यदि उस कार्य से किसी को हानि पहुँचती है तो वह उद्योग उस हानि की पूर्ति के लिए पूर्णतया उत्तरदायी होगा।
- पूर्व सतर्कता या पूर्व चेतावनी सिद्धांत के अनुसार सरकारी अधिकारियों का यह कर्तव्य है कि वे पर्यावरणीय प्रदूषण के कारणों की पूर्व कल्पना करें उनसे पर्यावरण की सुरक्षा करें। यह सिद्धांत उद्योगपतियों पर यह उत्तरदायित्व डालता है कि वे यह स्पष्ट करें कि उनके कार्य पर्यावरणीय दृष्टिकोण से हानिकारक नहीं हैं।

आज दुनियाभर में अनेक स्तरों पर यह कोशिश हो रही है कि आम आदमी को इस चुनौती के विभिन्न पहलुओं से परिचित कराया जाए, ताकि उसके अस्तित्व को संकट में डालने वाले तथ्यों की उन्हें समय रहते जानकारी हो जाए और स्थिति को सुधारने के उपाय भी गंभीरता से किए जा सकें। पर्यावरण संरक्षण की चेतना की सार्थकता तभी हो सकती है जब हम अपनी नदियां, पर्वत, पेड़, पशु-पक्षी, प्राणवायु और हमारी धरती को बचा सकें। इसके लिए सामान्यजन को अपने आसपास हवा-पानी, वनस्पति जगत और प्रकृति उन्मुख जीवन के क्रिया-कलापों जैसे पर्यावरणीय मुद्दों से परिचित कराया जाए। युवा पीढ़ी में पर्यावरण की बेहतर समझ के लिए स्कूली शिक्षा में जरूरी परिवर्तन करना होंगे पर्यावरण मित्र माध्यम से सभी विषय पढ़ाने होंगे जिससे प्रत्येक विद्यार्थी अपने परिवेश को बेहतर ढंग से समझ सकें। विकास की नीतियों को लागू करते समय पर्यावरण पर होने वाले प्रभाव पर भी समुचित ध्यान देना होगा। प्रकृति के प्रति प्रेम व आदर की भावना, सादगीपूर्ण जीवन पद्धति और वानिकी के प्रति नई चेतना जागृत करनी होगी।

आज आवश्यकता इस बात की भी है कि मनुष्य के मूलभूत अधिकारों में जीवन के लिये एक स्वच्छ एवं सुरक्षित पर्यावरण को भी शामिल किया जाये। इसके लिये सघन एवं प्रेरणादायक लोक-जागरण अभियान भी शुरू करने होंगे। आज हमें यह स्वीकारना होगा कि हरा-भरा पर्यावरण, मानव जीवन की प्रतीकात्मक शक्ति है और इसमें समय के साथ-साथ हो रही कमी से हमारी वास्तविक ऊर्जा में भी कमी आई है। वैज्ञानिकों का मत है कि पूरे विश्व में पर्यावरण रक्षा की सार्थक पहल ही पर्यावरण को सन्तुलित बनाए रखने की दिशा में किये जाने वाले प्रयासों में गति ला सकती है।

संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ :

1. डॉक्टर रतन जोशी : पर्यावरणीय अध्ययन, साहित्य बजावन पब्लिकेशन, आगरा, 2019
2. अल्का गौतम : *संसाधन एवं पर्यावरण*, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2007
3. शिव कुमार ओझा : *पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण*, बौद्धिक प्रकाशन, इलाहाबाद, 2017
4. वी एन सिंह एवं जनमेजय सिंह : *भारत में सामाजिक आन्दोलन*, रावत पब्लिकेशन, दिल्ली, 2005
5. डॉ. प्रवण प्रेमी : *भारत में सामाजिक आन्दोलन*, इंटरनेशनल बुक्स एवं रिसर्च जर्नल, दिल्ली, 2018
6. डॉ. कृष्ण अग्रवाल एवं डॉ. ध्रुव : *भारत में समाज कल्याण एवं सामाजिक आन्दोलन*, एस बी पी डी पब्लिशिंग हाऊस, आगरा, 2015
7. डॉ. सुरेंद्र कुमार शर्मा : *नगरीय समाजशास्त्र के विविध आयाम*, डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2007

डॉ. प्रतिमा गोंड

असिस्टेन्ट प्रोफेसर

समाजशास्त्र विभाग

महिला महाविद्यालय

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

वाराणसी

❑❑❑

महात्मा गांधी एवं प्राकृतिक चिकित्सा संबंधी विचार

(छत्तीसगढ़ के वर्तमान संदर्भ में)

• डॉ. अंकिता कमल पुरोहित

सारांश :

महात्मा गांधी प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति के बहुत बड़े समर्थक थे। वे इस पद्धति द्वारा देश के लोगो को रोग मुक्त, मानसिक व शारीरिक रूप से स्वस्थ व स्वावलंबी बनाना चाहते थे। वे स्वयं का व दूसरों का इलाज भी इसी पद्धति से करते थे। प्राकृतिक चिकित्सा में हवा, पानी, मिट्‌टी से किए गए इलाज का बहुत महत्व है। गांधी जी ने इस चिकित्सा पद्धति के प्रति लोगों की जागरूकता बढ़ाने हेतु समाचार पत्रो में कई लेख भी लिखे, लोगों को इसका ज्ञान व अनुभव होने के पश्चात प्राकृतिक चिकित्सालय खोलने हेतु प्रेरित किया। स्वयं भी उन्होंने इस दिशा में कार्य किया। गांधी जी की ही प्रेरणा से बाद में छत्तीसगढ़ के लोगों ने भी इस दिशा में अपना योगदान देते हुए प्राकृतिक चिकित्सालयों की स्थापना की। आज वर्तमान में छत्तीसगढ़ में कई प्राकृतिक चिकित्सालय खोले जा चुके हैं। किंतु अभी और बहुत से कार्य इस दिशा में किए जाने हैं।

शब्द कुंजी :— निरोगी, निखार, मिट्‌टी पट्‌टी, कटि स्नान, चद्‌दर स्नान, पुलटिस, भाप स्नान, उभार, स्वर्णिम प्रकाश।

प्रस्तावना :

भारत देश में प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति का सूर्य फिर से उदित करने वाले राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने एक बार कहा था कि जो व्यक्ति प्राकृतिक चिकित्सा को अपनाता है, उसे कभी किसी की मदद की आवश्यकता नहीं पड़ती। स्वयं की मदद करने से स्वाभिमान बढ़ता है। उन्होंने इस पद्धति द्वारा शरीर के अनावश्यक तत्वों व बीमारियों को बाहर निकाल कर स्वयं का इलाज किया।

इस पद्धति में हवा, पानी, मिट्टी से इलाज किया जाता है। इस दिशा में कार्य करते हुए गांधी जी ने उरली कांचन पुणे (महाराष्ट्र) में एक प्राकृतिक चिकित्सालय की स्थापना की थी। उन्हीं के पदचिन्हों पर चलते हुए छत्तीसगढ़ में भी कई प्राकृतिक चिकित्सालय आज तक खोले जा सके। जो आज लोगों को कई असाध्य बीमारियों से भी छुटकारा दिलाने में अपना सराहनीय योगदान दे रहे है।

अध्ययन का उद्देश्य :

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य महात्मा गांधी के प्राकृतिक चिकित्सा संबंधी विचारों और छत्तीसगढ़ में उनके क्रियान्वयन का अध्ययन व विश्लेषण करते हुए यह ज्ञात करना कि आज तक इस दिशा में छत्तीसगढ़ में कितना कार्य हुआ है। क्या सरकार द्वारा इस दिशा में कोई प्रयास किया गया है। छत्तीसगढ़ में कौन सी संस्थाएं हैं, जो गांधी जी के इन विचारों को आत्मसात कर इस दिशा में कार्य कर रही हैं। वर्तमान में छत्तीसगढ़ में इस चिकित्सा की स्थिति और लोगों की इसके प्रति कितनी जागरूकता है के संबंध में ज्ञान प्राप्त करना। साथ ही इस दिशा में सरकार द्वारा कौन सी शैक्षिक संस्थाएं व प्राकृतिक चिकित्सालय स्थापित किये गये हैं जिनके बारे में जानकारी प्राप्त करना इस आलेख का उद्देश्य है।

प्राकृतिक चिकित्सा का अर्थ बताते हुए गांधी जी ने हरिजन में लिखा था कि प्राकृतिक इलाज अर्थात व्यक्ति के जीवन में निखार आना और स्वास्थ्य के नियमों का पालन करना। प्राकृतिक चिकित्सा को अपनाने वाला व्यक्ति खुद के प्रयासों से शरीर के भीतर के दूषित तत्वों को बाहर निकालता है। और भविष्य में बीमार न पड़ने की सावधानियां बरतता है।[1] साधारण शब्दों में प्राकृतिक चिकित्सा का अर्थ प्राकृतिक तत्वों के द्वारा चिकित्सा है।

प्राकृतिक चिकित्सा मात्र एक चिकित्सा पद्धति नहीं वरन् जीवन जीने की एक कला है जिसके द्वारा रोगी बिना दवा के निरोगी हो जाता है। भारत में सर्वप्रथम महात्मा गांधी ने उरलीकांचन, पुणे में प्राकृतिक चिकित्सालय की स्थापना की जिसका संचालन विनोबा भावे के भाई बाल्कोबा भावे ने किया था।[2] इसके बाद देश के अन्य स्थानों पर प्राकृतिक चिकित्सालय खोले गए।

गांधी जी और प्राकृतिक चिकित्सा :

गांधी जी लिखते हैं कि प्राकृतिक चिकित्सा करने वाला, मरीज को इलाज बेचता नहीं है। वो उसे घर पर जीवन के सही तरीके से जीने के बारे में

सिखाता है। जिससे मरीज न केवल ठीक होता है वरन् भविष्य में बीमार पड़ने से अपने आप को बचाता है। प्राकृतिक चिकित्सा से सभी रोग ठीक हो जाते है, ऐसा नहीं है। दवा भी ऐसा दावा नहीं कर सकती, और यदि ऐसा होता तो हम सब अमर हो जाते।[3] गांधी जी ने स्वयं हवा, पानी व मिट्टी के कई प्रयोग किए।

पृथ्वी अर्थात् मिट्टी :

गांधी जी नैसर्गिक उपचारों का जीवन में महत्व बताते हुए कहते हैं कि जिन तत्वों से हमारा शरीर बना है वे ही नैसर्गिक उपचारो के साधन हैं। पृथ्वी (मिट्टी), पानी, आकाश (अवकाश), तेज (सूर्य) और वायु से यह शरीर बना है। इन साधनों के उपयोग के संबंध में भी गांधी जी ने बताया हैं।[4] प्राचीन काल में भी इन तत्वों का प्रयोग इलाज हेतु किया जाता था किन्तु बाद के काल में यह पद्धति लुप्त प्राय हो गयी। आधुनिक काल में जर्मनी से उसका पुनः प्रारंभ हुआ। और गांधी जी ने भारत में जन-जन तक इसे पहुंचाने का प्रयास किया।

गांधी जी कहते हैं कि 1901 के पूर्व तक वे तबियत अधिक बिगड़ने पर दवा का प्रयोग किया करते थे। प्रमुख रूप से कब्जियत के लिए फ्रुट साल्ट लेते थे जिससे कमजोरी और सिरदर्द होने लगता था। डा. प्राणजीवन मेहता की दवा से भी उन्हें तुरन्त आराम हो जाता था पर संतोष नहीं। भाई पोलाक की दी हुई पुस्तक जुस्ट की 'रिटर्न टू नेचर' का भी अध्ययन महात्मा गांधी ने किया था। जुस्ट ने कब्जियत में मिट्टी को ठंडे पानी में भीगोकर बगैर कपड़े के पेटू पर रखने की सूचना दी है पर गांधी जी लिखते हैं कि उन्होंने एक बारीक कपड़े में पुलटिस की तरह मिट्टी से लपेट कर सारी रात अपने पेटू पर रखा जिससे पेट साफ हो सका। उस दिन के बाद गांधी ने कभी फ्रूट सॉल्ट का प्रयोग नहीं किया।[5] प्राकृतिक चिकित्सा को अपनाने से पूर्व तक गांधी जी को तबीयत संबंधी अनेक परेशानियों का सामना करना पड़ा।

जुस्ट और स्वयं गांधी जी ने मिट्टी के कई प्रयोग किये जिससे स्वास्थ्य में बहुत लाभ भी हुआ। सिर दर्द, फोड़े, फुन्सी, बुखार, बिच्छु के डंक तथा टाइफाइड इत्यादि के इलाज में महात्मा गांधी ने स्वयं मिट्टी के प्रयोग किए है जो लगभग सफल साबित हुए है। इसके साथ ही गांधी जी मिट्टी के संबंध में भी लोगों को बताते थे कि चिकित्सा हेतु प्रयोग की जानेवाली मिट्टी सदैव साफ, कंकर रहित छनी हुई, सूखी तथा रेशम के समान होनी चाहिए। खादवाली मिट्टी

और बहुत अधिक चिकनी व रेतीली मिट्टी का प्रयोग नहीं करना चाहिए।[6] कई रोगों के निदान में यह पद्धति कारगर साबित हुई थी।

पानी :

क्युने ने पानी का उत्तम उपयोग ढूंढ निकाला था। गांधी ने स्वयं इस पुस्तक का अध्ययन किया था। प्रमुख रूप से गांधी जी ने कटि स्नान का कई बार प्रयोग किया था।[7] कटि स्नान अर्थात् एक टब में कमर डूब जाए इतना पानी भरकर 15-20 मिनट तक स्नान लेना इससे कमर संबंधी सभी दर्द और बीमारी में राहत मिलती है।

गांधी जी को अपने दूसरे बेटे को निमोनिया होने पर पानी का प्रयोग कर बुखार तोडने में सफलता पायी थी। इसमे उन्होंने गीली चद्दर और उसके ऊपर कंबल की लपेट देकर चद्दर स्नान जब तक बुखार नहीं उतरा उतने दिनों तक दिया।[8] गांधी जी ने पानी का प्रयोग कर न केवल स्वयं वरन् अपने बच्चों व अन्य लोगों की बीमारी ठीक करने में भी सफलता पायी थी। घमोरी, पित्ती (Prickly heat) खुजली, चेचक इत्यादि रोगों के निदान हेतु भी गांधी ने चद्दर स्नान का उपयोग किया था। इसके अलाव भाप स्नान द्वारा भी गांधी जी ने कई लोगों को स्वास्थ्य लाभ करवाया था।[9] इस तरह ठंडे पानी, गर्म पानी व भाप स्नान के विभिन्न प्रयोग भी गांधी जी द्वारा स्वयं पर व अन्य लोगों पर किए गए।

हवा :

हवा शरीर के लिए सबसे जरूरी चीज है। यह रक्त शुद्ध करती है। गांधी जी मुंह से सास लेने वालो का विरोध करते है। क्योंकि इससे हवा न साफ होती है और ना ही गरम। गांधी जी चाहते थे कि प्रत्येक मनुष्य प्राणायाम सीख ले। साथ ही वे नाक की शुद्धि हेतु जलनेति को महत्व देते हैं या नाक द्वारा पानी भी पी सकते हैं। निवास स्थान भी खुली जगह पर हो जिससे हमेशा शुद्ध हवा व प्रकाश घर में आता रहे।[10] नाक व गले हेतु भाप लेने के संबंध में भी गांधी जी ने बताया है।

आहार :

गांधी जी चावल व गेंहु के चोकर को भी भोजन में किसी न किसी रूप में इस्तेमाल करने की सलाह लोगों को देते थे। जिससे कैंज जैसी बीमारी से लोगों को मुक्ति मिले, साथ ही लोग स्वस्थ रह सके।[11] गांधी जी ने घर व आश्रम में भी आहार संबंधी कई प्रयोग किए थे।

पिछले 3 दशकों में चिकित्सा की पारंपारिक और वैकल्पिक प्रणालियों को मुख्यधारा में लाने के लिए काफी पहल की गई है। स्वास्थ्य और परिवार कलयाण मंत्रालय, भारत सरकार ने मार्च 1955 में भारतीय औषधि प्रणाली और होम्योपैथी का एक अलग और पूर्णकालिक विभाग बनाया गया था। नवंबर 2003 में इस विभाग का नाम बदलकर आयुर्वेद, योग और प्राकृतिक चिकित्सा, यूनानी सिद्ध और होम्योपैथी (आयुष विभाग) कर दिया गया। नवंबर 2004 में पूर्ण रूप से स्वतंत्र आयुष मंत्रालय बनाया गया।[12] इस विभाग के बनने के बाद बहुत से कार्य इस विभाग के द्वारा इन विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों के क्षेत्र में किए गए हैं।

छत्तीसगढ़ में सबसे प्राचीन प्राकृतिक चिकित्सालय डॉ. गुरु गोस्वामी प्राकृतिक चिकित्सालय जिसकी स्थापना महात्मा गांधी की प्रेरणा से डा. अमृत साहेब गुरुगोस्वामी जी ने 15 अगस्त 1958 को पुरानी बस्ती में की थी। भारत के सबसे वरिष्ठ प्राकृतिक चिकित्सक डा. अमृत साहेब गुरुगोस्वामी का 18 मई 2021 को निधन हो गया है। हैदराबाद में प्राकृतिक चिकित्सा का कोर्स करके डॉ. अमृत व उनकी धर्मपत्नी अन्नपूर्णा देवी ने छत्तीसगढ़ मे पहला प्राकृतिक चिकित्सालय खोला। वर्तमान में यह चिकित्सालय आनंदनगर, रायपुर में स्थित है जो अमृत साहेब के पुत्र डॉ. प्रणेश गोस्वामी एवं प्रपौत्र डॉ. अंकुर गोस्वामी द्वारा नेचर क्योर हॉस्पीटल के नाम से संचालित है। डॉ. प्रणेश गोस्वामी जी ने बताया की सबसे पहले भारत में गांधी जी के द्वारा 1940 में उरूलीकाचन, पुणे में प्राकृतिक चिकित्सालय स्थापित हुआ। फिर डॉ. विट्ठल दास मोदी के द्वारा 1948 में गोरखपुर में तत्पश्चात 1954 में बेगमपेठ हैदराबाद में गांधी नेचर क्योर नाम से देश में प्राकृतिक चिकित्सा पर आधारित पहला कालेज खुला।[13] आरोग्य मंदिर, प्राकृतिक चिकित्सालय के संस्थापक शंभुदयाल भारती जी ने छत्तीसगढ़ के एक प्राचीन प्राकृतिक चिकित्सालय के संबंध में अपने अनुभव साझा करते हुए बताया कि उन्हें रायपुर के फेमस स्टुडिओं (मालवीय रोड, रायपुर) के मालिक ने बताया था कि 1945-46 में बुढ़ापारा में एक प्राकृतिक चिकित्सालय था जहाँ उनके पिता ने इलाज लिया था।[14] यह चिकित्सालय वर्तमान में नहीं हैं। किंतु इससे यह तो अवश्य स्पष्ट होता है कि गांधी जी के 1940 में उरूलीकाचन में प्राकृतिक चिकित्सालय स्थापित करने के बाद गांधी जी को प्रेरणा स्वरूप मानकर छत्तीसगढ़ में भी इस दिशा में कार्य किया गया।

महात्मा गांधी चाहते थे कि प्रत्येक मनुष्य अपनी चिकित्सा स्वयं करे। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर प्राकृतिक चिकित्सा को अपने रचनात्मक कार्यक्रमों में भी उन्होंने शामिल किया था। प्राकृतिक चिकित्सा के इसी प्रचार व प्रचार को ध्यान में रखते हुए आज छत्तीसगढ़ प्राकृतिक चिकित्सा परिषद ने प्राकृतिक चिकित्सा की शिक्षा देने की व्यवस्था की है। परिषद द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम शिक्षण व प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद प्रशिक्षणार्थियों को एन.डी.डी.वाय. (डिप्लोमा इन नैचुरोपैथी एंड योगा) का डिप्लोमा प्रदान किया जाता है।[15] किंतु वर्तमान में अब तक इस डिप्लोमा कोर्स को मान्यता नहीं दी गई है।

परास्नातक तथा स्नातक आयुष कालेज (प्राकृतिक चिकित्सा) संस्थान की छ. ग. राज्य व देश में संख्या और प्रवेश क्षमता

प्राकृतिक चिकित्सा में	स्थान	कालेज की संख्या	प्रवेश क्षमता
स्नातक आयुष कालेज संस्थान	छत्तीसगढ़ में कुल	01	50
	देश में कुल	26	1730
परास्नातक आयुष कालेज/संस्थान	छ.ग. में कुल	0	0
	देश में कुल	3	47

स्त्रोत-Central Council of Indian Medicine (CCIM) (ii) UG/Ph Colleges, Minstry of Ayush, 2018

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि वर्तमान में छत्तीसगढ़ में प्राकृतिक चिकित्सा से संबंधित मात्र एक स्नातक कालेज श्री महावीर मेडिकल कालेज ऑफ नैचुरोपैथी एंड यौगिक साइंस के नाम से नगपुरा दुर्ग में है। इसकी स्थापना वर्ष 2002 में हुई थी। श्री लाभ विक्रम राज आरोग्यधाम संस्थान द्वारा भगवान महावीर के 2600 जन्म शताब्दी वर्ष के शुभ अवसर पर इसकी स्थापना की गई थी। यह कालेज आयुष और स्वास्थ्य विज्ञान वि. वि. से संबद्ध है। और केंद्रीय योग और प्राकृतिक चिकित्सा अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली द्वारा अनुमोदित है। यहा बैचलर ऑफ नेचुरोपैथी और यौगिक साइंस (बीएनवाईएस)

कोर्स उपलब्ध हैं।[16] इसके बाद आज तक कोई स्नातक या परास्नातक कालेज की स्थापना छत्तीसगढ़ में अब तक नहीं हो सकी हैं कई जिलों में प्राकृतिक चिकित्सालयों की स्थापना अवश्य हुई है। छत्तीसगढ़ के जिलों मे कुछ प्रमुख प्राकृतिक चिकित्सालयों के नाम—

जिला रायपुर में—वर्ष 1958 में स्थापित गुरुगोस्वामी प्राकृतिक चिकित्सालय आनंद नगर। वर्ष 1998 ई. में स्थापित आरोग्य मंदिर, चौबे कालोनी। टाटिया प्राकृतिक चिकित्सालय। मोहबा बाजार, प्राकृतिक चिकित्सालय। वी.आई.पी.रोड पर स्थित प्राकृतिक चिकित्सालय इत्यादि।

जिला दुर्ग में—आरोग्य प्राकृतिक चिकित्सालय, नगपुरा। डा. लक्ष्मीनारायण जी चंद्राकर द्वारा संचालित प्राकृतिक चिकित्सालय, पदनाभापुर। निर्मला गुप्ता द्वारा संचालित प्राकृतिक चिकित्सालय, दुर्ग।

जिला बिलासपुर में—डॉ. आनंद शर्मा द्वारा संचालित प्राकृतिक चिकित्सालय हेमु नगर में। एल. एम. तिवारी द्वारा संचालित प्राकृतिक चिकित्सालय, बिलासपुर।

जिला अंबिकापुर में—डॉ. सुजान भीम द्वारा संचालित प्राकृतिक चिकित्सालय।

जिला धमतरी में—डॉ. दिनेश नाग द्वारा संचालित गायत्री योग एवं प्राकृतिक चिकित्सालय, धमतरी।

जिला महासमुंद में—लोटस प्राकृतिक चिकित्सालय, रायतुम, बारनवापारा, इत्यादि।[17] यह चिकित्सालय पांच सितारा होटल की तरह हैं। और इस जिले में यह काफी प्रसिद्ध है। इसके अलावा कोरबा जिले में भी प्राकृतिक चिकित्सालय है।

शोध प्रारूप :

प्रस्तुत शोध में ऐतिहासिक व वर्णात्मक शोध प्रविधि के प्रयोग अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों को वर्णनात्मक रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, जिससे समस्या से संबंधित अंतर्निहित लक्षणों की जानकारी प्राप्त हो सके। प्रस्तुत अध्ययन छत्तीसगढ़ राज्य के रायपुर जिले के प्राकृतिक चिकित्सालयों के डाक्टर व मरीजों में से 60 लोगों का चयन कर किया गया है। अध्ययन विषय से संबंधित तथ्यों के संकलन के लिए साक्षात्कार व अवलोकन प्रविधि का प्रयोग किया गया हैं

तालिका संख्या-1

छत्तीसगढ़ में आज प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति की स्थिति

प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
पहले से अच्छी	59	98.33%
पहले से खराब	0	0
कोई परिवर्तन नहीं	1	1.66%
कुल योग	60	100

तालिका संख्या-1 से स्पष्ट है कि 98.33 : लोगों का कहना है कि छत्तीसगढ़ में प्राकृतिक चिकित्सा की स्थिति पहले से बहुत अच्छी है। मात्र 1.66 : लोगों का कहना हैं कि स्थिति पहले भी अच्छी नहीं थी और अब भी अच्छी नहीं है। इन 1.66 : के अनुसार दर्द होने पर या दूसरी किसी पद्धति से आराम नहीं मिलने पर लोग प्राकृतिक चिकित्सा की ओर रुख करते हैं। कई उत्तरदाताओं ने बताया कि स्वयं एलोपैथिक डाक्टर भी इस पद्धति से इलाज लेकर स्वास्थ्य लाभ लेते है। छत्तीसगढ़ की राज्यपाल सुश्री अनुसुइया उइके भी स्वयं इस पद्धति को प्रोत्साहन देती है।

तालिका संख्या-2

प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति के द्वारा इलाज लेना पसंद करने के कारण

प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
ऐलापैथी/या अन्य पद्धतियों से अधिक अच्छी है	7	11.66
लंबे समय तक इससे स्वास्थ्य लाभ रहता है	6	10
स्वास्थ्य हेतु ज्यादा अच्छी है	47	78.33
कुल योग	60	100

तालिका संख्या-2 से स्पष्ट है कि प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति के द्वारा इलाज लेना पसंद करने के कारण के संबंध में सर्वाधिक 78.33 प्रतिशत लोगों ने कहा कि यह स्वास्थ्य हेतु अधिक अच्छी है। आरोग्य मंदिर के प्रो. शंभुदयाल

भारती जी ने बताया कि लोगों के पास इस पद्धति के सिवा दूसरा कोई रास्ता भी नहीं है। जो लोग किसी इलाज से ठीक नहीं हो पाते वे अंतिम रूप से प्राकृतिक चिकित्सा को ही अपनाते हैं। कई मरीजों का इस संबंध में कहना था कि इससे शरीर को कोई नुकसान नहीं पहुंचता इसलिए भी वे इस पद्धति से इलाज लेना पसंद करते है।

तालिका संख्या-3

आप ऐसे कितने लोगों को जानते है जिन्हें इस पद्धति से स्वास्थ्य लाभ हुआ है। इस संदर्भ में उत्तरदाताओं के प्रत्युत्तर

प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
100-500	44	73.33
500-1000	10	16.66
1000 से ज्यादा	6	10
कुल योग	60	100

इस संदर्भ में प्रश्न पूछने पर 73.33 प्रतिशत लोगों ने उत्तर दिया कि वे 100-500 लोगों को जानते हैं जिन्होंने इस पद्धति से लाभ प्राप्त किया है। 16.66 प्रतिशत ऐसे 500-1000 के लगभग लोगों को जानते हैं। 10 प्रतिशत लोगों ने प्रमुख रूप से डॉक्टर को कहा कि वे हजारों लोगों को जानते है जिन्होंने इस पद्धति से स्वास्थ्य लाभ लिया है। डा. भारतीय एवं डॉ. गोस्वामी ने बताया कि वे आज तक 50,000 से भी ऊपर लोगों को इस पद्धति से स्वास्थ्य लाभ करवा चुके है।

तालिका संख्या-4

प्राकृतिक चिकित्सा को अपनाने का कारण

प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
अन्य पद्धतियों से लाभ न मिलना	38	63.33
ऐलोपैथी रिएक्शन	8	13.33
अन्य	14	23.33
कुल	60	100

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट हैं कि सर्वाधिक 63.33 प्रतिशत लोगों के प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति अपनाने का एक प्रमुख कारण अन्य पद्धतियों से लाभ नहीं मिल पाना हैं। 13.33 प्रतिशत लोगों ने ऐलोपैथी रिएक्शन होने पर इस पद्धति को अपनाया तथा 23.33 प्रतिशत लोगों का कहना हैं कि उन्होंने दोस्त, रिश्तेदार व पड़ोसी इत्यादि को इस पद्धति से आराम मिलने पर स्वयं भी इसी पद्धति से इलाज करवाया। कुछ लोगों ने बताया कि उन्होंने एलर्जी व कैंज के लिए रोज दवा लेनी पड़ती थी पर पूर्ण आराम नहीं मिल पाता था। होम्योपैथी इलाज के बाद भी ज्यादा आराम नहीं हुआ तब प्राकृतिक चिकित्सा से इलाज किया। अब पूर्ण आराम है और दवा भी लेने की जरूरत नहीं पड़ती।

तालिका संख्या-5

यह पद्धति तंबाकू, गुटका, सिगरेट या अन्य व्यसन का सेवन बंद करने में सहायक है

प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
हां	42	70
नहीं	1	1.66
पता नहीं	17	28
कुल	60	100

क्या यह पद्धति विभिन्न व्यसनो के सेवन को छुड़ाने में सहायक है, इस प्रश्न के जबाव में 70 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सकारात्मक उत्तर दिया। 1.66 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने नकारात्मक तथा 28.33 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि उन्हें इस संबंध में जानकारी नहीं है। इस पद्धति के चिकित्सकों का उत्तर है कि यदि लोग व्यसन छोड़ना चाहे तो यह चिकित्सा पद्धति अवश्य कारगर है।

तालिका संख्या-6

इस पद्धति से इलाज लेने वाले लोग किस आय समूह के है

प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
निम्न	5	8.33
मध्यम	20	33.33
उच्च	35	58.33
कुल	60	100

तालिका संख्या-6 से स्पष्ट हैं कि इस पद्धति से इलाज लेने वालो में निम्न आय वर्ग के मात्र 8.33 प्रतिशत लोग इस पद्धति से इलाज लेते हैं। मध्यम वर्ग के 33.33 प्रतिशत लोग एवं उच्च वर्ग के 58.33 प्रतिशत लोग इस पद्धति से इलाज लेते है। इस संबंध में आरोग्य मंदिर, चौबे कॉलोनी, रायपुर में इलाज हेतु आए अभ्यांकर खरे का कहना है कि जो व्यक्ति शारीरिक कार्य अधिक करते हैं, उन्हें इसकी जरूरत ही नहीं पड़ती है। साथ ही अभ्यांकर खरे का कहना था कि यह इलाज बहुत महंगा है, चाहकर भी यह इलाज हम नहीं ले सकते हैं। स्पष्ट हैं कि निम्न वर्ग के साथ ही मध्यम वर्ग के भी कई मरीज प्राइवेट संस्थानों द्वारा लिए जाने अधिक मूल्य के कारण इस पद्धति द्वारा इलाज का लाभ नहीं ले पाते है।

तालिका संख्या-7

प्राकृतिक चिकित्सा से किसी प्रकार दुष्प्रभाव (साइडइफैक्ट) का आकलन

प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
हां	0	0
नहीं	56	93.33
पता नहीं	4	6.66
कुल	60	100

तालिका संख्या-7 में जिन उत्तरदाताओं ने नहीं में उत्तर दिया उन्हें या उनके परिचितों को इस पद्धति से इलाज लेने में कभी कोई दुष्प्रभाव (साइडइफैक्ट) नहीं हुआ है। 6.66 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने पता नहीं कहा हैं। उन्हें स्वयं को भी कभी इस चिकित्सा से कोई दुष्प्रभाव (साइडइफैक्ट) नहीं हुआ है। इस प्रश्न के उत्तर के संबंध में अखिल भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा परिषद के राष्ट्रीय कार्यकारिणी सदस्य श्री छगनलाल जी सोनवानी ने बताया कि इस इस पद्धति का कोई दुष्प्रभाव नहीं है। यह पद्धति संपूर्ण शरीर को रोग मुक्त करती है। इस पद्धति से जब इलाज करवाया जाता है तो उभार आता है। यह उभार शरीर के अंदर की अन्य बीमारियों को नष्ट करने हेतु आता है। इससे डरने की आवश्यकता नहीं होती। अपितु इलाज लेते रहे यह चिकित्सा शरीर की संपूर्ण बीमारियों को खत्म कर देती है।

तालिका संख्या-8

प्राकृतिक चिकित्सा के प्रति जागरूकता बढ़ाने हेतु सरकार द्वारा किये गए प्रयास चाहिए

प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
हां	23	38.33
नहीं	1	1.66
प्रयास किए जा रहे है किंतु अपर्याप्त	36	60
कुल	60	100

तालिका संख्या-8 में निहीत प्रश्न पूछे जाने पर 38.33 प्रतिशत लोगो का कहना है कि निश्चित रूप से इस चिकित्सा पद्धति के प्रति लोगों में जागरूकता बढ़ाने हेतु सरकार द्वारा प्रयास किए जाने चाहिए। 1.66 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि लोगों में जागरूकता है और सरकार द्वारा प्रयास किए जाने की जरूरत नहीं है। सर्वाधिक 60 प्रतिशत उत्तरदाताओं कहा कहना है कि इस दिशा में प्रयास किए जा रहे हैं किंतु अपर्याप्त है। उनका कहना है कि लोगो में जागरूकता और बढ़ायी जानी चाहिए। कई लोगो को प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति से भी इलाज होता है इस संबंध में जानकारी ही नहीं है। आरोग्य मंदिर, रायपुर के डॉक्टर विवेक भारतीय का कहना है कि इस दिशा में निजी संस्थान (प्राइवेट इंस्टीट्युट एंड प्राइवेट प्रेक्टीशनर) तो अवश्य कार्य कर रहे हैं। पर सरकार की ओर से अधिक सहयोग व समर्थन नहीं मिल पा रहा हैं। भनपुरी, रायपुर (छत्तीसगढ़) में निःशुल्क योग सिखाने वाले श्री छगनलाल सोनवानी का कहना हैं कि लोगों में जागरूकता बढ़ाने हेतु ज्यादा से ज्यादा शिविर लगाना चाहिए।

निष्कर्ष :

प्राकृतिक चिकित्सा मात्र चिकित्सा नहीं वरन् जीवन जीने की एक कला है गांधी जी चाहते थे कि भारत का प्रत्येक व्यक्ति प्राकृतिक चिकित्सा का ज्ञान प्राप्त करे ताकि वह इस क्षेत्र में भी स्वावलंबी बन सके। आज गांधी जी के दिखाए रास्ते पर चलते हुए छत्तीसगढ़ राज्य में भी कई प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र खुल गए हैं, जो लोगों के रोग निदान के साथ ही उन्हें जीवन जीने की यह कला सिखाने में अपनी महत्ती भूमिका का निर्वाह कर रहे हैं। आज कई प्राकृतिक चिकित्सालयों में योग भी सिखाया जा रहा हैं ताकि लोग स्वस्थ रह सके।

छत्तीसगढ़ की वर्तमान महामहिम राज्यपाल सुश्री अनुसुईया उइके भी प्राकृतिक चिकित्सा की एक प्रमुख समर्थक हैं जो इसे आगे बढ़ाने हेतु प्रयास कर रही हैं। किंतु सरकार द्वारा किए गए प्रयास अब भी अधुरे हैं। इस चिकित्सा पद्धति से इलाज लेने वाले अधिकतर उत्तरदाताओं का कहना हैं कि निजी प्राकृतिक चिकित्सालयों की फीस उनके लिए बहुत ज्यादा है इसलिए सरकार की ओर से भी प्राकृतिक चिकित्सालय हर जिले में खोले जाने चाहिए, ताकि इस चिकित्सा का फायदा हर वर्ग के लोग उठा सकें। निजी प्राकृतिक चिकित्सालयों का कहना है कि लोगों में इस चिकित्सा के प्रति जागरूकता बढ़ाने हेतु प्रयास करना चाहिए। हम अकेले ही इस दिशा में प्रयासरत है। सरकार का हमें कोई सहयोग नहीं मिल पा रहा है। इस हेतु निःशुल्क शिविर द्वारा भी लोगों को इस ओर जागरूक किया जा सकता है। साथ ही आज इस क्षेत्र में करियर बना कर भी हजारों, लाखों लोगों को रोजगार प्राप्त हो सकता हैं। छत्तीसगढ़ के कई लोग आज भी राज्य से बाहर जाकर और कुछ आर्थिक रूप से संपन्न व्यक्ति देश से बाहर जाकर इस चिकित्सा पद्धति का ज्ञान प्राप्त कर, डिग्री लेकर आते हैं यदि छत्तीसगढ़ में ही ऐसे कालेज और विश्वविद्यालय खुल जायें और इस विषय पर नये-नये शोध हो सके तो यहां के विद्यार्थियों को बाहर जाने की आवश्यकता ही न पड़े वरन् दूसरे राज्य के विद्यार्थी हमारे राज्य में इस विषय का ज्ञान और डिग्री लेने आएं जिससे इस क्षेत्र में भी छत्तीसगढ़ प्रगति कर अपने इस ज्ञान का स्वर्णिम प्रकाश पूरे देश व विश्व में फैला सके।

संदर्भ ग्रंथ

1. *हरिजन*, 2-6-1946
2. *भारतीय विवेक एवं छगनलाल, कौन बनेगा स्वास्थ्य रक्षक*, इंटरनेशनल नैचुरोपैथी आर्गेनाइजेशन एवं म. प्र. प्राकृतिक चिकित्सा परिषद, भोपाल, मध्य प्रदेश, पृ. 3
3. *हरिजन*, 7-4-1946
4. *गांधीजी, अरोग्य की कुंजी*, (अनु. सुशीला नय्यर), नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1948, पुर्नप्रकाशित 2013, पृ. 34
5. उपरोक्त, पृ. 35
6. उपरोक्त, पृ. 36-37
7. 'सत्यलक्ष्मी, अवंतिका एवं पवन कुमार, महात्मा गांधी और प्राकृतिक चिकित्सा', (संकलित), राष्ट्रीय प्राकृतिक चिकित्सा संस्थान, आयुष मंत्रालय, भारत सरकार, बापु भवन, पुणे, 2019, पृ. 42

8. उपरोक्त, पृ. 25
9. *गांधी जी, आरोग्य की कुंजी*, पूर्वोक्त, पृ. 43
10. उपरोक्त, पृ. 5
11. *संपूर्ण गांधी वांड्मय*, खंड-62, (अक्टूबर 1935-मई 1936), सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1975, पृ. 27
12. *योजना*, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, जून 2019, पृ. 26
13. साक्षात्कार, डॉ. प्रणेश गोस्वामी, डॉ. गुरु गोस्वामी प्राकृतिक चिकित्सालय, आनंद नगर, रायपुर, छ.ग., 31.03.2021
14. साक्षात्कार, प्रो. शंभुदयाल भारतीय, आरोग्य मंदिर (प्राकृतिक चिकित्सालय) चौबे कालोनी, रायपुर, छ.ग., 21.03.2021
15. उपरोक्त
16. 1- www.collegedunia.com>durg>shri Mahavir Medical college of Naturopath And Yogic Science, retrieved at 20.30 pm on 19 June. 2021.
17. साक्षात्कार, छगनलाल सोनवानी, अखिल भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा परिषद के राष्ट्रीय कार्यकारिणी के सदस्य, भानपुरी, रायपुर, छ.ग., 28.03.2021

डॉ. अंकिता कमल पुरोहित
सहायक प्राध्यापक
इतिहास विभाग
लोक महाविद्यालय, वर्धा (महा.)

❑❑❑

'महामारी (कोविड-19) में पुलिस की सामाजिक भूमिका'

(छत्तीसगढ़ के दुर्ग जिले के विशेष संदर्भ में)

• नरेश कुमार पटेल

विश्व के इतिहास में प्राचीन काल से ही महामारी के दुष्प्रभाव की जानकारी प्राप्त होती है। मध्यकालीन भारतीय इतिहास में महामारियों के समय पूरा नगर एवं ग्राम उजाड़ होने के उल्लेख प्राप्त होते हैं। आधुनिक विश्व में भी महामारी और उससे होने वाली तबाहियों की विस्तार से जानकारी प्राप्त होती है। ब्रिटिशकालीन भारत में प्लेग और हैजा ऐसी महामारियां थीं जिससे देश के अलग-अलग हिस्से चपेट में आ रहे थे। लार्ड कर्जन के वायसराम बनने पर तिलक ने कहा था कि '1898 में देश पर तीन भयंकर प्राकृतिक अपदायें आयी थीं, अकाल प्लेग और कर्जन'। उसे विक्रम संवत् के आधार पर 56 का अकाल कहा जाता है। इस प्लेग एवं अकाल पर ब्रिटिश सरकार की एक रिपोर्ट में लिखा गया है उत्तर भारत में मनुष्य और पशुओं की हड्डियों से उत्तर भारत के मैदान सफेद हो गये थे। इस समय महाराष्ट्र के प्लेग कमिश्नर आरेस्ट एवं रैंड इस महामारी से रक्षा के लिए जो कदम उठाये थे जिससे क्रांतिकारी नाराज होकर इन दोनों को गोली मार दी थी।

भारत को तबाह करने वाली आखिरी बड़ी महामारी 1918 ई. में आई 'स्पेनिश फ्लू' थी, जिसने 15 लाख भारतीयों की जान ले ली थी। यह बताया गया था कि यह बाम्बे बंदरगाह के माध्यम से भारत में आया था, 'बाम्बे बुखार' के साथ अस्पताल में भर्ती होने वाले पहले सात पुलिस सिपाहियों को बाम्बे डाक पर तैनात किया गया था। अब एक बार फिर जब भारत कोविड 19 महामारी की श्रृंखला को तोड़ने की राह पर है, तो पुलिस फिर से लाकडाउन को लागू करने के लिए अग्रिम पंक्ति में आ गई।

 ISSN 2278-4632 जुलाई-दिसम्बर 2021

इस समय पूरी दुनिया कोरोना वायरस की चपेट में है करोड़ों लोग संक्रमित हो चुके हैं और लाखों लोगों की मौत हो चुकी है। ऐसे में सबसे पहले हम संक्षिप्त में यह समझते हैं कि इसका नाम कोरोना वायरस कैसे पड़ा, इसे कोविड-19 नाम किसने दिया और किसी महामारी का नाम कैसे रखा जाता है?

सेंटर फॉर डिजीज कंट्रोल एंड प्रिवेंशन के मुताबिक, कोरोना वायरस वायरसों का एक समूह है। इनके संक्रमण से फ्लू जैसा लक्षण देखने को मिलता है कोरोना वायरस का नाम 'कोरोना' से लिया गया है। कोरोना का लैटिन भाषा में अर्थ 'क्राउन' या ताज होता है। कोरोना वायरस की सतह पर कांटे जैसी आकृति होती है जो देखने में ताज जैसी लगती है। इसी वजह से इसे कोरोना नाम दिया गया।[1]

दरअसल कोविड-19 संक्षेप में है इसका पूरा नाम है Coronavirus Diseoses है। चूंकि यह बीमारी 2019 में फैली इसलिए इसका पूरा नाम Coronavirus Diseoses 2019 हुआ। अब Corona का Co, Virus का VI और Diseases का D मिलाकर COVID19 नाम कर दिया गया। COVID19 इस महामारी का नाम है जो SARS COV2 वायरस से होती है। 11 फरवरी 2020 को विश्व स्वास्थ्य संगठन ने एक प्रेस रिलीज जारी किया और उसके माध्यम से 2019 की कोरोना वायरस बीमारी को कोविड-19 नाम दिया।[2]

31 दिसम्बर 2019 को चीन के डब्ल्यू.एच.ओ. कंट्री ऑफिस में न्यूमोनिया के नये और अजीबों गरीब मामले सामने आये। उसका कारण पता नहीं था चीन के वुहान शहर में ऐसे मामले बड़ी संख्या में सामने आये। फिर पता चला कि ये संक्रमण में सामने आये। फिर पता चला कि ये संक्रमण नए कोरोना वायरस की वजह से हो रहा है। जिसका नाम 2019 नोवल कोरोना वायरस (2019-nCov) दिया गया। बाद में 11 फरवरी 2020 को टैक्सोनोमी ऑफ वायरसेज की इंटरनेशनल कमेटी ने इसका नाम Severe acute respiratory syndrome Coronavirus 2 SARS-COV-2 दिया। इसका नाम SARS-COV-2 इसलिए दिया गया क्योंकि यह उस कोरोना वायरस का जेनेटिक कजन है जिससे 2002 में SARS-COV फैला था।

आज पूरा विश्व जिस वैश्विक महामारी COVID19 से जूझ रहा है इससे सरकारों, स्वास्थ्य सेवाओं और आम जनता की तैयारियों के स्तर पर इस वायरस की चुनौतियों से निपटने के लिए काफी बहस हुई और हो रही है।

हालांकि इस बहस के बीच अपेक्षाकृत कम चर्चा ने महामारी में पुलिस की भूमिका पर विचार किया है यह बहुत आश्चर्य की बात है क्योंकि बहुत लोगों के लिए पुलिस अंतिम उपाय की आपातकालीन सेवा है और इसलिए किसी भी प्रतिक्रिया में काफी हद तक शामिल होने की उम्मीद की जाती है।

जैसा कि हम सब इसी बात से सहमत होंगे कि भारतीय पुलिस संगठन के लिए उपलब्ध संसाधन बेहद कम हैं। हालांकि इन बाधाओं के बावजूद पुलिस संगठन ने लॉकडाउन को लागू करवाने और सामुदायिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने की चुनौती का सामना किया है।[3] पुलिस का काम शासन एवं न्याय पालिका के द्वारा बताये नियम का पालन कराना होता है अतः इस भयंकर घातक बीमारी में अपनी इस भूमिका का पालन में जुट गयी।

24 मार्च 2020 को भारत सरकार ने घोषणा की कि भारत के सभी नागरिकों को 21 दिनों के लिए घर पर रहना होगा। कोविड-19 को लेकर सरकारों की प्रतिक्रिया का अध्ययन कर रही ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय की गवर्नमेंट रिस्पांस ट्रैकर की रिपोर्ट बताती है कि इस मामले में भारत की प्रतिक्रिया दुनिया में सबसे कठोर है जिसने 1.3 अरब लोगों को प्रभावित किया है। लॉकडाउन को बाद में और बढ़ा दिया गया था जो कि अत्याधिक प्रतिबंधात्मक था जिससे नागरिकों को उनके घरों के बाहर केवल आवश्यक आवाजाही के लिए ही अनुमति मिलती थी। इसका सबसे ज्यादा प्रभाव तत्कालिक मौसमी प्रवासी मजदूरों पर पड़ा। ये ऐसे नागरिक हैं, जो अपने मूल गांव के घरों की सुरक्षा के लिए शहरों से पलायन करने को मजबूर थे।

इसके अलावा कोविड-19 लॉकडाउन का एक और महत्वपूर्ण लेकिन कम दिखाई देने वाला पहलू पुलिस का समाज सेवा कार्य है।[4] क्योंकि लॉकडाउन के आदेश एवं कानून को सफल बनाना सिर्फ नियम पालन कराना, लॉ एण्ड आर्डर को सुधारना न होकर मानवता की सेवा थी, क्योंकि लॉकडाउन के उल्लघंन करने पर मानवता पर संकट आ सकता था। इससे लाखों मनुष्यों को मारे जाने की आशंका थी। अतः स्वयं जीवन के प्रति खतरे से बिना भयभीत हुए पुलिस मानवता की सेवा में जुट गयी थी।

पूरे भारत में स्थानीय स्तर पर पुलिस प्रशासन को सामाजिक दूरी को लागू कराने का काम सौपा गया, हालांकि पुलिस की गतिविधियॉ के अनुपालन के लिए पुलिस संगठन एक प्रमुख आधार है और लॉकडाउन के दौरान तत्काल सहायता की जरूरत ने पुलिस अधिकारियों को नागरिकों के नियमित संपर्क में

ला दिया। सूचना और आवश्यक आपूर्ति प्रदान करने वाले भारत के जन स्वास्थ्य अभियान में भी पुलिस अधिकारी सबसे आगे रहे हैं।

जैसा कि लॉकडाउन लागू होने से लोगों के जीवनशैली में बड़ा बदलाव आया, पुलिस ऐसे बदलावों को लागू कराने के तरीके खोजने के लिए संघर्ष करती रही। रोजमर्रा की ज़िंदगी की सड़क संस्कृतियां, गर्म और आद्र जलवायु के लिए जलवायु समायोजन जहॉ खुले स्थानों तक पहुंच एक आवश्यकता बन जाती है और आवश्यक सेवाओं की दुकान बंद होने की दहशत घर पर रहने के बावजूद सड़कों पर भीड़ की ओर ले जाती है। इन सब समस्याओं ने पुलिस बल पर प्रतिबंधों को लागू करने का दबाव डाला क्योंकि कुछ ने तो नियमों का पालन करना शुरू कर दिया जबकि कुछ लोग अभी भी अवहेलना कर रहे थे। प्रतिबंध लगाने के लिए, लॉकडाउन के पहले दिन से ही पुलिस बल को पूरे देश में गश्ती वैन और पैदल गश्त में तैनात किया गया था। अधिकांश पुलिस बलों ने बिना बल प्रयोग के सख्त अभिगम नियंत्रण और आवाजाही प्रतिबंध के माध्यम से लॉकडाउन लागू कराने में सफलता हासिल की।[5]

स्वतंत्र भारत में पुलिस की भूमिका में बड़ा बदलाव आया है। जहां ब्रिटिश समय में उन्हें जनता को क्रूरता से दबाने का सबक सिखाया जाता था, जैसे जलियावाला बाग हत्याकांड हुआ था। उसके विपरीत अब उन्हें सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति सचेत रहने का मंत्र दिया जाता है। अतः कोविडकाल में पुलिस के दायित्वों का प्रसार किया गया। उन्होंने स्वयं आगे बढ़कर मानवतापूर्ण रवैया अपनाते हुए भूखे लोगों को भोजन कराया। अब पुलिस कर्मियों को पुलिस कैरियर की शुरूआत से ही पुलिस की नौकरी की भूमिका में सामाजिककृत किया जाता है जहाँ सार्वजनिक व्यवस्था प्रबंधन और भीड़ नियत्रंण कार्यो को पुलिसिंग में सबसे आवश्यक कौशल के रूप में लिया जाता है और पुलिस का यह कौशल वर्तमान मामले में बहुत उपयोग में आया है।

लॉकडाउन के कारण सड़कों पर पुलिस की बढ़ती उपस्थिति ने पुलिस को स्वास्थ्य कर्मियों के अलावा किसी भी अन्य पेशेवर समूह की तुलना में बहुत अधिक दुःख और गरीबी का सामना कर रहे गरीब शहरी प्रवासी कामगारों द्वारा भी अनुभव किया गया था जो पैदल अपने गॉव लौटने लगे और इन श्रमिकों के संकट का अनुभव किया जो दैनिक मजदूरी के आधार पर जीवित रहते हैं।

पुलिस के दायित्वों का प्रसार मैदान पर किसी अन्य कार्यकर्ता के प्रतिबंध के कारण पुलिस यह जिम्मेदारी लेती है और इस भेदयता को दूर करती है।

लॉकडाउन की आवाजाही पर पांबदी को प्रभावित करने के लिए अधिकांश पुलिस बलों ने या तो सरकार द्वारा चलाये जा रहे रसोई के बीच सेतु बनकर या कई जगहों पर गरीबों को भोजन कराने के लिए स्वयं पुलिस कर्मचारियों द्वारा अभियान चलाकर गरीबों के लिए भोजन शुरू किया।[6]

पुलिस बल के पास जाँच का अनुभव है और वायरस से प्रभावित लोगों का पता लगाने के लिए पुलिस के इस कौशल की आवश्यकता होती है। संपर्क ट्रेसिंग, संक्रमण वायरस के तेजी से प्रसार के इस समय में बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि स्वास्थ्य क्षेत्र संघर्ष कर रहा है। अपने संसाधनों और पहुंच का प्रबंधन कर पुलिस ने प्रभावित लोगों के बैकवर्ड और फारवर्ड लिकेंज ग्राफ खीचकर वायरस के पकड़ने के पैटर्न को डिकोड करके और प्रभावित व्यक्तियों के संपर्क में आने वालों की पहचान करके कॉन्टेक्ट ट्रेसिंग की COVID-19 प्रभावित व्यक्तियों के संपर्क ट्रेसिंग की जांच में पुलिस का बुनियादी जांच कौशल एक मूल्यवान संसाधन साबित हुआ। प्रभावित व्यक्तियों के संपर्को का पता लगाने के लिए, पुलिस बल द्वारा अन्य सायबर फोरेंसिक उपकरणों के साथ-साथ प्रभावित व्यक्ति के मोबाईल फोन के कॉल डिटेल रिकार्ड से संबंधित सीडीआर विश्लेषण का उपयोग किया गया। संपर्क इतिहास (कान्टेक्ट हिस्ट्री) को समझने और प्रसार के मॉडल बनाने के लिए सायबर पुलिस विंग और जिला पुलिस सेटअप है जो स्वास्थ्य कर्मियों के साथ काम कर रहे हैं। संपर्क ट्रेसिंग करने के लिए पूरे भारत में पुलिस अपने जांच कौशल, साइबर फोरेंसिक उपकरण और डिजिटल जांच कौशल का उपयोग कर रही है। संपर्क ट्रेसिंग पर पुलिस की भूमिका नहीं रुकती। यह इन व्यक्तियों का शारीरिक रूप से पता लगाने और स्वास्थ्य कर्मचारियों को स्वास्थ्य सलाहकार के अनुसार पहचाने गये व्यक्तियों का परीक्षण, अस्पताल में भर्ती या संगरोध (क्वारेन्टाइन) के लिए समझाने में मदद करता है।[7]

हालांकि पुलिस संख्या बल की कमी और काम के बढ़ते दबाव के सामाजिक संदर्भ को देखते हुए भारत में अग्रिम पंक्ति के पुलिस अधिकारियों पर लॉकडाउन भारी बोझ साबित हुआ है। सामाजिक दूरी मूल रूप से सामाजिक मानदंडों का उल्लघंन करती है और यह गरीबों की रोजमर्रा की जरूरतों व उनकी आजीविका के साथ टकराव के हालात बनाती हैं। भारत में स्थानीय निकायों में सड़क पर व्यवसाय की संस्कृति फल-फूल रही है। जिसमें लोग सड़क के किनारे खुले में भोजन और सामान बेचते हैं। यह व्यापक शहरी अनौपचारिक अर्थव्यवस्था श्रमिकों की मुक्त आवाजाही को सहज बनाती है।

ग्रामीण भारत में जल स्रोत जीवंत सामुदायिक स्थल या चौपाल के रूप में जाने जाते हैं जहाँ ग्रामीण एकत्रित होकर सूचनाओं का आदान प्रदान करते हैं। जैसा कि मालूम है लॉकडाउन वार्षिक रबी फसल तक बढाया गया। इससे कृषि अर्थव्यवस्था भी दबाव में आ गयी।

पुलिस के लिए लॉकडाउन एक विस्फोटक स्थिति बनती गयी। फ्रंटलाईन अधिकारी लॉकडाउन नियमों में कुछ ढील की उम्मीद कर रहे थे लेकिन उनका मकसद इससे भी बदतर हालातों को रोकना है जिससे कि बड़े पैमाने पर हिंसा न हो, कानून व्यवस्था बनी रहे। जहाँ तक क्षमता की बात है भारतीय पुलिस लंबे समय से कर्मियों और संसाधनों की कमी से जूझ रही है। जनसंख्या के आंकड़ों को देखें तो भारत में पुलिस अनुपात प्रत्येक एक लाख नागरिकों के लिए 193 है जो अन्य देशों की तुलना में बहुत कम है। पुलिस के कुल बजट में से 80-90 फीसदी खर्च कर्मियों और अन्य 10 प्रतिशत नियमित रखरखाव में व्यय होता है।

पुलिस की निरोधक गतिविधि, सामुदायिक पुलिसिंग और नागरिकों तक पहुंच के लिए विभाग को उपलब्ध धनराशि बहुत कम है इन बाधाओं के बावजूद भारतीय पुलिस एजेसियों ने लॉकडाउन को लागू करने और सामुदायिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने की चुनौती का बखूबी सामना किया है।[8]

जबकि लॉकडाउन के प्रबंधन के दौरान पुलिस द्वारा सामना किये जाने वाले व्यक्तिगत जोखिम उन पर शारीरिक हमले और प्रभावित लोगों के संपर्क के दौरान वायरस के संपर्क में आने के मामले भी सामने आये हैं। आंदोलन एवं प्रतिबंधों को लागू करते समय पुलिस बल द्वारा सामना किये जाने वाले शारीरिक हमले कई बार खतरनाक हथियारों से भी हमला किया गया, गालियां दी गई हैं कई जगहों पर पथराव किया गया है। पुलिस के काम की प्रकृति के कारण जोखिम और भी बढ़ जाता है जहाँ सामाजिक दूरी को पालन करना बहुत कठिन होता है लॉकडाउन के प्रबंधन में शामिल पुलिस कर्मचारियों के परिवारों को भी जोखिम उठाना पड़ा क्योंकि वायरस के साथ पुलिस संपर्क ने उनेक परिवारों के लिए भी जोखिम बढ़ा दिया। कई पुलिस परिवार के सदस्यों के बीच वायरस के फैलने की घटनाओं का भी पता चला।

महामारी के दौरान पुलिस फांउडेशन विभागों को अपने सार्वजनिक सुरक्षा लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करते रहे और इच्छुक दानदाताओं से वित्तीय और कई तरह के समर्थन लेकर पुलिस एजेसियों की सहायता निम्न

प्रकार से करते रहे—

1. पर्सनल प्रोटेक्सन किट, ग्लब्स, हैड सेनेटाइजर और हैड सेनेटाइजिंग वाइप्स।
2. चौबीसो घंटे संचालन के स्वच्छता किट और मोबाईल चार्जर आदि।
3. पुलिस सुविधाओ और उपकरणों के परिशोधन के लिए धन उपलब्ध कराना।
4. पुलिस अधिकारियो के लिए सेनिटाईजर स्टेशनों की व्यवस्था करना।
5. उन अधिकारियों के लिए आवास की व्यवस्था करना जो बीमार हैं या परिवार से खुद को अलग करने की जरूरत पड़ी।
6. अधिकारियों के लिए नाई और जूतों की सुरक्षित व्यवस्था करना ताकि वे इस दौरान अपने सम्मान एवं मानकों को बनाये रख सकें।
7. सोशल मीडिया अभियानो के माध्यम से कानून प्रवर्तन के लिए समर्थन को बढावा दिया।[9]

अन्य राज्यों की भांति छत्तीसगढ़ राज्य की पुलिस व्यवस्था भी अग्रणी पंक्ति में रही और इस महामारी के दौरान सशक्त प्रबंधन किया।

छत्तीसगढ़ के 29 जिलों में दुर्ग जिले की पुलिस व्यवस्था भी अग्रिम पंक्ति में खड़ी रही। चूंकि मेरे शोध पत्र का विषय कोविड 19 के दौरान दुर्ग जिले का पुलिस प्रबंधन है यहाँ दुर्ग जिले में पुलिस की भूमिका की बात करें तो छत्तीसगढ़ का यह पहला जिला रहा जहाँ कॉलर टयून को लेकर कई प्रयोग किये गये जैसे देश भर में इन दिनों सारे मोबाईल कंपनियों ने कॉल टयून मे कोविड 19 से बचने के टिप्स वाली टोन लगा रखी थी ताकि लोगों को कोरोना वायरस से बचने के लिए जागरूक किया गया लेकिन दुर्ग पुलिस ने एक कदम आगे बढकर अपना क्रिएशन दिखाया और दुर्ग पुलिस के सभी कर्मचारियों/ अधिकारियों के सरकारी नंबर पर साईबर संगी का कॉलर टयून चलता रहा ताकि लोग जब भी पुलिस को फोन लगायें तो उन्हें साइबर क्राईम से बचने के टिप्स मिलते रहे और उन्हें वह सारी चीजें याद रहे कि उन्हें साईबर क्राईम से बचने के लिए क्या करना है और क्या सावधानी रखनी है इसके पीछे कारण यह था कि लॉकडाउन के दौरान ज्यादा लोग साईबर ठगी के शिकार हो रहे थे।[10] इसी तरह लॉकडाउन के दौरान दुर्ग पुलिस की सोशल मिडिया में बढ़ती लोकप्रियता को देखते हुए लोग पुलिस को अपनी समस्या बताते रहे। पुलिस भी उनकी समस्या

का समाधान करती रही। छत्तीसगढ़ में टिक टॉक की साइट पर सिर्फ दुर्ग पुलिस दिखाई दे रही थी जहां वह लोगों को जागरूक करती रही। उनके वीडियो और सुझाव के चलते लगातार लोकप्रियता मिलती रहे। इस पर करीब 15 लाख लोगों ने लाइक्स किया। एक लाख 80 हजार लोग दुर्ग पुलिस के फॉलोवर है इसमें साइबर क्राइम और कोरोना वायरस के संक्रमण से बचने के लिए सुझाव दिये जा रहे है।[11] तत्कालीन दुर्ग कलेक्टर अंकित आनंद व एस.एस.पी अजय यादव, एडिशनल एस.पी. एवं अन्य वरिष्ठ अधिकारियों के साथ लगभग 100 पुलिस कर्मियों ने शहर के विभिन्न मोहल्लों में पैदल चलकर जनता को कोरोना वायरस के बारे में जागरूक किया। इसी दौरान एक रोचक वाक्य हुआ। शनिचरी बाजार से एक बुर्जुग महिला भाजी बेचने बैठी थी जिस पर क्लेक्टर की नज़र पड़ी। जिसको देखकर कलेक्टर और एसपी ने उन्हें समझाया कि अभी दुकान बंद करने का समय है आप सब्जी नहीं बेच सकती। उन्हें समझाने के साथ मानवता का परिचय देते हुए कलेक्टर ने उसकी पूरी भाजी को खरीद लिया। उसे मास्क पहनने के साथ साथ-साथ शासन के दिशा निर्देशों का पालन करने की समझाइस भी दी, पूरे पैदल मार्च में जगह-जगह दुर्ग की जनता के द्वारा पुलिस टीम का उत्साहवर्धन किया गया।

लॉकडाउन के दौरान दुर्ग पुलिस ने लोगों को फिट रहने के लिए एक अनोखा कार्यक्रम शुरू किया। दुर्ग पुलिस ने स्टे होम स्टे हेल्दी व स्टे फिट कार्यक्रम के तहत स्मृति नगर के सुर्या अपार्टमेंट, दुर्ग कातुलबोर्ड एवं ऋषभ ग्रीन सिटी में पुलिस ने लोगों को फिट रहने के लिए प्रेरित किया और लोगो ने भी इसकी सराहना की।[12]

इसी तरह एक और घटना जिसमें उतई थाने में पदस्थ आरक्षक मुकेश देशमुख की डीजीपी, डी.एम. अवस्थी ने वीडियो कॉल कर सराहना की। विभाग के सबसे बड़े अधिकारी का कॉल आया तो पहले तो आरक्षक को लगा कि कोई गलती तो नहीं हो गई। डीजीपी के पूछने पर उसने बताया कि वह व्हाटसप एप्प चलाता है। डीजीपी ने गज़भिये और उसकी पत्नी से वीडियों कॉल कर जरूरतमंदो तक पहुँचा रहे खाना बनाने व बांटने का तरीका देखा। इसके बाद डीजीपी ने जवान और उसकी पत्नी का वीडियों कॉल पर हौसला बढाया। अवस्थी ने उत्साहवर्धन के लिए आरक्षक को ढाई हजार रुपये नगद पुरस्कार का आदेश भी दुर्ग एसएसपी को दिया उन्होंने कहा कि वाटसऐप के जरिए मुझे आरक्षक के सेवाभाव की जानकारी मिली। आरक्षक से कहा आपके द्वारा किये जा रहे कार्य पर मुझे गर्व है। छत्तीसगढ़ पुलिस के जवान इस समय दोहरी

भूमिका निभा रहे है एक तरफ वे लॉकडाउन का पालन कराने दिन-रात सडको पर तैनात है।[13] वही दूसरी तरफ आपकी तरह जरूरतमंदो की मदद भी कर रहे है। लॉकडाउन के दौरान छत्तीसगढ़ पुलिस जवानों का मानवीय चेहरा समाज को देखने को मिला। इस दौरान खुद की जिंदगी की परवाह किये बगैर लोगों की हरसंभव मदद करने मे पुलिस के जवान आगे रहे। प्रदेश के ऐसे ही 8 जवानों को केन्द्रीय गृह मंत्रालय ने अपनी स्पेशल रिपोर्ट में स्थान देकर उन्हें सम्मानित किया है इनमें हेमसागर सिदार (सीएसपी, जगदलपुर), कलीम खान (टीआई सिटी कोतवाली, बिलासपुर), अनिल शर्मा (टी आई, लोहारा, कबीरधाम), भरत बरेठ (टीआई आमानाका, रायपुर), गौरव तिवारी (निरीक्षक सायबर सेल दुर्ग), विशाल कुजूर (टीआई, जशपुर), रिंकू गुप्ता (आरक्षक रामानुजगंज बलरामपुर), अनुपमा कुजुर (महिला आरक्षक बलरामपुर), का नाम शामिल है।

केन्द्रीय गृह मंत्रालय ने कोरोना वायरस के कारण लगाये गये लॉकडाउन के दौरान पुलिस की प्रतिक्रिया को लेकर एक शोध की गई। जिसमें पता चला की लॉकडाउन के दौरान पुलिस का मानवीय चेहरा लोगों के बीच सामने आया। गृह मंत्रालय के थिंक-टैक 'ब्यूरो ऑफ पुलिस रिसर्च एण्ड डेवलपमेंट' (बीपीआरडी) के द्वारा 'द इंडियन पुलिस रिस्पांस टू कोविड 19 क्राईसिस' शीर्षक वाले एक विशेष संकलन को प्रकाशित किया है जिसमें कहा गया है कि राज्य और केन्द्र शासित प्रदेशों में पुलिस बलों और केन्द्रीय अर्धसैनिक बलों ने न केवल सख्त लॉकडाउन का पालन कराया बल्कि सावधानीपूर्वक कोविड-19 मरीजों को ट्रैक किया। इसके अलावा इन बलों ने प्रवासी मजदूरों को आवश्यक सेवाओं को पहुंचाने, जरूरतमंदो, गर्भवती महिलाओं, शहीद परिवारों, बेजुबानों की मदद का सराहनीय कार्य किया।[14]

सामुदायिक पुलिसिंग के अंतर्गत दुर्ग पुलिस के द्वारा किये गये कुछ महत्वपूर्ण कार्य

क्रमांक	दिनांक	विषय	संक्षिप्त विवरण
1.	13.03.2020 से लगातार	सोशल मीडिया में जागरूकता अभियान	छ.ग.राज्य में सबसे पहले दुर्ग पुलिस के द्वारा सोशल मीडिया प्लेटफार्म के माध्यम से 150 से अधिक पोस्ट कर लोगों को जागरूक किया गया।
2.	27.03.2020 से 01.05.2020	फेसबुक लाईव	फेसबुक लाईव के माध्यम से घर में बैठ कर किसी भी प्रकार से कोई परेशानी न हो एवं घर से न निकलना पड़े इसलिए दुर्ग पुलिस के द्वारा लॉकडाउन एवं कोरोना वायरस से संबंधित सुझाव, शिकायत, समस्या का निराकरण प्रतिदिन सायं 07 बजे से किया गया।
3.	दिनांक 02.04.2020 से 16.04.2020	स्टे होम, स्टे हेल्दी, स्टे फिट, फिटनेस प्रोग्राम	इस कार्यक्रम के माध्यम से मॉर्निंग वॉक पर शहर के नागरिकों को बाहर न निकलने एवं घर पर ही रहकर व्यायाम करने की अपील करते हुए दुर्ग भिलाई के 16 से अधिक अपार्टमेट में जाकर म्यूजिक के साथ जुम्बा एक्साईस (शारीरिक व्यायाम) कराकर लोगों को अपने-अपने घर के बालकनी तथा छतों पर व्यायाम करने का संदेश दिया गया।

क्रमांक	दिनांक	विषय	संक्षिप्त विवरण
4.	24.03.2020 से लगातार	घर बैठे फाईट करेगा इंडिया	लॉकडाउन के दौरान घर में रहकर घर वालों के साथ अनेक प्रकार के कार्य (जैसे पेंटिग, इंडोर गेम्स, कुकिंग, गाडर्निग, साफ-सफाई) आदि की फोटोज जिसमें घर में रहने का संदेश दिया गया हो सोशल मीडिया के माध्यम से दुर्ग पुलिस के साथ शेयर कर डिजिटल सम्मान प्राप्त करने की पहल शुरू की गई।
5.	दिनांक 07.04.2020	सीनियर सिटीजन हेल्प लाईन	कोरोना वायरस से लड़ने के लिये वरिष्ठ नागरिकों को लॉकडाउन के दौरान अपनी समस्याओं का निराकरण घर पर ही रहकर करने हेतु वरिष्ठ नागरिकों के लिए हेल्पलाईन नं. 0788-2283151, मो.न. 94791-92099 एवं वाटसअॅप नं. 94792-42152 जारी किया गया।
6.	21.04.2020 को सायं 05.30 बजे से 07.30 बजे तक।	साईकल रैली	जिला दुर्ग के दुर्ग, भिलाई नगर, पाटन, छावनी अनुविभाग अंतर्गत गली मोहल्लों में लॉक डाउन एवं सोशल डिस्टेनसिंग का पालन नहीं करने की शिकायत मिलने पर दुर्ग पुलिस के द्वारा साईकल रैली के माध्यम से प्रतिदिन 15 कि.मी. का सफर तय कर संबंधित क्षेत्रों में जाकर लोगों को जागरूक किया गया।

क्रमांक	दिनांक	विषय	संक्षिप्त विवरण
7.	07.05.2020 को सायं 05.30 बजे से 08.30 बजे तक।	'चलते-चलते आपके द्वार तक'	जिला दुर्ग में कलेकटर महोदय एवं वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक महोदय के नेतृत्व में प्रतिदिन 03 अपुअ, 09 डीएसपी, 10 निरीक्षक एवं 100 जवानों के साथ मिलकर दुर्ग शहर में पैदल मार्च कर कोरोना वायरस के प्रति लोगों को जागरूक करने एवं लॉकडाउन के नियमों का पालन करने हेतु प्रेरित किया गया।
8.	दिनांक 10.05.2020	काफी विथ मदर्स	जिला दुर्ग के प्रत्येक थाना क्षेत्र में स्वास्थ्यकर्मी, डॉक्टर, सुरक्षाकर्मी एवं सफाई कर्मियों के परिवार व उनकी माताओं को 'मदर्स डे' पर लगभग 125 परिवारों के साथ 'काफी विथ मदर्स'अभियान के तहत उनके साथ बैठकर काफी पीकर उनकें हाल-चाल जानकर, विचार, विमर्श, एवं परामर्श देकर किसी प्रकार की समस्या होने पर संपर्क करने हेतु अपना मोबाईल नंबर दिया गया। वरिष्ठ पुलिस अधिकरियों के द्वारा इसी प्रकार वृद्धाश्रम में बुजुर्ग माताओं के साथ काफी पीकर हालचाल जानकारी समस्या होने पर संपर्क करने हेतु अपना मोबाईल नंबर दिया गया।
9.	दिनांक 03.08.2020	रक्षाबंधन पर दुर्ग पुलिस पहल	रक्षाबंधन के अवसर पर दुर्ग पुलिस के द्वारा जिले के सभी कोरोना पॉजीटिव मरीजों को रक्षा का प्रतीक राखी, कोरोना से सुरक्षा का प्रतीक

क्रमांक	दिनांक	विषय	संक्षिप्त विवरण
	को सभी क्वारनटाई सेंटर पर		मास्क और मिठाई भेटकर मंगल स्वास्थ्य की कामना हेतु संदेश दिया गया। जिसकी शुरूआत शंकराचार्य मेडिकल कॉलेज में उपचारार्थ एवं डिसार्च मरीजों को कलेक्टर महोदय एवं पुलिस अधीक्षक महोदय के साथ जिले के समस्त अधिकारीगणों के द्वारा पैकेटस देकर की गई।
10.	11.09.20	टेली कॉलिग	पुलिस अधीक्षक महोदय, दुर्ग के मार्गदर्शन में कट्रोल रूम भिलाई के माध्यम से प्रतिदिन लगभग 150 मरीजो को टेलीकॉलिंग कर हाल चाल लिये जा रहे हैं एवं मरीजो को मास्क लगाने, गर्म पानी, काढा पीने, होम आईसोलेशन के नियमों का पालन करने की जानकारी दी जा रही है एवं वरिष्ठ अधिकारियों को रिपोर्ट भेजी गई।
11.	20.09.20	मास्क ही ब्रहमास्त्र है	पुलिस अधीक्षक दुर्ग के द्वारा बढते कोरोना वायरस की समस्या को देखते हुए 'मास्क ही ब्रहमास्त्र है' नामक अभियान की शुरूआत नगर पुलिस अधीधक दुर्ग कार्यालय से की गई। जिसमें बाईक रेली निकाल कर दुर्ग भिलाई, सुपेला एवं छावनी क्षेत्रों में भ्रमण कर समापन किया गया। रैली में 17 अधिकारियों सहित 100 से अधिक जवानों ने अपनी भूमिका निभाई। रैली में दुर्ग पुलिस के द्वारा तैयार किये गये

ISSN 2278-4632

क्रमांक	दिनांक	विषय	संक्षिप्त विवरण
			स्पेशल स्लोगन जैसे - 'मास्क नहीं तो टोकेगें, कोरोना को रोकेगे' 'एक ही टास्क, पहनो मास्क' 'महामारी ये विकराल है, मास्क रोको काल' के माध्यम से नागरिकों को मास्क के महत्व के बारे में बताकर जागरूक किया गया।
12.	28.09.20	संकल्प पत्र	सोशल मीडिया प्लेटफार्म के गूगल फार्म लिंक के माध्यम से नागरिकों तक डिजिटल रूप में पहुंचकर उनसे कोरोना के खिलाफ दुर्ग पुलिस की मुहिम से जुड़ने की अपील करना, कोरोना वायरस से बचने संबंधी बातों के पालन करने के लिये संकल्प पत्र भरकर दुर्ग पुलिस की इस मुहिम से जुड़ने की अपील की गई।
13.	19.10.20	मास्क नहीं तो पेट्रोल/डीजल नहीं	दुर्ग जिले के समस्त पेट्रोल पंप संचालकों की मीटिंग लेकर मास्क नहीं लगाने पर वाहन चालको को पेट्रोल/डीजल न देने हेतु निर्देशित किया गया तथा सभी पेट्रोल पंप में पोस्टर एवं फलेक्स के माध्यम से मास्क नहीं तो पेट्रोल डीजल नहीं, मास्क ही ब्रह्मास्त्र है अभियान के अंतर्गत सभी पेट्रोल पंप पर लोगों को जागरूक करने की शुरूआत की गई एवं बढ़ते संक्रमण के खतरे को समझाते हुए जागरूक रहने की अपील की गई।

क्रमांक	दिनांक	विषय	संक्षिप्त विवरण
14.	20.10.20	बिगेस्ट मास्क	दिनांक 20.10.2020 को विश्वव्यापी करोना संक्रमण के विरुद्ध मास्क ही ब्रमास्त्र है का संदेश देने हेतु दुर्ग पुलिस के द्वारा अब तक का सबसे बड़ा मास्क बनाकर कीर्तिमान रचा गया। जिसे सेक्टर 10 स्थित ग्लोब चौक पर लगे ग्लोब को करीबन 200 वर्गफीट का मास्क शहर के मंझे हुऐ कलाकारों द्वारा तैयार कराकर भिलाई इस्पात सयंत्र के सहयोग से दुर्ग पुलिस के वरिष्ठ अधिकारियों के द्वारा प्रतीकात्मक रूप से मास्क पहनाया गया जिससे नागरिकों को मास्क के प्रति जागरूक किया जा सकें।
15.	20.10.20	मास्क नहीं तो सवारी नहीं	(ऑटो रिक्शा) दुर्ग पुलिस के द्वारा मास्क ही ब्रमास्त्र है अभियान के अंतर्गत समस्त ऑटो रिक्शा में फ्लेक्स के माध्यम से लोगों को मास्क लगाने और ऑटो रिक्शा चालकों के द्वारा भी मास्क लगाने पर ही सवारी को ऑटो में बैठने की अनुमति देने पर जोर दिया जा रहा है। मास्क नहीं तो सवारी नहीं अभिलयान में फ्लेक्स के माध्यम से लोगों को जागरूक किया जा रहा है।

निष्कर्ष : कोविड 19 महामारी के खिलाफ हमारी लड़ाई के लिए पुलिस या स्वास्थ्य क्षेत्र में अग्रिम पंक्ति के कर्मचारी महान संसाधन हैं। इस समय की तत्काल आवश्यकता ,उनके मूल्य और मूल्य की प्राप्ति और उनकी सुरक्षा और प्रेरणा के लिए त्वरित प्रावधान करना है। महामारी प्रबंधन में पुलिस की दक्षता को अधिकतम करने के लिए और साथ ही साथ पुलिस बल को सुरक्षित और प्रेरित रखने के लिए, नीतियों में जोखिम कारकों को तैयार करने की आवश्यकता है।

साथ ही सामुदायिक पुलिसिंग को प्राथमिकता दी जानी चाहिए और पुलिस संगठनात्मक लोकचार में एकीकृत किया जाना चाहिए। प्रशिक्षण अकादमियों में सामुदायिक पुलिसिंग के प्रशिक्षण के लिए बहुत कम समय दिया जाता है लेकिन रोजमर्रा के जमीनी कामकाज के दौरान तथा सकंट के समय में इसकी ओर भी जरूरत होती है। सांप्रदायिक तनाव को कम करने के लिए भारतीय राज्यों में प्रभावी सामुदायिक पुलिसिंग के इस्तेमाल के बहुत से मामले हैं। लेकिन अक्सर ये स्थानीय स्तर पर तात्कालिक पहल होती है और इनसे जो महत्वपूर्ण सबक मिलता है उसे व्यापक संगठन स्तर पर अपनाया नहीं जाता है।

सामुदायिक पुलिसिंग के लिए समर्पित बजट के साथ अधिक व्यवहारिक क्षेत्र आधारित प्रशिक्षण, नियमित निगरानी और समर्थन बेहद जरूरी है। नागरिक एजेंसियों के पास विशेषज्ञता और नेटवर्क होते है विशेष रूप से दुर्गम समुदायों तक पहुंच के लिए।

अंत में, राज्य नियोजन प्रक्रिया में पुलिस एजेंसियों को एकीकृत करने की अत्यधिक आवश्यकता है। ऐसा करने से नीति निर्माताओं को पुलिसिंग और व्यापक विकास लक्ष्यों के बीच संबंधों की पहचान करने के साथ-साथ अन्तर एजेंसी समन्वय में सुधार करने की अनुमति मिलेगी। कोविड 19 से राज्य के विभिन्न हिस्सो के लिए सबक मिलने की संभावना है। लेकिन संस्थागत श्रृंखला वायरस के संचरण पर अंकुश लगाना, स्वास्थ्य प्रणालियों के रक्षा करना और आजीविका को सुरक्षित करना इसकी सबसे कमजोर कड़ी है। तंत्र में व्यापक क्षमता और लचिलेपन के साथ पुलिस और राज्य संगठनों को और राज्य एजेंसियो और नागरिको के साथ मिलकर काम करना सीखना होगा।

संदर्भ

1. नवभारत टाइम्स, 24 मार्च 2020
2. https://www.unicef.org/india/stories/re-imagining-role-police-covid-19-times अमर उजाला, 05 जुलाई 2021

4. अक्षय मंगला/विनित कपूर

rhttps://www.thehindubusinessline.com/opinion/columns/how-policing-works-in-india-in-covid-19-times/article31729922.ece

5. Diganlih Raj Shgal https://blog.ipleaders.in/police-discretion-role-covid-19-pandemic/, 02 November 2020

6. Johns Hopkins University, COVID – 19 Case Tracker, Corona virus Resource center 2020

7. अक्षय मंगला/विनित कपूर

https://www.thehindubusinessline.com/opinion/columns/how-policing-works-in-india-in-covid-19-times/article31729922.ece

8. https://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC7439012/

9. Diganlih Raj Shgal https://blog.ipleaders.in/police-discretion-role-covid-19-pandemic/, 02 November 2020

10. पत्रिका न्यूज, नेटवर्क 22 अप्रैल 2020

11. पत्रिका न्यूज, नेटवर्क 30 मार्च 2020

12. पत्रिका न्यूज, नेटवर्क 08 मई 2020

13. पत्रिका न्यूज, नेटवर्क 10 अप्रैल 2020

14. नवभारत, 27 सितंबर 2020

❑❑❑

नागौर के जिलिया गाँव के जैन मंदिर के भित्ति चित्र

• डॉ. पवन कुमार जाँगिड़

शोध सारांश

भारत के विभिन्न क्षेत्रों की तरह मारवाड़ के नागौर जिले के कुचामन एवं इसके आस-पास के गांवों में कई जैन मंदिरों का निर्माण हुआ था। ये जैन मंदिर स्थापत्य एवं कला की दृष्टि से अद्वितीय हैं। स्थापत्य कला के माध्यम से (पत्थरों में उकेरे गये तीर्थों के भाव, कांच की पच्चीकारी) धार्मिक भावना जागृत करने के लिए भित्ति चित्र एवं प्राचीन मूर्तियाँ अभूतपूर्व हैं। कुचामन व आस-पास के मंदिरों एवं गढ़ों में भित्ति चित्र देखने को मिलते हैं। मैंने इस क्षेत्र में सर्वेक्षण के दौरान देखा कि इन मंदिरों की भित्ति चित्रण परम्परा ठीक वैसी ही है जैसी मारवाड़ व शेखावाटी की हवेलियों, दुर्गों वैष्णव मंदिरों, छतरियों, एवं प्रासादों में हैं। अन्तर केवल यह है कि इन जैन मंदिरों के भित्ति चित्रों के विषय जैन धर्म से संबंधित हैं। जिलिया के जैन मन्दिर के चित्रों में मारवाड़ शैली वाले चित्रों का प्रभाव ज्यादा है। ये भित्ति चित्र बहुत सुन्दर व आकर्षक बने हैं, जो धार्मिक भावों के साथ ही यहां के इतिहास, संस्कृति व रीति रिवाजों की जानकारी प्रदान कराते हैं।

संकेताक्षर

मारवाड़, जैन, मंदिर, भित्ति चित्र, जागीरदार, महाजन, हवेलियां, गढ़, धार्मिक, लौकिक, कल्पसूत्र, कुचामन, पांचवा, जिलिया, मारोठ, कल्याणक, तीर्थंकर, ऋषि, लोक, महाकल्याण, पंचशील, अहिंसा, इत्यादि।

कला की दृष्टि से राजस्थान कला जगत में अपना स्थान रखता है। इस प्रदेश की भव्य कलात्मक हवेलियाँ, किले, मंदिर, महल, देवालय, छतरियाँ, गढ़, कुवें, इत्यादि स्थापत्य एवं भित्ति चित्रों को बयाँ करते हैं। इन भवनों पर बने

भित्ति चित्रों का सांस्कृतिक एवं कलात्मक वैभव अनुपम रहा है। राजस्थान के राज्याश्रय में फली फूली लघुचित्र शैलियों के साथ-साथ भित्ति चित्रण परम्परा का विकास और विस्तार होता रहा है। यहाँ के बड़े-बड़े राज दरबारों का अनुसरण करते हुवे छोटे-छोटे जागीरदारों, ठिकानेदारों, सामन्तों एवं महाजनों ने अपनी हवेलियों में भित्ति चित्रण की इस परम्परा को जीवित रखा। इस क्षेत्र में छोटे से छोटे गाँव के मंदिर व हवेलियाँ भी चित्रित मिलती हैं।

मारवाड़ का कलात्मक इतिहास

राजस्थान भारत के पश्चिम भाग में स्थित राज्य है, जिसका जैन धर्म के साथ ऐतिहासिक सम्बन्ध रहा है। दक्षिणी राजस्थान श्वेताम्बर जैन धर्म का केन्द्र बिन्दु रहा है। दिगम्बर शाखा के बड़े केन्द्र राजस्थान के उत्तरी व पूर्वी भागों में स्थित हैं। राजस्थानी चित्रकला के सन्दर्भ हमें प्राचीन काल से ही मिलते रहे हैं। जिनमें 7 वीं सदी से प्रचलित देव, यक्ष एवं नाग कला शैलियों के आधार पर तिब्बती बौद्ध कला इतिहासकार लामा तारानाथ ने पश्चिमी क्षेत्र में यक्ष शैली का बाहुल्य एवं इसका संस्थापक चित्रकार श्रृंगधर को माना है जो मरूदेश के राजा शील के आश्रय में था।[1] परन्तु मारवाड़ शैली का सूत्रपात 17वीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल में हुआ था। नाडोल में अवस्थित एक जैन मंदिर में लगभग 1605 ई. में निर्मित एक भित्ति चित्र उपलब्ध है। इससे पूर्व के अन्य भित्ति चित्र उपलब्ध नहीं हैं।[2] जैसलमेर भण्डार में सुरक्षित सचित्र ग्रन्थ 'दशवैकालिक सूत्रचूर्णी' एवं 'ओधनिर्युक्ति' (1060 ई.) में कामदेव, लक्ष्मी, हाथी तथा अन्य आलंकारिक आकृतियाँ बनी हैं। जिनका चित्रण चन्द्रगच्छ के जैन आचार्यों के निर्देशन में श्रेष्ठी नागपाल के पुत्र आनन्द ने पाहिल नामक चित्रकार से करवाया था।[3] यह ग्रंथ प्रतिहार कालीन कला का उल्लेखनीय उदाहरण है। इस युग में खतरगच्छ के मुनि जिनदत्त सूरी ने सचित्र ग्रन्थों के निर्माण को विशेष प्रोत्साहन दिया। अतः अनेक जैन सचित्र ग्रन्थों का निर्माण हुआ। मारवाड़ क्षेत्र के प्राकृत ग्रन्थों में उद्योतन सूरिकृत कुवलयमालाकहा (778 ई.), धर्मोपदेश मालावृति तथा सिद्धर्षिकृत उपमितिभव प्रपंच कथा आदि में चित्रकला की सामग्री के उल्लेख मिलते हैं, जिससे यह कहा जा सकता है कि उद्योतन सूरी ने तत्कालीन समाज में इन्हें चित्रित किया हुआ देखा होगा। यद्यपि राजमहलों में भी भित्ति चित्र बनाये जाने के उल्लेख मिलते हैं। नागौर में निर्मित वि.सं. 915 के प्राकृत ग्रन्थ 'धर्मोपदेश मालावृत्ति'[4] में चित्रसूत्र कथा और चित्रसभा की कहानियों से नागौर क्षेत्र की 'यक्षकला परम्परा' का पता चलता है। इन उल्लेखों से मरू देश

के चित्रकार श्रृंगधर की यक्ष कला परम्परा के प्राप्त आधारों की पुष्टि होती है।5 अभयदेव सूरि द्वारा 'प्रबन्धकोष' के अनुसार कुचेरा (नागौर) गाँव में उत्कृष्ट भित्ति चित्र बने हुये थे।[6] इससे स्पष्ट हो जाता है कि उस काल में भी भित्तियों पर उत्कृष्ट चित्र बनाने की परम्परा प्रचलित रही थी।

प्रतिहार काल में चित्रकला अपने उन्नत स्तर पर रही होगी। आठवीं शताब्दी में मंगलाना गाँव के निवासी जेद्दुक के पुत्र दद्दुक की पत्नी लक्ष्मी द्वारा कालिंजर में एक सुन्दर उमा महेश्वर पट्ट लगवाने की जानकारी मिलती है। जिससे नागौर क्षेत्र में उन्नत चित्रकला की स्थिति का अनुमान होता है। इसी प्रकार विक्रम संवत् 900 के दौलतपुरा गाँव के ताम्रपत्र में देवी भगवती का अंकन भी प्रतिहार काल में चित्रकला की विकसित परम्परा की ओर संकेत करता है। बारहवीं शताब्दी में चौहान साम्राज्य के अन्तर्गत नागौर क्षेत्र खतरगच्छ कला का उत्कृष्ट केन्द्र था।[7] प्राचीनकाल से ही नागौर क्षेत्र जैन धर्म का एक केन्द्र रहा। यहाँ अनेक कलात्मक मन्दिरों का निर्माण हुआ। तत्कालीन साहित्य ग्रन्थों एवं जैन ग्रन्थों में चित्रकला के प्रमाण एवं जैन मन्दिरों का उल्लेख मिलता है। जिनमें सम्भवत: यक्ष कला शैली के अन्तर्गत मंदिरों को सुन्दर भित्ति चित्रों से सजाया गया होगा।

नागौर जिले में चौहान शासन काल में कला, संगीत एवं चित्रकला का विकास हुआ। इस काल में नागौर क्षेत्र जैन धर्म का प्रमुख तीर्थस्थल एवं शिव, विष्णु, सूर्य और शक्ति की उपासना का क्षेत्र रहा। जैन धर्म की खतरगच्छ शाखा का इस काल में विशेष प्रभाव रहा था। इस शाखा के साधुओं द्वारा चित्रित करवाई गई सचित्र काष्ट पट्टिकायें उल्लेखनीय हैं।[8] चौहान नरेशों, सामन्तों ने अनेक कला स्मारकों एवं शिल्पों का निर्माण भी करवाया।

मध्यकाल में नागौर लगभग एक शताब्दीं तक खानजादा शासकों के अधीन रहा था। इन शासकों का हिन्दुओं के साथ सौहार्दपूर्ण बर्ताव था। कई जैन मन्दिर बने और सैकड़ों मूर्तियाँ भी स्थापित हुईं। इनके राज्य में श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही सम्प्रदाय के कई ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ भी तैयार की गईं। साहित्य, चित्रकला के क्षेत्र में सचित्र ग्रन्थों का निर्माण हुआ। 15वीं और 16वीं शताब्दी में श्वेताम्बरों में कल्पसूत्र लेखन और चित्रण कार्य विशेष रूप से हुआ। मध्यकालीन नागौर क्षेत्र में विभिन्न धर्मो, सम्प्रदायों एवं शाखाओं का उदय हुआ। नागौर में विभिन्न मत मतान्तरों, शासकों, श्रेष्ठियों, सन्तों की समन्वित संस्कृति के फलस्वरूप स्थानीय चित्रकला में नये-नये स्वरूपों का समावेश हुआ तथा नागौर की चित्रण परम्परा में विकास वाले आधारों का चित्रण होता रहा।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं नागौर क्षेत्रीय भित्ति चित्रण

मारवाड़ क्षेत्र में भित्ति-चित्रों की परम्परा प्रचलित रही है। शताब्दियों के राजनैतिक, सांस्कृतिक परिवर्तनों तथा बाहरी प्रभावों से सामंजस्य बैठाते हुए यहाँ के चित्रकारों ने अपनी चित्रण परम्पराओं का विषय, शैली तथा तकनीकी विधि विधान के अनुरूप अपने नये-नये अनुभवों से नया रूप दिया। मारवाड़ क्षेत्र से प्राप्त अपभ्रंश शैली के चित्रों के अवलोकन से पता चलता है कि इस क्षेत्र में ग्रन्थ चित्रण की परम्परा विद्यमान थी। इस प्रकार के चित्र प्रतिहार काल में निर्मित हुए थे। संभवतः ऐसी आकृतियों का निर्माण नागौर या आस-पास के क्षेत्रों में हुआ था। नागौर की चित्रण परम्परा में पठान शासन काल के विकास वाले आधारों का चित्रण दृष्टिगत होता है जिसका विस्तृत वैभव विशेषतः महाराज बख्तसिंह कालीन भित्ति चित्रों में देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त यहाँ की चित्रण परम्परा का विस्तार हमें लाडनूं, मेड़ता, डीडवाना, कुचामन व इनके आस-पास के गांवों में भी मिलता है।

मध्यकाल में पश्चिमी भारतीय चित्रकला के विकास के अनुरूप नागौर मारवाड़ का एक प्रमुख ठिकाना रहा है। जहाँ जैन धर्म के सन्तों, श्रेष्ठियों एवं सूफी सन्तों की समन्वित संस्कृति के फलस्वरूप यहाँ की कला का विस्तार हुआ। 15वीं सदी में नागौर में अनेक सचित्र ग्रन्थों का निर्माण हुआ। सम्स खाँ के शासन काल में सचित्र ग्रन्थ पांडव पुराण की रचना हुई थी। इसके अतिरिक्त यहाँ के सचित्र ग्रन्थों में कल्पसूत्र (1551 ई.) एवं कालकाचार्य कथा (1548 ई.) भी प्रमुख रहे हैं। 15वीं, 16वीं सदी में ही श्वेताम्बर सम्प्रदाय में कल्पसूत्र लेखन एवं चित्रण का कार्य विशेष रूप से हुआ। इसके साथ ही नागौर के स्थानीय खानजादा शासकों एवं जैन सूफी संस्कृति के फलस्वरूप चित्रकला में अनेक परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं।

मुगलों के शासन काल में नागौर क्षेत्र में जहांगीर कालीन चित्रकला का प्रभाव महाराजा बख्तसिंह कालीन राजप्रासादों के भित्ति चित्रों में देखने को मिलता है। नागौर शैली का सही और सर्वाधिक स्वरूप इन्ही भित्ति चित्रों में देखा जा सकता है। यहाँ के किले और शीशमहल के भित्ति चित्र 18वीं सदी के मध्य में बने हुए है।[9] बख्तसिंह के काल में उत्कृष्ट भित्ति चित्रों के मिलने से मारवाड़ के ज्ञात भित्ति चित्रों का क्रमबद्ध इतिहास शुरू होता है। नागौर के बादल महल में प्रारम्भिक भित्ति चित्र मिलते हैं।

राठौड़ों के शासन काल में नागौर क्षेत्रीय चित्रकला राठौड़ चित्र शैली कहलायी। ई. 1724 से 1740 के बीच महाराजा बख्तसिंह ने नागौर दुर्ग में

भित्ति चित्रांकन करवाया था। इस काल में जहाँ जैन चित्रकला ग्रंथों का चित्रण होता रहा वहीं भित्ति चित्रण का अधिकांश कार्य मुसलमानों के पास होने का उल्लेख मिलता है।10 1700 से 1750 ई. के मध्य न केवल नागौर में लघु चित्र बने बल्कि मारवाड़ के सभी ठिकानों में चित्रण कार्य हुआ। महाराजा बख्तसिंह की कलाभिरुचि के कारण यहाँ के चित्र मौलिक बन पडे. हैं जो तत्कालीन भित्ति चित्रों में देखे जा सकते हैं इसी प्रकार विजयसिंह के काल में नागौर के आस-पास के ठिकानों के चित्रों में भी यहाँ की चित्र शैली का विस्तार देखने को मिलता है। इस प्रकार नागौर में सचित्र ग्रन्थों, लघु चित्रों तथा भित्ति चित्रों की परम्परा का विस्तार होता रहा तथा कालान्तर में यह परम्परा सामन्तों, ठाकुरों, धनिकों के यहाँ भी देखने को मिली। नागौर क्षेत्र की कला के अनेक सन्दर्भ हमें जैन प्रबन्ध काव्य में मिलते हैं जिनमें कुचेरा नामक स्थान के प्राचीन उल्लेखों के अनुरूप तत्कालीन श्रेष्ठी द्वारा बनवाए अनेक भित्ति चित्रों का कलात्मक वर्णन मिलता है।[11]

नागौर की चित्रण परम्परा का विस्तार इस क्षेत्र के विभिन्न चित्रण केन्द्रों में होता रहा है। इन केन्द्रों में सचित्र ग्रन्थों, लघु एवं भित्ति चित्रों में नागौर की चित्रण परम्परा का निर्वाह देखने को मिलता है। मेड़ता, खींवसर, हससोलाव, लाडनूं, भाउण्डा, डीडवाना, कुचामन, परबतसर इत्यादि महत्वपूर्ण ठिकाने रहे हैं। नागौर क्षेत्र के सांस्कृतिक केन्द्रों में मेड़ता, लाडनूं, परबतसर, मारोठ, छोटी खाटू, डीडवाना विशेष महत्व रखते हैं। इन क्षेत्रों में तत्कालीन शिल्प के साथ ही भित्ति चित्रण एवं हस्तशिल्प ग्रन्थों के साथ ही लघु चित्रों का निर्माण भी होता रहा। मारवाड़ में भित्ति चित्रों की समृद्ध परम्परा का इतिहास हमें 1605 ई. में निर्मित नाडोल के शांतिनाथ जैन मन्दिर के भित्ति चित्रों से जोड़ सकते हैं।[12] अठारहवीं सदी के प्रारम्भ से उन्नीसवीं सदी के अन्त तक हमें लगातार मारवाड़ क्षेत्र से भित्ति चित्रों के सुन्दर उदाहरण प्राप्त हुए हैं। विषय-वस्तु के सन्दर्भ में ये चित्र विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 18वीं एवं 19वीं सदी में यहाँ के वैष्णव मन्दिर निर्मित हुए।[13] जोधपुर के ठिकानों नागौर, घाणेराव एवं कुचामन आदि स्थानों पर भी भित्ति चित्र के उल्लेखनीय उदाहरण मिलते हैं।[14] मारवाड़ में कला के राजकीय मान को देखकर सामन्तों ने भी कला को प्रोत्साहित किया तथा केवल जोधपुर में ही नहीं वरन् सारे मारवाड़ में 19वीं शताब्दी के आरम्भिक समय में चित्र बने तथा कुचामन, घाणेराव, नागौर, पाली, जालौर इत्यादि प्रमुख नगरों में चित्रशालायें बनी तथा सहस्त्रों की संख्या में चित्र बनने का उल्लेख मिलता है।[15]

उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन स्थानों पर भित्ति चित्रण की परम्परा रही है। नागौर के समीपवर्ती सभी ठिकानों में भी भित्ति चित्रों का निर्माण होता रहा जिनमें मेड़ता के पार्श्वनाथ मन्दिर (1745 ई. के लगभग), लाडनूं के सेठ गोविन्दराम एवं मालचंद की हवेली तथा कुचामन किले के भित्ति चित्र 19-20वीं सदी में जयपुरी चित्रकारों द्वारा बनाए चित्रों में नागौर की चित्रण परम्परा का विस्तार होता रहा।[16] नागौर जिले के डीडवाना शहर की भौगोलिक स्थिति देखे तो यह शेखावाटी का सिंह द्वार और मारवाड़ का तोरण द्वार है। राजस्थान के दो प्रमुख अंचलों का मिलन केन्द्र है।[17]

इस प्रकार नागौर क्षेत्र में भित्ति चित्रों की परम्परा रही है। 19-20वीं सदी में स्थानीय श्रेष्ठियों की कलाभिरुचि से मन्दिरों, हवेलियों में चित्रण कार्य हुआ है। इस परम्परा का विस्तार हमें नागौर के प्रमुख ठिकानों, गाँवों में देखने को मिलता है। राठौड़ शासकों एवं उनके वंशजों ने मारवाड़ क्षेत्र की चित्रण परम्पराओं को विकसित किया। जोधपुर में भी छोटे-छोटे नगरों में बने चित्रों की एक स्वतंत्र शैली रही है जोनागौर, कुचामन, जालौर, तथा जैसलमेर शैली कहलाती थी। यहाँ के ग्राम्य चित्र भी अपना एक स्थान रखते हैं जो अत्यधिक संख्या में चित्रित हुए हैं। यहाँ के प्रधाननगरों में चित्रकला के उत्तम उदाहरण मिलते हैं। कुचामन के आस-पास के क्षेत्र में मारवाड़ व शेखावाटी शैली का भित्ति चित्रण देखा जा सकता है। इस शोध पत्र में केवल उनमें से जिलिया गाँव के इतिहास व जैन मंदिर में बने भित्ति चित्रों को प्रकाशित करना है।

जैन मंदिरों के भित्ति चित्र

इस क्षेत्र के कुचामन, पांचवा, कुकनवाली, रैवासा, दाँता, मारोठ जिलिया के जैन मंदिरों का चित्रण इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। दाँता के मन्दिर में बना हुआ ऋषभदेव का चित्र यह प्रदर्शित करता है कि शेखावाटी के भित्ति चित्रों पर जैन प्रभाव भी था। दाँता की देदाका हवेली पर भगवान पार्श्वनाथ का चित्र भी इस तथ्य की पुष्टि करता है। कुछ जैन मंदिरों की भित्तियों पर आध्यात्मिक प्रेरणा देने वाले प्रसंगों को बहुत ही खूबसूरत ढंग से चित्रित किया है। जिनमें मुख्य रूप से संसार वृक्ष (वटवृक्ष) का चित्रण भी है। नागौर के कुचेरा के जैन मंदिर में 18वीं सदी पूर्वाद्ध के भित्ति चित्र एवं मेड़ता के पार्श्वनाथ मन्दिर के भित्ति चित्र नागौर के बादल महल वाले चित्रों की परम्परा में है। इनमें जैन धर्म से सम्बन्धित विषय-वस्तु का संयोजन हुआ है। इसी प्रकार कुचामन, पांचवा, जिलिया इत्यादि के मन्दिरों में भी जैन विषय का चित्रण मिलता है।

भारत के प्राचीनतम नगरों में से एक रहा, जो सम्प्रति मारवाड़ के नागौर जिले में एक कस्बा है जहाँ जैन धर्म का काफी विकास हुआ। राजपुताना के 17वीं शताब्दी के चित्रण में मारोठ के मान मंदिर को भी गिना जाता है। मारोठ परगना दीर्घ काल तक गौड़ क्षत्रियों के आधिपात्य में रहने के कारण गौड़ावटी भू-भाग के नाम से आज भी प्रसिद्ध है। मुगलकाल में यह परगना अनेक व्यक्तियों को मिलता रहा फिर गौड़ों के आधिपात्य में और उसके बाद गौड़ाटी के महाराज रघुनाथ सिंह जी ने गौड़ों के ठिकानों पर आक्रमण कर संवत 1717 (1659 ई.) में उनकी पैत्रिक जागीरें छीन लीं। मारोठ, पांचोता, पांचवा, लूणवा, मिठडी, भारिजा, गोरया, डुंगरया, दलेलपुरा, घाटवा, खौरंडी, हुडिल, चितावा आदि को मेड़तिया, राजावतों और शेखावतों ने बांट लिया। बादशाह औरंगजेब ने महाराजा की पदवी व गौड़ावाटी का परगना ठाकुर रघुनाथ सिंह मेड़तिया को दिया। रघुनाथ सिंह जी ने संवत 1717 से 1740 तक मारोठ के महाराजा रहे। उनकी पांच महारानियाँ तथा आठ पुत्र थे जिनके लिए पांच भव्य महलों का निर्माण करवाया गया। आठ पुत्रों को अलग-अलग गांवों की जागीरें प्रदान की गई जिनमें से एक पुत्र विजय सिंह को जिलिया का व आनन्द सिंह को पांचवा का ठाकुर बनाया गया। मींडा, जिलिया, लूणवां, पांचोता और पांचवा, मारोठ के प्रमुख राजघरानें हैं व पांचमहल कहलाते हैं। मारोठ व जिलिया का राजनैतिक सम्बन्ध जोधपुर के महाराजा अजीत सिंह, अभयसिंह, बिजयसिंह व टोंक के नवाब अमीर खाँ से भी रहा है।

1. जिलिया गढ़ की मुख्यपोल

जिलिया (ठिकाना) :— जिलिया (ठिकाना) राजस्थान के नागौर जिले में स्थित एक छोटा सा गांव है। जिलिया मारोठ के पांच महलों की प्रमुख रियासत थी जिसका राजघराना मीरा बाई तथा मेड़ता के राव जयमल के वंशज हैं। मेड़तिया राठौड़ों का मारोठ पर राज्य स्थापित करने वाले वीर शिरोमणी

2. छतरी

रघुनाथ सिंह मेड़तिया के पुत्र महाराजा विजयसिंह ने मारोठ राज्य का अर्ध विभाजन कर जिलिया की स्थापना की। (चित्र सं. 1. जिलिया गढ़ की मुख्यपोल) (चित्र सं. 2 छतरी) (चित्र सं. 3. जैन मंदिर का नक्शा चित्र)

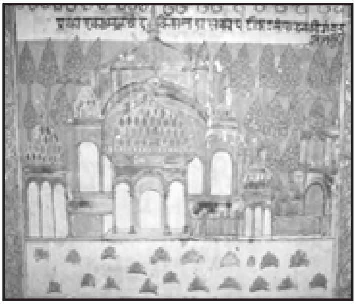

3. जैन मंदिर का नक्शा चित्र

जिलिया गाँव में दो जैन मंदिर एवं एक गढ़ स्थित है। यहाँ के गढ़ में केवल कुछ बेल बूटें अंकित है। यहाँ श्री दिगम्बर जैन मन्दिर में अनेक भित्ति चित्र बने हैं। नागौर के कुचामन क्षेत्र में अनेक जैन मन्दिर बने तथा उनमें जैन चित्रों का आलेखन होने का उल्लेख मिलता है।[18] मंदिर में मुख्य प्रतिमा के नीचे संवत् 1488 अंकित हैं। जिलिया का किला लगभग 500 वर्ष पुराना है। राजा रघुनाथसिंह के शासन काल में युद्ध व सुरक्षा के लिए बनाया गया था।[19] मंदिर में जैन धर्म से सम्बन्धित प्रतिमाएँ विद्यमान हैं। यहाँ की प्रतिमाएँ सफेद संगमरमर की बनी हैं तथा कुछ प्रतिमाएँ काले पत्थर की भी है। मंदिर में मुख्य प्रतिमा के नीचे सम्वत् तथा लेख भी अंकित है जो अस्पष्ट हैं। प्रतिमा के पीछे सुन्दर प्रभा मण्डल तथा हरे रंग के काँच की जड़ाई (पच्चीकारी) का कार्य जो अत्यन्त आकर्षक है।

जिलिया के जैन मन्दिर के भित्ति चित्रों की विषय-वस्तु :

सर्वेक्षण के दोरान चित्रों के प्रत्यक्ष दर्शन तथा उनकी शैली से यह आभास होता है कि यहाँ के बरामदे वाले चित्र पुराने हैं जबकि मंदिर के मुख्य भाग वाले चित्रों को दुबारा बनवाया गया है, जो उसके बाद के हैं। वर्तमान मंदिर व मूल मंदिर के नक्शा चित्र (चित्र सं. 3) को देखते हुए लगता है कि इसमें कई परिवर्तन हुये हैं। मंदिर की छत पर अनेक जैन तीर्थकरों की शृंखलाबद्ध आकृतियाँ अंकित हैं। (चित्र सं. 13) यहाँ के प्रमुख चित्रों में भगवान के सोलह स्वप्न, (चित्र सं. 4) श्री गर्भकल्याण, जैन मुनि को जल एवं आहार प्रदान करते हुए, तपस्यारत्त मुनि, श्री मोक्ष कल्याण, श्री ज्ञान कल्याण, संसार दर्शन, जल मन्दिर श्री पावापुरी जी, तपकल्याण इत्यादि के साथ ही मुनि श्री शान्तिसागर जी, श्री चन्द्रसागर जी, श्री बाहुबली स्वामी का अंकन भी मिलता है। गर्भ अवतरण के समय तीर्थंकर महावीर की माता त्रिशला ने 16 शुभ स्वप्न देखे थे। (चित्र सं. 4) मंदिर की दीवारों पर विविध अलंकरण बने हैं (चित्र सं.

10) तथा चार प्रकार के ऋषि, तीन प्रकार के लोक, पंच महाकल्याण, श्री भक्तामर भाषा आदि का उल्लेख भी मिलता है।

4. भगवान के सोलह स्वप्न

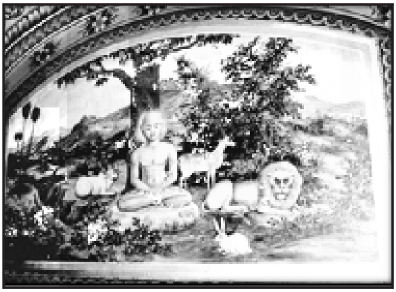

5. तपस्यारत्त मुनि

6. श्री ज्ञान कल्याण

7. श्री गर्भकल्याण

जिलिया गाँव के श्री दिगम्बर जैन मन्दिर में बने भित्ति चित्र

मंदिर के बरामदे की सम्पूर्ण छत पर जैन धर्म से सम्बन्धित अनेक चित्र बने हैं। यहाँ एक मंदिर का नक्शा चित्रित है जिसके चारों ओर विशेष प्रकार के पेड़ दर्शाये हैं। इस चित्र पर ''प्रकाशक: मूलचन्द किसनदास: संपादक दिगंबर जैन सुरत'' अंकित है। (चित्र सं. 3) छत के अलंकरणों के बीच में अनेक षोड़षभावना, परियों का चित्रण भी है। यहां पर चार प्रकार के ऋर्षी (राजर्षि, बृह्मर्षि, देवर्षि, परमर्षि) तीन प्रकार के लोक (उर्ध्व लोक, मध्य लोक, पाताल लोक) समसरण की 11 भूमियां, पंच महाकल्याण (गर्भ कल्याण, जन्म कल्याण, तप कल्याण, ज्ञान कल्याण, मोक्ष कल्याण, आठ महा प्रातिहार्य निर्णय, चार अनन्त अतुष्ठय का उल्लेख मिलता है। पंच कल्याण, जैन धर्म के अनुसार सभी तीर्थकरों के जीवन में घटित होते है। यह पाँच कल्याणक है :-

- गर्भ कल्याणक :- जब तीर्थंकर प्रभु की आत्मा माता के गर्भ में आती है। (चित्र सं. 7)
- जन्म कल्याणक :- जब तीर्थंकर बालक का जन्म होता है।
- दीक्षा कल्याणक :- जब तीर्थंकर सब कुछ त्यागकर वन में जाकर मुनि दीक्षा ग्रहण करते है।
- केवल ज्ञान कल्याणक :- जब तीर्थंकर को केवल ज्ञान की प्राप्ति होती है। (चित्र सं. 6)
- मोक्ष कल्याणक :- जब भगवान शरीर को त्यागकर अर्थात सभी कर्म नष्ट करके निर्वाण/ मोक्ष को प्राप्त करते है।

चित्र सं. 8 (गाँव का दृश्य चित्र, जिलिया का जैन मंदिर)

मंदिर में एक पैनल में 17 दृश्य अंकित हैं जिनमें कल्पवृक्ष, सूर्य अस्त, चन्द्र छेद (चन्द्रछेक) नागवारता फण, देव विमान पर जाता, कूरड़ी पर कमल, भूत-भूतणी नाचता, आता चिमत्कार (चमत्कार), राजा चन्द्र गुप्ति (चन्द्रगुप्त), सोने के थाल में कूकर जीमता, हाथी पर बन्दर, रथ के बाछिड़ा, ऊँट पर

चित्र सं. 9, (पैनल चित्र के 17 दृश्य)

राजकंवर, धूल-धूसर रत्न संसार, बिना महावत हाथी लडे. इत्यादि के चित्र तथा शीर्षक अंकित हैं। (चित्र सं. 9)

(चित्र सं. 10. अलंकरण)

एक चित्र में मुनि से मिलने जाते राजा रानी तथा सैनिकगणों को दर्शाया है। चित्र सं. 12, एक अन्य चित्र में महावीर स्वामी को सिंहासन पर विराजमान दर्शाया है तथा दोनों तरफ जन समूह को दर्शनार्थ आते हुए अंकित किया है।

(चित्र सं. 11 ज्ञान कल्याण)

इस प्रकार हम इन चित्रों के माध्यम से देखते हैं कि इतने वर्षो के बाद भी भगवान महावीर का नाम स्मरण उसी श्रद्धा और भक्ति से लिया जाता है, इसका मूल कारण है कि महावीर ने इस जगत को न केवल मुक्ति का संदेश दिया अपितु मुक्ति की सरल और सच्ची राह भी बताई। भगवान महावीर ने

(चित्र सं. 12 मुनि के दर्शन हेतु जाता हुआ राज परिवार)

आत्मिक और शाश्वत सुख की प्राप्ति हेतु 'अहिंसा धर्म' का उपदेश दिया। उन्होंने दुनिया को सत्य, अहिंसा का पाठ पढाया। तीर्थंकर स्वामी ने अहिंसा को सबसे उच्चतम नैतिक गुण बताया। उन्होंने दुनिया को जैन धर्म के पंचशील सिद्धान्त बताए जो हैं (अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, अचौर्य (अस्तेय) और ब्रह्मचर्य)। इन्होंने अनेकतांवाद, स्यादवाद और अपरिग्रह जैसे अदभुत सिद्धान्त दिए। महावीर के सर्वोदयी तीर्थों में क्षेत्र, काल, समय या जाति की सिमाएँ नहीं थीं। भगवान महावीर का आत्म धर्म जगत की प्रत्येक आत्मा के लिए समान था। दुनिया की सभी आत्मा एक-सी है इसलिए हम दूसरों के प्रति वही विचार एवं व्यवहार रखें जो हमें स्वयं को पसंद हो। यही महावीर का 'जीयो और जीने दो' का सिद्धान्त है।

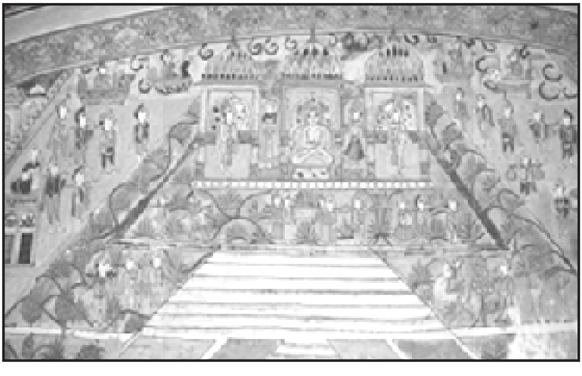

(चित्र सं. 13. जैन मुनियों के श्रृंखलाबद्ध चित्र)

 ISSN 2278-4632 जुलाई-दिसम्बर 2021

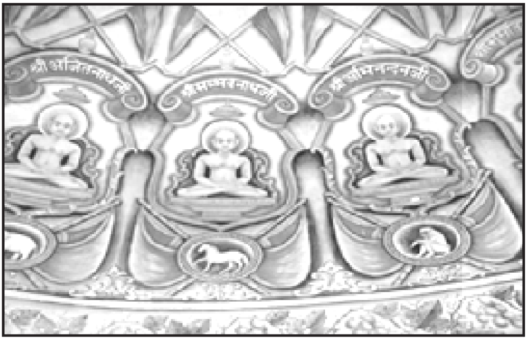

(चित्र सं. 14. पैनल चित्र)

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. मोतीचन्द्र–मिनियेचर पेन्टिंग्स फ्रॉम वेस्टर्न इण्डिया, अहमदाबाद, 1949, पृ. 39
2. प्रेमचंद गोस्वामी–राजस्थान की लघुचित्र शैलियां, जयपुर, 1972, पृ. 47
3. धर्मवीर वशिष्ठ मारवाड़ की चित्रांकन परम्परा एवं चित्रकार, जयपुर, 2011, पृ. 3
4. के. सी. जैन, एनसिएन्ट सिटीज एण्ड टाउन्स ऑफ राजस्थान, दिल्ली, 1960, पृ. 242
5. मोतीचन्द्र–पूर्वोक्त, पृ. 18
6. धर्मवीर वशिष्ठ पूर्वोक्त पृ. 6
7. संतोष कुमार मत्तडनागौर का ऐतिहासिक व सांस्कृतिक अध्ययन, जयपुर, 2002, पृ. 317
8. रामवल्लभ सोमानी, 'अर्ली राजस्थानी पेन्टिंग', कल्चरल कन्टूर ऑफ इण्डिया, (प्रकाशित एक लेख) दिल्ली, 1982, पृ. 136
9. आकृति (मारवाड़ कला विशेषांक), विद्यासागर उपाध्याय, (प्रधान सम्पादक) जयपुर अक्टूबर-दिसम्बर, 1997, पृ. 31
10. संतोष कुमार मत्तड-पूर्वोक्त, पृ. 318
11. रामवल्लभ सोमानी-पृथ्वीराज चौहान एण्ड हिज टाईम्स, जयपुर, 1981, पृ. 149

12. प्रेमचन्द गोस्वामी–पूर्वोक्त पृ. 47

13. आर. ए. अग्रवाल–मारवाड़ म्यूरल्स, दिल्ली, 1977, पृ. 32

14. मधु प्रसाद अग्रवाल–मारवाड़ की चित्रकला, दिल्ली, 1993, पृ. 200

15. प्रेमचन्द गोस्वामी–पूर्वोक्त, पृ. 48

16. आर. ए. अग्रवाल–पूर्वोक्त, पृ. 31-32

17. गोपीकृष्ण राठी–मरूधरा का वैभव डीडवाना, डीडवाना, 1991, पृ. 49

18. प्रेमचन्द गोस्वामी–पूर्वोक्त, पृ. 40

19. सर्वेक्षण–जिलेवार सांस्कृतिक सर्वेक्षण नागौर, जवाहर कला केन्द्र, (डॉ. पवन कुमार जाँगिड़)

डॉ. पवन कुमार जाँगिड़
सहायक आचार्य-चित्रकला
श्री रतनलाल कंवरलाल पाटनी राजकीय स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, किशनगढ (राज.) जयपुर, 1996, पृ. 63

❑❑❑

छत्तीसगढ़ी कृषि-आधारित संस्कृति सन्दर्भ नरवा-गरूवा-घुरूवा-बाड़ी

डॉ. हितेश कुमार • शंकर लाल कुँजाम

सारांश

किसी भाषा और समाज का संबंध अन्योन्याश्रित है। समाज में ही संस्कृति की कल्पना की जा सकती है। भाषा जहाँ-जहाँ जाती है, अपनी संस्कृति को लेकर जाती है। भाषा संस्कृति की वाहिका होती है। किसी राज्य की संस्कृति को जानने और समझने के लिए उस राज्य की भाषा को समझना जरूरी है ठीक उसी प्रकार किसी राज्य की भाषा को समझने के लिए उस राज्य की संस्कृति, सभ्यता, एवं परिवेश को समझना जरूरी है।

संसार की सबसे बड़ी समस्याएँ, यथा–बेरोजगारी, भुखमरी, आर्थिक मंदी, जल-संकट, पर्यावरण-प्रदूषण आज विकराल रूप धारण कर संपूर्ण मानव-समाज को तहस-नहस करने के लिए प्रयासरत हैं। जिसका संपूर्ण समाधान छत्तीसगढ़ी संस्कृति 'नरवा-गरूवा-घुरूवा-बाड़ी' में समाहित है। नरवा-गरूवा-घुरूवा-बाड़ी कहते ही छत्तीसगढ़ के पूरे ग्रामीण परिदृश्य, छत्तीसगढ़ी संस्कृति एवं जीवनशैली की झलक परिलक्षित होने लगती है।

मुख्य शब्द : छत्तीसगढ़ी, संस्कृति, नरवा-गरूवा-घुरूवा-बाड़ी

प्रस्तावना :

छत्तीसगढ़ एक कृषि प्रधान राज्य है, यहाँ की अधिकांश जनता कृषि पर निर्भर है। इतिहास के पृष्ठों में छत्तीसगढ़ का वैभव, ऐश्वर्य एवं सांस्कृतिक उत्थान का विशद् वर्णन मिलता है। इस अंचल में विभिन्न भाषाओं, संस्कृतियों, एवं धर्मों के लोग निवास करते आ रहे हैं। छत्तीसगढ़ न केवल गहनगर्भी सामासिक संस्कृति का प्रदेश है, प्रत्युत छत्तीसगढ़ भारत में प्रचलित अन्यान्य भाषा-गोष्ठियों

एवं संस्कृतियों की अद्‌भुत संगम-स्थली भी है। यह राज्य जल, जंगल एवं प्राकृतिक संसाधनों से भरपूर रहा है। राज्य में विभिन्न किस्म की धान, फसलें, फल, साग-सब्जी का उत्पादन होता है। छत्तीसगढ़ के विकास एवं कृषि क्षेत्र में उत्पादकता में वृद्धि के साथ ही कृषक वर्ग के उत्थान के लिए छत्तीसगढ़ शासन ने वर्ष 2019-20 के बजट में 'सुराजी गाँव योजना' का समुचित प्रावधान कर 'छत्तीसगढ़ के चार चिन्हारी : 'नरवा-गरूवा-घुरूवा-बाड़ी' की परिकल्पना की। इस महत्वाकांक्षी योजना के माध्यम से नदी, नालों (नरवा) के पुनरूद्‌धार तथा जल-संरक्षण, पशु-संरक्षण (गरूवा), संवर्धन एवं नस्ल सुधार, घुरूवा में कृषि एवं पशुओं के अपशिष्ट पदार्थ जैविक खाद का उत्पादन, बाड़ी में सब्जी, फल-फूल का उत्पादन कर अपने पोषण एवं आर्थिक स्थिति को भी मजबूत करता है। छत्तीसगढ़ में रहने वाले लोग नरवा-गरूवा-घुरूवा-बाड़ी के महत्वपूर्ण आयामों के इतने नजदीक होते हैं कि सुबह से लेकर रात्रि तक ये उनके जीवन में सहायक होते हैं और वे इन्हें जीते है।

सुप्रसिद्ध मानवविज्ञानी डॉ. डी.एन. मजुमदार ने संस्कृति को परिभाषित करते हुए कहा है—'संस्कृति के अंतर्गत मनुष्यों की रीति-नीति, लोक विश्वास, आदर्श, कलाएं तथा मानव द्‌वारा उपलब्ध समस्त कौशल एवं योग्यताओं को लिया जा सकता है।'[1]

छत्तीसगढ़ सरकार ने ग्राम-सुराज की दिशा में एक अभूतपूर्व पहल करते हुए 'नरवा-गरूवा-घुरूवा-बाड़ी' योजना को प्राथमिकता से लागू करके यह स्पष्ट किया कि गाँधीवाद ग्रामीण-जीवन और उसके प्रमुख बिंदु जल-प्रबंधन, पर्यावरण, प्रकृति से निकटता, ग्राम-स्वालंबन, कृषि, पशुपालन, सामूहिकता, और स्वरोजगार उसकी प्राथमिकता में है। इस योजना में इन चारों महत्वपूर्ण आयाम की भूमिका सांस्कृतिक केंद्र में है। नरवा-गरूवा-घुरूवा-बाड़ी इन चारों में अंतःसंबंध है। सभी एक-दूसरे के पूरक है। पारंपरिक व जैविक खाद आधारित कृषि को पुनः बढ़ावा देने के उद्देश्य से इन चारों को चिन्हारी के रूप संरक्षित और संवर्धित करने का बीड़ा छत्तीसगढ़ सरकार ने उठाया है।

छत्तीसगढ़ी संस्कृति की पहचान को साहित्यकार लखनलाल गुप्त ने इन पंक्तियों में पिरोया है—

घर सका लीपे पोते, जेला देख हवेली रोथे।
सुग्घर चिकनाए भुंइयाँ, चाहे भात परूस ला गुंइया।।

 ISSN 2278-4632 जुलाई-दिसम्बर 2021

अंगना मा तुलसी बिरूआ, कोठा म बइला-गरूवा।
लकठा मं कोला-बाड़ी, जहाँ बोथन साग-तरकारी।।[2]

छत्तीसगढ़ की यह परंपरा हमें अपनी प्राचीन समृद्धि से अवगत कराती है।

संस्कृति :

केसिंग के अनुसार—'संस्कृति का संबंध मानव के समस्त विचारों और कार्यों से है, जिन्हें वह परंपरा-विशेष में सीखता है, आगे बढ़ाता है और सम्मान करता है।'[3]

राबर्ट लैडो के अनुसार—'संस्कृति मानव-व्यवहार का तंतु है, जो मनुष्य के आचार-विचार को निश्चित दिशा देती है।'[4]

नरवा—यह एक छत्तीसगढ़ी शब्द है। इस शब्द का प्रभाव बोली पर पड़ता ही है। नरवा, गाँवों में बहती प्राकृतिक संरचना (नाला) है, जो पानी के बहाव क्षेत्र में स्वयं निर्मित हो जाती है तथा आस-पास के जन-जीवन को प्रभावित करती है, यह जीवनधारा होती है। नरवा का पानी जीवनयापन के लिए एवं कृषि-कार्य के लिए गाँवों में अपना एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। पहले गाँवों में बोरवेल का अभाव था ऐसे में कृषि-कार्य पूर्णतः नरवा के पानी पर निर्भर था। वर्तमान में भी छत्तीसगढ़ के बहुत से गाँवों में नरवा ही खेतों में सिंचाई हेतु सहायक है। यह ग्राम्य-जीवन के लिए आवश्यक मूलभूत तत्व है। इसका पानी पीने के उपयोग के साथ-साथ, जीवन-निर्वाह, निस्तारी हेतु तथा गरूवा (जानवरों) के लिए भी पीने एवं धोने के लिए उपयोगी होता है। पशु-पक्षी, जीव-जंतु का जीवन भी इसी पर निर्भर एवं सुरक्षित रहता है। ग्राम्य-जीवन के लिए खेती से लेकर पशु-पक्षियों, जंगली पशुओं, कीट-पतंगों का भी आश्रय-स्थल एवं मानव-जीवन के लिए सहायक होता है। इन सबके लिए 'नरवा' का विशेष महत्व होता है। यह ग्राम्य-जीवन का एक अभिन्न हिस्सा होता है।

बरसात का पानी नरवा के द्वारा बह जाता है जिसे स्टॉप डेम (छोटे-छोटे बाँध) बनाकर संरक्षित कर इसका उपयोग साल भर खेती-बाड़ी एवं अन्य उपयोग हेतु किया जा सकता है। बरसात का पानी संरक्षित करने से भूजल का स्तर भी बना रहेगा।

छत्तीसगढ़ी लोकगीत 'ददरिया' में नरवा का उल्लेख जनमानस में इस रूप में व्याप्त है—

केऊ के माल गुंधा के टखा,
नरबदा झन जाबे, नहा ले नरवा।

नायक कहता है—गंगा, यमुना, नर्मदा जैसी बड़ी-बड़ी पवित्र नदियाँ हैं, परंतु मेरे गाँव में छोटा सा नरवा (नाला) ही मेरे लिए गंगा या नर्मदा की तरह है। मुझे जो सहज प्राप्त है, वही मेरा तीर्थ है। संतवाणी भी है कि जो प्राप्त है, वही पर्याप्त है।

मुनगा के फूल के गुंथा ले टखा,
तरिया मा झन जाबे नहा ले नरवा।

मुनगा के फूलों से कभी हार नहीं बन सकता। इसके अत्यंत कोमल फूलों से हार बनाने की विचित्रता का ही द्योतक है। इसी तरह विशिष्ट किस्म की तालाब में नहाने न जाकर नरवा अर्थात् नाले या बरसाती पानी से भरे हुए छोटे नाले मे नहा लो। गाँव या ग्राम्य-जीवन के लिए नदी-नाले मे नहा लेना भी तीर्थ-स्नान के समान माना जाता है।

गरूवा—'गरूवा' शब्द का प्रयोग छत्तीसगढ़ी में गाय-बैल, भैंस, आदि पालतू पशुओं के लिए किया जाता है। गाय का भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में महत्वपूर्ण स्थान है। गाय की महत्ता को सदियों पूर्व जानने के कारण भारतवर्ष में कन्यादान के साथ-साथ महादान गरूवा (गौ) दान की परंपरा है। हिंदू धर्म के सोलह-संस्कारों में विवाह को महत्वपूर्ण संस्कार माना जाता है। विवाह के दौरान छत्तीसगढ़ में 'टिकावन' टिकने की परंपरा है, जिसमें बेटी को 'अचहर-पचहर (पाँच बर्तन) एवं धेनु (गाय) टिकने (दान) की परंपरा विद्यमान है जिसका उल्लेख करते हुए सुमधुर स्वर में छत्तीसगढ़ी महिलाएँ इस बेला में सवाल-जवाब के रूप में प्रस्तुति के साथ लयबद्ध गीत गाती हैं—

कोने तोर टिकय नोनी, अचहर-पचहर वो.....।
कोने तोला टिकय धेनु गाय।।
दाई तोर टिकय नोनी, अचहर-पचहर वो......।
ददा तोर टिकय धेनु गाय।।

भारतीय-परंपरा में गाय को माता का दर्जा दिया गया है। किसी घर में गरूवा का होना या पशु का पालन करना शुभ माना जाता है। गाय-बैल को हम पशुधन के रूप में जानते, मानते, एवं पालते हैं। पहले किसी व्यक्ति का अमीरी एवं गरीबी का अंदाजा उनके पशुधन से करते थे। गाय से प्राप्त दुग्ध रोजगार का साधन है। वहीं बैल कृषक के लिए उनके जीवकोपार्जन में महत्वपूर्ण सहायक के रूप में स्थापित है। गाय, बैल के गोबर से जैविक खाद बनता है जो कृषि-उत्पादन को बढ़ाता है तथा मिट्टी को उपजाऊ बनाए रखने में सहायक होता है। वर्तमान में छत्तीसगढ़ में गोबर द्वारा रंग-बिरंगी दीयों का निर्माण किया जा रहा है जो कि छत्तीसगढ़ सहित देश के अन्य राज्यों में चर्चा का विषय बना हुआ है। साथ ही गाय के मूत्र औषधि के लिए उपयोगी सिद्ध होता है। गाय का गोबर पवित्र माना जाता है, जहाँ पूजा-अर्चना की जाती है वहाँ गोबर से लेपन किया जाता है। ग्रामीण अंचल में आज भी घर को शुद्ध करने के रूप में सुबह अपने घर के द्वार पर गोबर-पानी का 'छींटा' लगाया जाता है। चिकित्सा के क्षेत्र में गोबर का महत्वपूर्ण स्थान है। गाँवों में किसी को गर्मी के दिनों में नाक से खून निकलने पर उन्हें गोबर सुँघाया जाता है जिससे तुरंत राहत मिलती है एवं हाथ-पैर में खुजली होने पर गोबर का लेप चढ़ाने से तत्काल राहत मिलती है। गोबर को सदियों से औषधि के रूप में उपयोग में लाया जा रहा है। छत्तीसगढ़ के ग्रामीण अंचल में गोबर से बना छेना (कंडा) का प्रयोग ईंधन के रूप में किया जाता रहा है। कंडा से प्राप्त 'राख' भी बहुत महत्वपूर्ण होता है इसे भी औषधीय उपयोग में लाया जाता है। छत्तीसगढ़ी के ग्रामीण अंचल में यह बर्तन साफ करने के लिए प्रमुखता से उपयोग में लाया जाता रहा है। छत्तीसगढ़ में राउत (यादव) समाज को भगवान श्रीकृष्ण का वंशज माना जाता है जिसका मुख्य कार्य एवं व्यवसाय गाय चराना होता है जो उनके जीवकोपार्जन का मुख्य साधन है। राउत समाज के लोग 'मँड़ई-मेला' एवं 'दीपावली त्यौहार' में गाय की महिमा का बखान करते हुए दोहा गाते (पारते) हुए नृत्य करते हैं जिसे छत्तीसगढ़ में 'राउत-नाचा' के नाम से जाना जाता है।

दोहा

गऊ माता के महिमा भइया, नइ कर सकँव बखान रे।
नाच-कूद के जेला चराइस, सिरी किसन भगवान रे।।
गाय चरावै गहिरा भइया, भइँस चरावै ठेठवार रे।
चारों कोती बहुत बोहावै, दूध दही के धार रे।।

दीपावली में गाय-बैलों की पूजा-अर्चना की जाती है, उन्हें सजाया जाता है, नया चावल/अनाज की खिचड़ी बनाकर खिलाया जाता है। इसका एक अभिप्राय यह भी होता है कि चूँकि कृषि में ये किसान के सहायक होते है अतः अनाज पर उनका भी अधिकार बनता है। अतः यह एक धन्यवाद-भाव एवं कृतज्ञता के प्रतीक के रूप में देखा जा सकता है। सुहाई, गैंठा, धान की बाली, प्राकृतिक घास-फूस का माला (सिलियारी) फूलदार आवरण सींगों पर बाँधा जाता है। गाय-बैल के शरीर पर कई जगह रंगों से भिन्न-भिन्न निशान भी अंकित किया जाता है। कहीं-कहीं इनकी दौड़ प्रतियोगिता का आयोजन होता है। यह हमारे संस्कृति में शिवजी की सवारी नंदी के रूप में माना जाता है। पशुधन की रक्षा के लिए साँहड़ा देव की पूजा की जाती है। इस तरह धार्मिक महत्व भी पूरा होता है। छत्तीसगढ़ी लोकगीत 'ददरिया' में बइला (गरूवा) का उल्लेख छत्तीसगढ़ी जनमानस के स्मृति पटल पर दृष्टव्य है—

करिया बइला के माथ टिकला,
कइसे आहौ बइहा माड़ी ले चिखला।

नायिका का कथन है—जिस प्रकार काले रंग के बैल के माथे पर सफेद रंग स्पष्ट दिखाई देता है, उसी प्रकार मर्यादा का उल्लंघन करके अगर मैं तुम्हारे पास आती हूँ तो कीचड़ (बदनामी) से सराबोर हो जाऊँगी और सबके समक्ष पहचान ली जाऊँगी, इसलिए इस अमर्यादा के कीचड़ रूपी अवरोध को लाँघ कर मैं तुम्हारे पास नहीं आ सकती।

छत्तीसगढ़ी संस्कृति में गरूवा से संबंधित अनेक लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं—

1. गाय चरावै राउत, दूध खाय बिलैया।
   (राउत गाय चराता है, दूध बिल्ली पी जाती है अर्थात् मेहनत कोई और करे तथा फल कोई और खा जाए।)

2. चलनी मा गाय दूहै, करम ला दोस दे।
   (चलनी में दूध निकालता है और दोष भाग्य को देता है अर्थात् बिना सोचे-समझे कोई कार्य करता है और विपरीत फल मिलने पर भाग्य को दोष देता है।)

3. दुधारु गरूवा के लातो मीठ।

(दुध देने वाली गाय की लात भी मीठी होती है अर्थात् काम करने वाले व्यक्ति की कुछ बातें भी सहनी पड़ती है। ऐसा व्यक्ति जो अपनी कमाई से अपने परिवार के सदस्यों का भरण-पोषण करता है यदि कोई कड़वी बात कह देता है तो परिवार के सदस्य उसकी कड़वी बात की ओर ध्यान नहीं देते क्योंकि वह दुधारू गाय के समान होता है।)

4. पून के गरूवा के दांत नइ देखे।

(दान की गाय के दाँत नहीं देखते अर्थात् दान की वस्तु के गुण-दोष नहीं देखे जाते।)

5. मंगनी के बइला घरजियाँ दमाद, मरे के बाचे जोते के काम।

(माँगकर लाए हुए बैल और ससुराल में रहने वाले दमाद से मरते दम तक काम लिया जाता है।)

गीत

गोबर दे बछरू गोबर दे,
चारों खूंट ल लीपन दे,
चारों देरानी ल बईठन दे,
अपन खाथे गूदा-गूदा,
हमला देथे बीजा,
ये बीजा ल का करबो,
रहि जबो तीजा,
तीजा के बिहान दिन,
सरी-सरी लुगरा,
चींव-चींव करे मंजूर के पीला,
हेर दे भऊजी कपाट के खीला,
एक गोड़ म लाल भाजी,
एक गोड़ म कपूर,
कतेक ल मानँव देवर ससुर।।

भावार्थ—गाय का बच्चा गोबर दो; चारों तरफ की लिपाई करने दो; चारों देवरानियों को बैठने दो। वे फलों के गूदे को खा जाते हैं उनके खाने के पश्चात् जो गुठली बच जाता है हमे उसे खाने के लिए दिया जाता है। उससे

अच्छा है कि उपवास ही रह लेते। जैसे तीज उपवास के बाद दूसरे दिन नई-नई साड़ी उपहार में मिलती है शायद दूसरे दिन अच्छा खाना या वस्तु मिल जाए। जिस तरह मयूर के बच्चे को पिंजरे में कैद कर दिया जाता है तो वह निकलने के लिए छटपटाता है, उसी प्रकार हमारा हाल है। ऐसा लगता है जैसे पिंजरे में बंद हैं और पिंजरे से बाहर निकलने के लिए स्वतंत्र-स्वच्छंद जीवन जीने के लिए छटपटा रहे हैं। परिवार में रहने से बहुत सारे रिश्ते-नाते निभाने पड़ते हैं। देवर-ससुर आदि रिश्तों के साथ रहने से अनुशासन-नियम का पालन करना पड़ता है।

घुरूवा—'नरवा-गरूवा-घुरूवा-बाड़ी' की चर्चा में घुरूवा इस कड़ी में तीसरा आयाम है। ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों एवं ग्रामीण जनता के जीवन में घुरूवा एक अभिन्न अंग है। राज्य के सभी गाँवों में सामान्यत: घुरूवा होती है। घुरूवा एक प्रकार का गड्ढ़ा होता है। जो कृषक घरों में गरूवा (गाय-बैल) पालन करता है, इस से जो गोबर एवं मूत्र उत्सर्जन होता है, उसे किसान इसी घुरूवा में एकत्रित करते हैं। जिससे प्रतिवर्ष बड़ी मात्रा में जैविक-खाद प्राप्त होता है। इस जैविक-खाद का उपयोग कृषि कार्य एवं सब्जी-उत्पादन में किया जाता है। जितनी अधिक मात्रा में गोबर खाद प्राप्त होगा खेतों की उर्वरा क्षमता में वृद्धि होगी। ग्रामीण अंचल में घुरूवा महत्वपूर्ण आयाम है। राज्य में समस्त कृषकों एवं ग्रामीणों को पशुपालन के प्रति जागरूक करते हुए 'घुरूवा-संस्कृति' को संरक्षित करने की ओर प्रयास करना होगा। घुरूवा को निकृष्ट वस्तु या पदार्थ न मानकर उत्कृष्ट माना गया है तभी तो छत्तीसगढ़ी लोकोक्ति प्रचलित है कि 'घुरूवा के दिन घलो बहुरथे।'

बाड़ी—ग्रामीण संस्कृति में घर की संरचना की कल्पना बिना बाड़ी (बाड़ी/बगीचा) के नहीं की जा सकती है। बाड़ी घर की शोभा हुआ करती है। जिन जगहों पर सब्जी, फल-फूल, आदि उगाने का कार्य किया जाता है, उसे छत्तीसगढ़ी में 'बाड़ी' कहा जाता है। आमतौर पर 'बाड़ी' की कल्पना छत्तीसगढ़ी संस्कृति में घर के आसपास की जगह से है, जहाँ परिवार अपने गुजर-बसर के लिए सब्जी, फल-फूल, पेड़-पौधे, आदि लगाते है। आस-पास कुँआ बनाते हैं। दैनिक जीवन में 'बाड़ी' का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। दिन-प्रतिदिन की आवश्यकताओं की चीजें किसान यहाँ उपार्जित करते हैं। यही उनके स्वस्थ एवं सुदीर्घ होने का राज हुआ करता है। छत्तीसगढ़ में 'बाड़ी' लगाने का पीढ़ी-दर-पीढ़ी यह कार्य 'मरार' जाति के लोगों के द्वारा किया जाता है। वर्तमान समय में सभी समाज के लोग बाड़ी

में सब्जी लगना, बागवानी करना, आदि पसंद करते हैं। जिसका आर्थिक लाभ निहित है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण वैश्विक महामारी के रूप में कोरोना काल में अनुभव करने वाली बात यह रही कि शहरी लोगों की अपेक्षा ग्रामीणजनों का बाड़ी का महत्व स्पष्ट रूप से परिलक्षित हुआ। जिस समय लोगों को अपने-अपने घरों में एक तरह से बंद रहना पड़ा, तब भी किसान और ग्रामीणजन अपनी खेती और बाड़ी का काम करते रहे।

छत्तीसगढ़ी लोकगीत 'ददरिया' में 'बाड़ी' का उल्लेख इस प्रकार है—

केरा के बगिया मा फरे ला केरा,
चले आबे मोर जोड़ी पिथमपुर मेला।
बागे बगइचा दिखेला हरियर,
चोंगीवाला नइ दीखे बदे हौं नरियर।।

नायिका ने अपने प्रिय को 'चोंगीवाला' कहा है। मध्यकाल में तंबाकू सेवन का रिवाज रहा है। गाँवों में तंबाकू और चिलम या चोंगी पीना अधिक प्रचलित रहा है। इस तरह चोंगीवाला शब्द उसी युग के संदर्भ का द्योतक है।

बागे बगइचा दिखेला हरियर,
मोटरवाला नइ दीखे बदे हौं नरियर।।

ददरिया में एक प्रभाव पुनः हुआ जो मोटरवाला से अधिक सामान्य होकर भी प्रभावी रहा। यह गाँधीवादी युग था। उस समय नेता जनता का महान सेवक, देश का उद्धारकर्ता और जनता के लिए त्यागी और कर्म का देवता हुआ करता था, इसलिए नायिका ने धनवाले का संबोधन छोड़कर त्यागमूर्ति नेता को उचित समझा और अपने नायक को 'टोपीवाला' से संबोधित किया।

बागे बगइचा दिखेला हरियर,
टोपीवाला नइ दीखे बदे हौं नरियर।।
ढेखरा चढ़े करेला खीरा,
गोड़ कांटा निकाल दे होवथे पीरा।।

एक रोज नायिका के पैरो में काँटा गड़ जाता है। नायक वहाँ खड़ा है। चतुर नायिका कहती है कि काँटा निकाल दे, बहुत पीड़ा हो रही है।

छत्तीसगढ़ी में प्रचलित अन्य लोकोक्ति—

टेटका के चिन्हारी बाड़ी ले।

(गिरगिट की पहचान बाड़ी तक अर्थात् जिस प्रकार सताए जाने पर गिरगिट भागकर बाड़ी में अपनी प्राणरक्षा करता है, उसी प्रकार आवश्यकता पड़ने पर सामान्य व्यक्ति किसी विशिष्ट व्यक्ति की शरण में पहुँच जाता है। उसे बार-बार एक ही व्यक्ति की शरण में जाते देखकर यह लोकोक्ति कही जाती है।)

रचनाकार—स्व. लक्ष्मण मस्तुरिया

गीत

बखरी के तुमा नार, बरोबर मन झुमरे।
बहरी के पाके चार ले जा लानी देबे।

ते का नाम लेबे संगी मोर...ऽ...ऽ....
बखरी के तुमा नार, बरोबर मन झुमरे।
ते का नाम लेबे संगी मोरे।
बहरी के पाके चार ले जा लानी देबे।

निष्कर्ष :

छत्तीसगढ़ी जनमानस की बहुचर्चित छत्तीसगढ़ी गीत जिसमें छत्तीसगढ़ के जनमानस की लोकप्रिय गीत के रूप में उभरा कोई भी गीत, गीतकार तभी लिखता है जब उसके वातावरण में या उनके जीवन में उन शब्दों के बोल सक्रिय रूप में विद्यमान होता है, जिसे वह जीता है जो लोगों के जीवन में परिलक्षित होता है।

संस्कृति, संस्कार से रूपाकार पाती है। मनुष्य को अपना जीवन निरंतर परिष्कृत और परिमार्जित करना पड़ता है। संस्कृति सभ्यता का आंतरिक रूप है। संस्कृति सीखा हुआ व्यवहार है जिसे मनुष्य अपने परिवेश से प्राप्त करता है, जिसमें उसका पालन-पोषण होता है, इससे उसके आचार-विचार, रहन-सहन और व्यवहार निर्धारित होते हैं और उसके व्यक्तित्व के विकास में सहायक सिद्ध होते हैं। सभ्यता फूल और संस्कृति सुगंध है। संस्कृति एक प्रकार से जीवन जीने की शैली है। वह व्यक्ति को उसके परिवार, समाज, और देश से विरासत में मिलती है। छत्तीसगढ़ी संस्कृति बहुरंगी, बहुरूपी और बहुपक्षीय है।

छत्तीसगढ़ी संस्कृति के महत्वपूर्ण आयाम : नरवा-गरूवा-घुरूवा-बाड़ी का प्रभाव लोगों के जीवन में है, जिन्हें लोग कभी हाना, ददरिया के

माध्यम से, तो कभी लोकोक्ति के माध्यम से, तो कभी गीतों के माध्यम से जीते हैं। 'नरवा-गरूवा-घुरूवा-बाड़ी : छत्तीसगढ़ के चार चिन्हारी' की उक्ति एवं अभिव्यक्ति को चरितार्थ करता हुआ जनजीवन को अपने में समेटा हुआ है।

संदर्भ सूची :

1. डॉ. मजुमदार तथा टी.एन. मदान : एन इंट्रोडक्शन टु सोशल एंथोपोलाजी (प्रथम संस्करण), 1960 पृ. 14.
2. लखन लाल गुप्त, संपादक—द्विवेदी कौस्तुभ मणि : चन्दा अमरित बरसाइस (उपन्यास), (2019) पृ. 365.
3. Telly M. Kessing (1958) : Culture Anthropology, पृ. 21.
4. गुप्त, मनोरमा : भाषा-शिक्षण सिद्धांत और प्रविधि, आगरा, केंद्रीय हिंदी संस्थान, (1991) पृ. 315.

डॉ. हितेश कुमार
साहित्य एवं भाषा-अध्ययनशाला,
पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय,
रायपुर (छत्तीसगढ़)-492010

शंकर लाल कुँजाम
निज सहायक
कुलपति सचिवालय,
पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय,
रायपुर (छत्तीसगढ़)-492010

❑❑❑

बीकानेर का सिस्टाईन चैपल–मदन मोहन मन्दिर

• डॉ. राकेश कुमार किराड़ू

बीकानेर राज्य स्थापना काल वि.सं. 1545 (ई. 1488, 12 अप्रैल)[1] से ही कला व कलाकारों का प्रश्रयदाता रहा है। शासकों के साथ-साथ स्थानीय सेठ साहूकारों की भूमिका के कारण ही कला की धारा निरन्तर प्रवाहमान रही है। कलाओं में चित्रकला का अनूठा स्थान रहा है। जिसमें विशेषतः माहेश्वरी जाति की अभिरुचि की जिनका सीधा-सीधा सम्बन्ध वैष्णव भक्ति से रहा है और इसी कारण बीकानेर के जूनागढ़ दुर्ग, हवेलियों, मंदिरों और छतरियों की भित्तियों पर अधिकांश रूप में कृष्ण विषयक लीलाओं का चित्रण देखने का मिलना है। इस प्रकार के मंदिरों में अनेकानेक मंदिरों का निर्माण बीकानेर में हुआ जिसमें कृष्ण भक्ति की अविरल धारा मूर्त रूप में अभिव्यक्त हुई। इस श्रेणी में निर्मित मंदिरों में लक्ष्मीनाथ मंदिर, मरुनायक मंदिर, मदन मोहन मंदिर, दाऊजी मंदिर, रासरतन बिहारी मंदिर इत्यादि प्रमुख हैं।

इन कृष्ण मंदिरों के गर्भ ग्रहों में कृष्ण के अनेकों विग्रह रूप हैं जैसे- द्विभुज, चतुर्भुज, युगलस्वरूप (लक्ष्मीनाथ स्वरूप) इत्यादि इन कलात्मक विग्रह रूपों को देखकर बीकानेर की मूर्तिकला का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। जब हमारी नजर इन मूर्ति शिल्पों के अलावा मंदिर के अन्य भाग में जाती है तो गर्भगृह की आंतरिक दीवारों से लेकर अर्द्ध मण्डप एवं मुख्य मण्डप इत्यादि सम्पूर्ण स्थानों पर कृष्णभक्ति में सराबोर चित्र संसार दृष्टिगोचर होता है। जिनको प्रत्यक्ष देखकर बरबस ही हमारा मन कृष्णभक्ति की रचनाओं श्रीमद्भागवत, देवी भागवत, गीतगोविन्द, रसिकप्रिया इत्यादि में सद्यस्नात होने को आतुर हो जाता है और रसानुभूति स्वरूप बृज की कुंज गलियों में खो जाता है। जब इन अति मोहक चित्रों से हमारी तंद्रा टूटती है तब ही हम अन्तःमन से पुनः बर्हिजगत में आ पाते हैं।

 ISSN 2278-4632 जुलाई-दिसम्बर 2021

इस प्रकार इन मंदिरों में चित्रित कला कृष्ण भक्ति की पराकाष्टा को तो प्रदर्शित करती ही है साथ ही इनको चित्रित करवाने वाले राजा महाराजाओं, सेठ साहूकारों और चित्रकारों की दृष्टि को दर्शाती है। इन चित्रों को आकार देने हेतु प्रेरित करने वालों के आदमकद चित्र उक्त कृष्ण लीलाओं के साथ-साथ यत्र-तत्र दृष्टव्य हैं। इसी परम्परा में सृजित बीकानेर शहर के हृदय स्थल मोहता चौक में निर्मित है मदन मोहन मंदिर। जो इस चौक के दक्षिण दिशा में मरूनायक (मूलनायक) मंदिर की पश्चिमी छोर पर बना हुआ है। इस मंदिर की स्थापना विक्रम संवत् 1710 वैशाख शुक्ला 3 बुधवार (20 अप्रैल 1653 ई) को माहेश्वरी जाति के मोहता श्री कल्याणजी के पुत्र श्री जैसवन्तजी व रामचंद्रजी द्वारा की गई।[2]

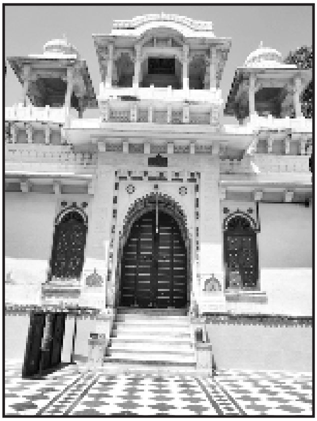

यहाँ पर व्यास पुष्करणा (रत्ताणी) के द्वारा नित्य ब्रह्म मूहर्त में श्रीमद्भागवत का वाचन होता रहा है जो सम्प्रदायगत अनुष्ठानिक पद्धती का अनुपम उदाहरण है। इस मंदिर में धार्मिक परम्पराओं को और बल प्रदान करने के लिए व दर्शनार्थी भक्तों को भगवत भक्ति में उन्मुख करने के लिए सनातन परम्पराओं से संबंधित सुन्दर चित्रों का सृजन करवाया गया। ये चित्र मंदिर के गर्भग्रह के अन्दर, बाहरी दीवारों और मुख्य दरवाजों के मण्डप की छतों पर अंकित किए गए हैं। गर्भ ग्रह के मुख्य दरवाजे की बाहरी दीवारों पर बने चित्र बीकानेर लघु चित्रकला रूप में ब्लाकिंग (खंडाकार संयोजन) करके बनाए गए हैं जिनमें भगवान विष्णु के विभिन्न रूपों (अवतारों) जैसे–मत्स्य अवतार, वराह अवतार, नृसिंह अवतार, कच्छप अवतार, कल्कि अवतार, हयग्रीव अवतार के साथ-साथ बद्रीनाथ, रामावतार, कृष्णअवतार, वेद व्यास इत्यादि का चित्रण किया गया है। जिसमें कुल 24 ब्लॉक बनाए गए हैं। इसके दोनों तरफ खंड संयोजन में नीचे की तरफ दोनों ओर कामधेनु गाय का चित्रण किया गया है

जिसमें बछड़ा उसका दूध पीते हुए अंकित है और पृष्ठ भूमि में हरित व नील वर्ण की प्रधानता है। इस संयोजन के अंदर की तरफ ब्लॉक बनाकर फूल-पत्तियों का सुन्दर निरूपण किया गया हैं। फूल-पत्तियों के साथ-साथ तोता-मैना का भी अंकन भी हैं। यह चित्र तकनीकी कुशलता व अद्‌भुत रंग संयोजन के कारण अत्यन्त ही मन मोहक लगते है।

गर्भग्रह के मुख्य दरवाजों के किनारों पर बने इन चित्रों के किनारों की दीवारों पर आदमकद द्वारपाल बनाये गए हैं जो पूर्णतः बीकानेर चित्र शैली की बानगी प्रस्तुत कर रहे हैं। ये द्वारपाल अपने हाथों में चँवर लिए हुए सेवक भाव में चित्रित हैं। इन द्वारपालों में एक तरफ पुरुष द्वारपाल तो दूसरी तरफ नारी आकृति का अंकन है।

पुरुष द्वारपाल के दाँए हाथ में चँवर है और बाएँ हाथ में कमलनाल युक्त कमल पुष्प है। इसके सिर पर मुकुट, गले, हाथ व पैरों में आभूषण व मालाएँ

अंकित है। इसका ऊपरी भाग अनावृत्त है और कमर पर कमरबंध (पटका), उत्तरीय और पीताम्बर पहने चित्रित है चेहरे पर रोबदार मूछें, उन्नत नेत्र, सवाचश्मीय चेहरा बीकानेर चित्र शैली का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत कर रहा है। दूसरी तरफ नारी आकृति द्वारपालिका का चित्रण है जो परम्परागत भारतीय मूर्तिकला में मौर्ययुगीन चँवरग्राहिणी की याद दिला रहा है। उक्त दोनों चँवरग्राहणी नारी आकृतियों में भले ही शैलीगत विभिन्नता है लेकिन विषयगत

साम्यता तो है ही जो भारतीय कला व भारतीयता का अंग है। इस चँवरग्रहिणी नारी आकृति को पूर्ण रूपेण राजस्थानी परिवेश में घाघरा ओढ़नी पहने दर्शाया गया है जो आभूषणों से सुसज्जित है। इसके दाएँ हाथ में मोरपंख युक्त अलंकृत चँवर है तो बाएँ हाथ में पुष्पों से सुसज्जित पात्र हैं। दोनों ही द्वारापाल आकृतियों के सिर के पृष्ठ भाग में आभामण्डल अंकित किया गया है और ऊपर की तरफ अलंकृत मेहराब अंकित है। इस अर्द्धमण्डप की छत पर भी नीले रंग से उमड़ते घुमड़ते बादल बनाए गए हैं, जो बीकानेर चित्र शैली और इस मरूस्थलीय क्षेत्र के चित्रांकन की विशिष्ट परम्परा रही है। इन चित्रांकन को चारों तरफ फूल-पत्तियों के बारीक अलंकरण से सुसज्जित किया गया है। अर्द्धमण्डप की बाहरी दीवारों पर एक तरफ हनुमान और दूसरी तरफ पक्षीराज गरूड़ का आदमकद चित्रण है। इनकी शारीरिक बनावट लगभग एक समान ही दर्शायी गई है और वस्त्रालंकरण एक समान ही है। पक्षीराज गरुड़ की मुखाकृति का हरा रंग और अलंकारिक पंख अत्यधिक सुन्दर व आकर्षक लग रहे हैं। गर्भग्रह के मुख्य द्वार के ऊपर श्री कृष्ण व राधा का आदमकद चित्र बना हुआ है।

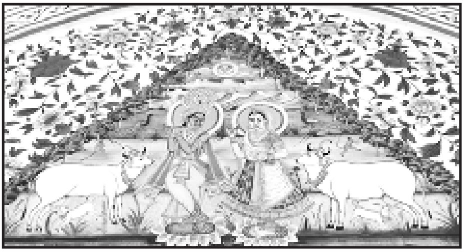

नीलवर्णीय कृष्ण की त्रिभंगी मुद्रा व कमलासन पर खड़ी राधा की आकृति पूर्णरूपेण राजस्थानी परिवेश में चित्रित है। उनके दोनों किनारों पर गायों व बछड़े का अंकन है। चित्र में नीचे की तरफ यमुना नदी का अंकन है, जिसमें कमल पुष्प व जलचरों का अत्यन्त मनमोहक चित्रण है। चित्र के ऊपर दोनों किनारों पर त्रिभुजी आकृति में वृक्षों का निरूपण किया गया है जो अपने आप में अनूठा है और बीकानेर के भित्ति चित्रकला में अन्यत्र देखने में नहीं आता है।

पृष्ठभूमि में हरी-भरी भूमि व पहाड़ों का अंकन है। ऊपर की तरफ सूर्य का भी अलौकिक निरूपण चित्रकारों ने किया है। सम्पूर्ण चित्र के किनारों पर बेहद खूबसूरत फूल-पत्तियों

का निरूपण है। चित्र के दोनों किनारों पर क्रमशः बीकानेर के राव-महाराजा के विशालकाय व्यक्ति चित्र बने हैं। जिनमें एक तरफ बीकानेर के संस्थापक राव बीका तो दूसरे छोर पर बीकानेर के महाराजा करण सिंह (जय जंगलधर बादशाह) का है। दोनों ही चित्रों में महाराजाओं का पूर्ण राजसिक परिवेश में अंकित किया गया है। दोनों ही रूपाकारों को वस्त्र विधान में घेरदार लम्बा सफेद चोगा, पेचदार पगड़ी, कमर पर कमर बंद, चूड़ीदार पायजामा व पैरों में जूतियाँ पहने दर्शाया गया है। उनके कम पर बंधी ढाल व हाथों में लम्बी तलवार उनके वीर यौद्धा गुण को परिलछित कर रही है। चेहरे पर

रोबदार मूँछे, बड़ी जूल्फे, उन्नत ललाट, गले व हाथों में पहने आभूषण चित्र में शृंगारिक भाव का चित्रण कर रहे हैं। गर्भग्रह की इसी मुख्य दीवार पर फूल-पत्तियों के अलंकरण के साथ-साथ मोर, तोता, फलों व फूलों का सुंदर व अलंकारिक संयोजन चित्रकारों ने किया है। इसी दीवार के बाएँ तरफ की दीवार पर भी महाराजाधिराज श्री गजसिंहजी का विशाल व्यक्ति चित्र बना हुआ है। जिसमें उनको वज्रासन की मुद्रा में बैठे हुए दर्शाया गया है। उन्नत ललाट जिस पर वैष्णवी तिलक, रोबदार मूछें, लम्बी जुल्फें और सिर पर पेंचदार पगड़ी चित्र की राजसिक उपमा और बढ़ा रही है। लम्बा सफेद घेरदार जामा पूर्वोक्त राव बीका और करण सिंह जी के चित्र की ही भांति है। कमरपीठिका के तौर पर

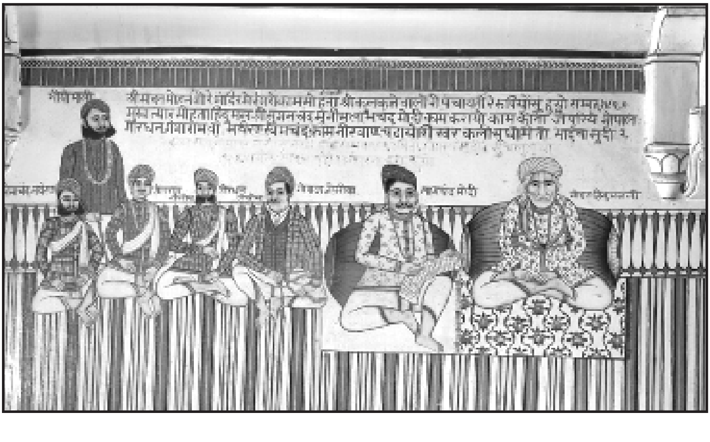

बड़ा गोल मसनद बनाया गया है। पृष्ठभूमि में बीकानेर की स्थापत्य कला का सुन्दर उदाहरण है। उसके पीछे उमड़ते-घुमड़ते बादल व उसमें चमकती बिजली भी बड़ी आकर्षक लग रही हैं। इसी चित्र के नीचे की तरफ बीकानेरी चित्रकला व चित्रकारों का साक्ष्य स्वरूप सुन्दर चित्रण है। इस चित्र में ऊपर की तरफ लिखा गया है कि **श्री मदनमोहन जी रे मंदिर में रंग रो काम मोहता श्री कलकत्ते वालों री पंचायती रे रूपियों सु हुई थी। संवत्... मुख्यतायार मोहता, हिन्दुमल जी, सुगनचंद मुनीम, लाभचंद मोदी काम करायौ, काम कीनो जैपुरिये गोपाल, गोरधन, गंगाराम मथेरण खेमचंद काम नीरवाण चढ़ायौ शिखर कली सूधो मिती भादवा, सुदी दूज।**

अर्थात् श्री मदनमोहन जी के मंदिर में रंग/रोगन का कार्य मोहता श्री कलकते वालों की पंचायती (ट्रस्ट) की तरफ से मुख्यतयार मोहता, हिन्दुमल जी सुगनचंद मुनीम, लाभचंद मोदी ने करवाया और उसको पूर्ण करने में चित्रकार गोपाल जैपुरिया, गोरधन, गंगाराम व मथेरण खेमचंद का योगदान रहा। मिती भादवा सुदी दूज।

यह साक्ष्य अपने आप में पूर्ण है जिससे इस मंदिर की भित्ति चित्रकला हेतु नियुक्त कलाकारों की साक्ष्य स्वरूप उपस्थिति दर्ज करवाता है। चित्र में कुल सात पुरुषाकृतियों को दर्शाया गया है जिसमें मोहता हिन्दूमल, लाभचंद मोदी, गोपाल जैपुरिया, गोरधन जैपुरिया, गंगाराम जैपुरिया, खेमचंद मथेरण को अग्र पंक्ति में बैठे हुए चित्रित किया गया है। पृष्ठ पंक्ति में भीयो माली नाम के व्यक्ति को खड़े हुए अंकित किया गया है जो संभवतः इन सेठ साहूकारों के चित्रकारों के खान-पान इत्यादि आवश्यक वस्तुओं का ध्यान रखता था। इस चित्र में सृजित समस्त रूपाकार अत्यन्त ही मनमोहक बनाये गये हैं और उनको महत्व के अनुसार छोटा व बड़ा भी बनाया गया है। समस्त रूपाकारों के वस्त्राभूषण भी बड़े

अलंकारिक हैं जिसमें पश्चिमी व भारतीय संस्कृति का सम्मिश्रण है। गोपाल जैपुरिया को अंग्रेजी जैकेट (कोट) पहने हुए दर्शाया गया है। शेष रूपाकारों को पूर्ण भारतीय पौशाक में बगलबंदी (अचकन) व धोती पहने हुए अंकित किया गया है। सम्पूर्ण चित्र सृजन अपने आप में अनूठा व अति महत्वपूर्ण दस्तावेज है जिससे तत्कालीन बीकानेर की चित्रकला व चित्रकारों के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध होती है ऐसा चित्र बीकानेर में अन्यत्र कहीं देखने में नहीं आता है। इसलिए इस चित्र की महता और बढ़ जाती है। इस चित्र के पास के दल्हे में श्री कृष्ण व राधा का युगल स्वरूप चित्रित है। जिनको अलंकारिक झूले में बैठे हुए दर्शाया गया है।

कृष्ण को पीतवस्त्र और राधा को घाघरा ओढ़नी पहने हुए चित्रित किया गया है। चित्र की पृष्ठभूमि में सुन्दर भवनों का अंकन है। इसके पास ही राम दरबार का अद्भुत चित्र बना हुआ है जिसमें राम और सीता को सिंहासनारूढ़ दर्शाया गया है। भगवान श्रीराम को नीलवर्णीय बनाया गया है। कमर पर पीताम्बर धारण किये हुए है। सीता जी को पूर्ण राजस्थानी परिवेश में अंकित किया गया है उनकी शारीरिक भंगिमा और वस्त्रालंकार बीकानेर के सेठ साहूकारों की पत्नियों जैसे

प्रतीत हो रहे हैं। चित्रण पर इस प्रकार का प्रभाव क्षेत्रीयता के कारण प्रतीत हो रहा है। चित्र में बाई तरफ लक्ष्मण को चँवर लिये हुए चित्रित किया गया है, तो दूसरी तरफ प्रभु श्री राम भक्त हनुमान जी को श्री राम जी के चरण दबाते हुए वज्रासन की मुद्रा में अंकित किया गया है।

संभवतः ऐसा प्रयोग भी बीकानेर की चित्रकला में कमर ही देखने में आया है। हनुमान जी के चेहरे पर रामभक्ति की पराकाष्ठा और अद्‌भुत सौम्यता दिखाई दे रही है वहीं राम की तर्जनी अंगुली के द्वारा हनुमान जी को दिशा-निर्देशित करते हुए चित्रित किया जाना भी अद्‌भुत है। चित्र की पृष्ठभूमि में सफेद संगमरमरी महल, गहरे नीले रंग के बादल व उनमें चमकती सर्पाकार बिजली से चित्र और भी आकर्षक लग रहा है। इसी क्रम में अगले दल्हे पर बीकानेर के महाराजा सरदार सिंह जी को सिंहासनरूढ अंकित किया है। महाराजा का देदीप्यमान चेहरा, उन्नत नासिका रौबदार मूछें व बढ़ी हुई कलात्मक दाढ़ी रेगिस्तानी रबाबदार यौद्धाओं की बानगी प्रस्तुत कर रही है। इनके लंबा घेरदार जामा गले में स्वर्णाभूषण का सुन्दर अलंकरण है, उनके पैरों में आगे रखी गयी ढाल व उसके पीछे दिखाई दे रही कटार भी यौद्धाभाव की पुष्टि कर रही है। इस मंदिर के अन्य राजा-महाराजाओं के चित्रों में आयुद्ध, तीर व तलवार का अंकन है। लेकिन इस चित्र में तलवार के स्थान पर कटार का होना भी निश्चित ही महाराजा का इस आयुध के प्रति लगाव दर्शाता है। चित्र में नीचे की तरफ संगमरमरी द्विमंजिला कलात्मक भवन, हरे भरे पहाड़ व नदी का अंकन है। इस चित्र के पास ही बीकानेर के एक और महाराजा रतनसिंह जी का सिंहासनारूढ़ चित्रण है। जिनका उन्नत ललाट, रौबदार दाढ़ी मूंछ, उन्नत नेत्र पौरूष की अभिव्यक्ति कर रहे हैं। सिर पर पेंचदार पगड़ी लम्बा घेरदार जामा व लाल व हरे रंग का दुपट्टा व कमरबंद (पटका) चित्रित है। चित्र में नीचे की ओर कलात्मक आधुनिक टाईल्स का चित्रण है। चित्र की पृष्ठभूमि में दोनों तरफ सुंदर भवनों का अंकन है जो पूर्वोक्त राजा महाराजाओं के चित्रों की ही भांति है। मंदिर के गर्भ गृह की मुख्य दीवार के विपरीत प्रवेश द्वार के ऊपर की ओर की दीवार के बड़े भाग पर महारास मंडली का चित्रण है जिसमें कृष्ण व राधा के अनेक रूपों को नृत्यरत रास करते हुए दर्शाया गया है। रासमंडली के दोनों किनारों पर पुरुष व नारी आकृतियों को झांझ, नगाड़े, शहनाई व ढोलक इत्यादि वाद्ययंत्र बजाते व गाते हुए अंकित किया गया है। इन वादकों के चेहरे बड़े ही सौम्य, सरल भाव से बनाये गये हैं। रासमंडली के नीचे की तरफ दोनों किनारों पर दो पैनलनुमा चित्रों का सृजन किया गया है जिसमें एक चित्र में तो आधुनिक

बीकानेर की झलक दिखाई दे रही है। चित्र में एक ओर रेलगाड़ी का अंकन है, जो बीकानेर में अनेकानेक भित्तियों पर देखा जा सकता है। रेलगाड़ी का सिग्नल दिखाता गार्ड भी यहाँ अंकित है। चित्र में दूसरी तरफ तीन मंजिला हवेली का सुंदर चित्रण है तो दूसरी तरफ के चित्र में भी किले की प्राचीर दर्शाई गई है जिसके आगे एक बच्चे को साईकिल चलाता हुआ दर्शाया गया है तो दूसरी तरफ सुन्दर फव्वारा बनाया गया है जो पुनः आधुनिक बीकानेर की झलक प्रस्तुत करता है। इस चित्र के उपर भी चित्रकार ने रामकिशन, चांदरतन-मथेरण नाम संवत् 2024 के साथ अंकित किया हुआ है।

जो मथेरण चित्रकारों द्वारा इस मंदिर में किये गये कार्य को और पुष्ट कर रहा है।

मंदिर की दाईं ओर की दीवार पर प्रथम दलहे में महाराजा रायसिंह जी का आदमकद व्यक्ति चित्र बना हुआ है जिसमें महाराजा को पूर्वोक्त महाराजाओं के चित्रों की ही भांति सिंहासनारूढ़ दर्शाया गया है। महाराजा का एक चश्मीय मांसलता युक्त चेहरा, उन्नत ललाट, नासिका व पेचदार पगड़ी उनकी शोभा को और बढ़ा रही है। उनके लम्बा घेरदार जामा पहना हुआ है और कमर पर पटका बंधा हुआ है। उनके हाथ ढाल के उपर रखे हुए हैं और तलवार को सिंहासन के नीचे दर्शाया गया है। उनकी पीठिका के तौर पर बड़ा गोल मसनद अंकित किया गया है जिसकी बनावट भी पूर्वोक्त चित्रों की भांति ही है। पृष्ठभूमि में तीन मंजिला संगमरमरी इमारत और दुर्ग की प्राचीर का सुन्दर अंकन किया गया है। शेष पृष्ठभूमि भी पूर्वोक्त वर्णित महाराजाओं के चित्रों की ही भांति है। इस चित्र के ठीक नीचे विशालकाय शेषशायी विष्णु का चित्रण है। जिसमें श्री विष्णु शेषनाग पर लेटे हुए हैं और देवी लक्ष्मी उनके चरण दबा रही है। भगवान विष्णु के चतुर्भुज विग्रह में शंख, चक्र, गदा व पद्म है और उनका अंकन नीलवर्णीय है। विष्णु का ऊपरी भाग अनावृत है और कमर के नीचे पीताम्बर पहना हुआ है जिस पर गहरे भूरे रंग से कतिपय रेखायें बनाकर उभार दिया गया है। उनके नाभि कमल से कमलनाल निकली हुई है जिस पर जगत पिता ब्रह्मा जी का सुंदर व कलात्मक अंकन है। श्री लक्ष्मी को भी पूर्ण सजधज के साथ शृंगारित अंकित

किया गया है, जो राजस्थानी परिवेश में है। इन दोनों रूपाकारों को सवा चश्मीय दर्शाया गया है और दो मुख्य पात्रों श्री विष्णु व लक्ष्मी जी के सिर के पार्श्व भाग में एक प्रभा मंडल भी दर्शाया गया है। जो चित्र में उनकी महत्ता को और बढ़ा रहे हैं। तीनों ही रूपाकार शेषनाग के उपर अंकित हैं। जिसका अंकन हल्के गहरे भूरे रंग के द्वारा बड़ा ही कलात्मक किया गया है। शेष पृष्ठभूमि में चारों तरफ क्षीरसागर का नीलवर्णीय जल दर्शाया गया है जिसमें जगह-जगह पर हल्के गुलाबी रंग से

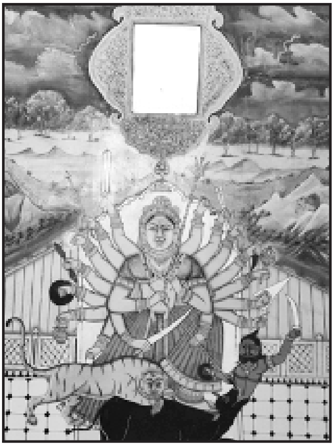

कमलदल का अंकन है। संपूर्ण चित्र अत्यंत ही आकर्षक है। इस चित्र के पास के ही दल्हे में अष्टादशभुजी महिषासुरमर्दिनी का अत्यंत ही मनमोहक चित्र है। इसमें मां दुर्गा को अठारह हाथों में अलग-अलग अस्त्र-शस्त्र धारण किये हुए दर्शाया गया है जिसमें त्रिशूल तलवार तीर कटार गदा इत्यादि प्रमुख है। उनके रक्ताभ साड़ी पर गहरे रंग से सलवटे बनाकर उभार दिया गया है। वे अपने दो हाथों से महिषासुर पर प्रहार कर रही है। उनका एक पैर जमीन पर व दूसरा पैर महिषासुर की पीठ पर रखा हुआ है। महिषासुर मर्दन में शेर भी अपनी भूमिका का निर्वहन करता दिखाई दे रहा है जो महिष पर प्रहार की मुद्रा में है। महिष का अंकन काले रंग से किया गया है। जिस पर कुछेक सफेद रेखाओं के द्वारा उभार दिया गया है। महिष के

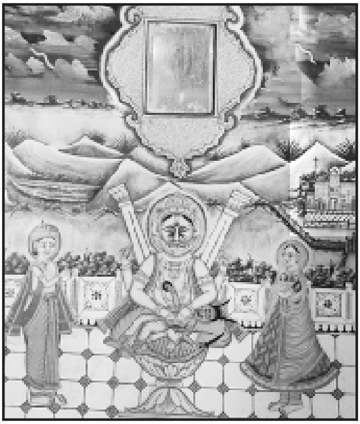

मुख से महिषासुर का आधा शरीर बाहर की ओर निकला हुआ दर्शाया गया है। महिषासुर का गहरा रंग बढ़ी हुई दाढ़ी मूछें व लंबे बाल उसकी पैशाचिक वृति की ओर इशारा कर रही है। महिषासुर के बालों को देवी दुर्गा ने अपने एक हाथ से पकड़ा हुआ है। महिषासुर भी अपने बचाव की मुद्रा में एक हाथ में तलवार व ढाल लिये हुए चित्रित है। चित्र में नीचे की ओर सफेद रंग की टाईल्स का अंकन है। जो आधुनिकता को दर्शा रहा है पृष्ठभूमि में गहरे नीले रंग से बादल

घने वृक्षो की कतार, पहाड़, सिंह इत्यादि का चित्रण किया गया है। इस चित्र के पास ही के दल्हे में भगवान नृसिंह अवतार का अत्यन्त कलात्मक स्वरूप चित्रित है। चित्र के मध्य भाग में भगवान नृसिंह को स्तम्भ में से प्रगट होते हुए दर्शाया गया है। उनके मुखमण्डल पर क्रोध के भाव दृष्टिगत है। उनका उपरी भाग अनावृत है और कमर के नीचे पीताम्बर पहने हुए है। उनकी गोद में असुरराज हिरण्यकश्यप के बड़े-बड़े सिंह, बड़ी मूछें आसुरी वृति की द्योतक है। उसके एक हाथ में तलवार व दूसरे में ढाल का अंकन है। भगवान नृसिंह अपने दोनों हाथों से हिरण्यकश्यप के उदर का छेदन कर रहे हैं तथा अन्य दो हाथों से उसकी आंतो को उदर से छेदन कर बाहर निकाल रहे हैं। नृसिंह के एक ओर भक्त शिरोमणि प्रहलाद का बड़ा ही कोमल अंकन है। उनके चेहरे पर सौम्य भाव स्पष्ट रूप से झलक रहा है उनको सुन्दर वस्त्रालंकरणों से सुसज्जित दर्शाया गया है। जो हाथ जोड़कर नृसिंह की वंदना कर रहे हैं तो चित्र में दूसरी तरफ प्रहलाद की मां कयादु को पूर्ण राजस्थानी वेश में घागरा ओढनी पहने हुए दोनों हाथ जोड़कर नृसिंह की स्तुति गान की मुद्रा में दर्शाया गया है। चित्र में फर्श के तौर पर सफेद व हरे रंग की टाईल्स को दर्शाया गया है।

पृष्ठ भाग में संगमरमर की निर्मित छोटी दीवार है। चित्र की पृष्ठभूमि में पूर्वोक्त चित्रों से ही मेल खाती प्रतीत होती है लेकिन पृष्ठभूमि में अंकित भवन आधुनिक भवनों से साम्यता बनाये हुए है। जिस पर घड़ी का अंकन है और भवन के किनारे पर विद्युत का पोल (स्तम्भ) भी लगा हुआ है। जो आधुनिक बीकानेर की एक बार पुनः बानगी प्रस्तुत कर रहा है। इस चित्र के पास ही क्रमशः अगले दो दल्हों में बीकानेर के दो और महाराजाओं का अंकन है। इसमें प्रथम दल्हे में महाराजा डूंगरसिंह जी तथा उसके पास वाले दल्हे में महाराजा सूरत सिंह जी का चित्रण है। डूंगर सिंह जी को खड़े व सूरत सिंह को बैठे हुए दिखाया गया है। सूरतसिंह जी की वेशभूषा पूर्वोक्त महाराजाओं के चित्रण के समान ही है लेकिन डूंगर सिंह जी को अति विशालकाय कद काठी का दर्शाया गया है और उनके पहना गया जामा गहरे बैंगनी रंग का है। उनकी बढ़ी हुई दाढ़ी मूंछ मोतीयुक्त पेचदार पगड़ी उनके राजसी प्रभाव को और पुष्ट कर रही है। उनके एक हाथ में लम्बी तलवार व उसके पीछे रखी ढाल उनके योद्धा रूप को पुष्ट कर रही है। यहां एक बात और है कि जहां अन्य महाराजाओं के व्यक्ति चित्रों में पैरों में जूतियाँ (मोजड़ी) पहनी हुई हैं वहीं इस चित्र में महाराजा डूंगरसिंह जी के जूते पहने हुए हैं जो भी आधुनिकता का परिचय करवाते है। चित्र में नीचे की ओर सुन्दर अलंकृत कालीन बनाया गया है। पृष्ठभूमि का

अंकन पुर्वोक्त ही है, पृष्ठभूमि में सुन्दर भवन के उपर लगी घड़ी भी आधुनिकता का परिचय दे रही है। ऐसा उदाहरण आप बीकानेर रेलवे स्टेशन पर और अन्य प्राचीन हवेलियों पर देख सकते हैं। ये दोनों ही चित्र बड़े आकर्षक व कलात्मक बने हुए हैं।

मंदिर की दायीं व बायीं दीवारों के अतिरिक्त मंदिर की छत पर भी बहुत ही सुन्दर चित्रकारी की गई है जिसकी समस्त पृष्ठभूमि में गहरे नीले बादल व उसमें चमकती हुई बिजली का अंकन किया गया है, जो अत्यन्त आकर्षक है। इनके बीच बीच के शेतीरों में फूल पत्तियों के सुन्दर अलंकरण इसकी शोभा को और बढ़ा रहे हैं। बादलों की इस पृष्ठभूमि पर अंकित चित्रों में शिव पार्वती, गजारूढ इन्द्र, ब्रहमा, गणेश, कार्तिकेय, सरस्वती आदि प्रमुख हैं। इसके अलावा सुन्दर पक्षियों का भी चित्रण है।

शिव पार्वती के चित्रण में शिव व पार्वती को बैल पर सवारी करते हुए दर्शाया गया है। भगवान शिव व माँ पार्वती के सवाचश्मीय चेहरा प्रभावोत्पादक है। शिव को नीलवर्णीय बनाया गया है और देवी पार्वती को साड़ी पहने हुए चित्रित किया गया है। इस चित्र में एक खास बात और है कि भगवान शिव को बाघम्बर की जगह पीताम्बर पहने हुए चित्रित किया गया है जो अपने आप में अनूठा है। चित्र में ऐसे

उदाहरण कम ही देखने में मिलते हैं। शिव के बैल (नंदी) को सुसज्जित व गतिशील मुद्रा में दर्शाया गया है इसी क्रम में छत पर बना हुआ भगवान गणेश का चित्र अत्यन्त ही मनमोहक है। गणेश को चतुर्भुज रूप में पीताम्बरधारी दर्शाया गया है। उनके मुखमण्डल को लालरंग से दर्शाया गया है जो विशिष्ट है। उनकी जंघाओं पर क्रमशः रिद्धि सिद्धि

विराजित है जिनका चित्रण पूर्णरूपेण श्रृंगारित भारतीय नारी के समान किया गया है। चित्र में एक और विशिष्ट बात है और वह है उनका मुशक वाला आसन जिसमें सफेद रंग के आसन पर फूल पत्तियों का अलंकरण है। चित्र की पृष्ठभूमि नीले गहरे रंग के बादलों से आच्छादित है। छत पर बने अन्य चित्रों में ब्रह्माजी के चित्र में उनको हंस के ऊपर बैठे हुए चतुर्भुज रूप में अंकित किया गया है। चतुर्भुज ब्रह्मा के मुख पर हल्की सफेद दाढ़ी के द्वारा थोड़ा प्रौढ दर्शाने की चेष्टा की गई है। उनके सिर पर मुकुट व उसके पीछे आभामंडल उसकी शोभा को और बढ़ा रहे हैं। ब्रह्मा के हाथ में क्रमशः वेद, करमाला, गदा व मिष्ठान से भरा पात्र है उनके गले व हाथों में आभूषण हैं। हंस की आकृति को बड़ा कलात्मक दर्शाया गया है। जिसमें सफेद रंग पर गहरे भूरे रंग की रेखाओं के द्वारा उसके पंखों को बनाया गया है। हंस के मुख में भी एक लम्बी माला है जो उसकी उपमा को और बढा रही है।

इसी क्रम में कार्तिकेय का अंकन ब्रह्मा जी के भांति ही किया गया है। वैसे तो कार्तिकेय को षणमुख (छः मुख) वाला कहा जाता है लेकिन इस चित्र में उनके पांच मुख बनाये गये है। जिस पर गहरे काले रंग की दाढ़ी व मूंछ उनकी युवा अवस्था को दर्शाती

है। उन्नत ग्रीवा वक्षस्थल वीरपौरूषता को इंगित कर रहा है। उनको छः भुजी बनाया गया है जिसमें क्रमशः कर माला- मोती की माला, गदा, घण्टा, गुलाब एवं पुष्प इत्यादि हैं। गले व हाथों में सुन्दर आभूषण है उनके कमर पर पीताम्बर है जिस पर गहरे भूरे रंग के द्वारा सीमा रेखा बनाकर उभार दिया गया है। कार्तिकेय के वाहन मोर का भी सुन्दर निरूपण चित्रकार ने किया है। जिसकी नीलवर्णीय ग्रिवा और लहरदार पंख बहुत ही आकर्षक लग रहे हैं।

छत पर ही वीणावादनी मां सरस्वती का हंस पर सवार चित्र है। चित्र में सरस्वती को चतुर्भुज रूप में अंकित किया गया है। जिसके हाथों में क्रमशः वीणा कमल पुष्प व वेद इत्यादि हैं। उनके चेहरे पर अपारशक्ति के भाव परिलक्षित हो रहे हैं। उनका परिवेश राजस्थानी है। स्वर्णाभूषण उनकी शोभा को और बढा रहे हैं। इसके अलावा यहां पर देवराज इन्द्र का चित्र है ऐसा चित्र आमतौर पर देखने में नहीं आता है या यूं कहे की देवराज का चित्र अत्यन्त ही

सुन्दर बना है। इस दृष्टि से भी यह चित्र महत्वपूर्ण बन जाता है। इस चित्र में इन्द्र को सात सूंड वाले हाथी पर आरूढ चित्रित किया गया है जो मूल्यवान कुर्सी पर बैठे हुए हैं। उनके सिर पर मुकुट मुख पर विस्मयकारी मुस्कान व बैठने का ढंग राजसिक प्रभाव उत्पन्न कर रहा है। उनके हरे रंग का लम्बा कुर्ता, सफेद धोती व पैरों में पहनी हुई जूतियां स्थानीय प्रभाव की ओर इशारा कर रही हैं। उनके आगे अंकुशधारी महावत और पीछे की ओर चंवरधारी पुरुष का अंकन है। इन्द्र के एरावत हाथी को भी यहां कुशलता पूर्वक चित्रित किया है, उनके

वस्त्रालंकार भी सुन्दर हैं। हाथी की सात सूण्ड दर्शायी गई हैं, जिसमें ऊपरी सूण्ड में एक चंवर है जो राजसिक भाव की पुष्टि करता है। चंवर और हाथी दांत के बीच एक अप्सरा का भी चित्रण किया गया है जो एक हाथ ऊपर उठाकर नृत्य की मुद्रा में हैं उसके ऊपर लगे पंख यूरोपीय चित्रकला में चित्रित क्यूपिड की याद दिला रहे है। सम्पूर्ण चित्र की पृष्ठभूमि छत पर बने अन्य चित्रों की भांति मेघाच्छादित है जिसमें चमकती हुई बिजली उसको और ज्यादा आकर्षकता प्रदान कर रही है। इन चित्रों के अलावा छत पर बनी परियां अत्यधिक आकर्षक बनायी गई हैं जो बादलों के मध्य उड़ती हुई प्रतीत हो रही है। पंखयुक्त ये परियां अपनी बनावट और वस्त्रालंकरण से और भी ज्यादा प्रभाव उत्पन्न कर रही हैं।

उक्त समस्त चित्रों के अलावा छत की दीवारों की शेष सतहों पर फूल पत्तियों से आबद्ध दर्पण के किनारें अत्यन्त आकर्षक है। कांच के ऐसे दर्पण आज भी बीकानेर में सुनहरी कलम (स्वर्ण मुनवत) का कार्य करने वाले चित्रकार निरन्तर सृजित कर रहे हैं।

मंदिर के मुख्य प्रवेश द्वार के अन्दर की तरफ भी सूर्य व चन्द्रमा का अद्भूत चित्रण दिखायी देता है। जिसमें दोनो ही देवगणों को चतुर्भुज रूप में पद्मासन की मुद्रा में रथारूढ चित्रित किया गया है। चन्द्रमा को सफेद व

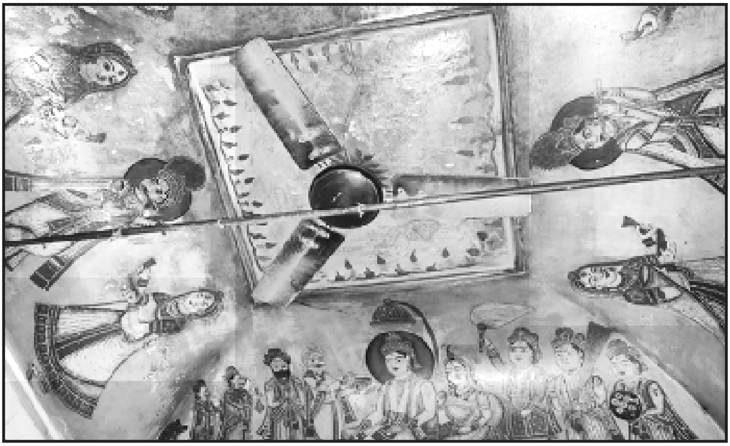

सूर्यनारायण को भूरे रंग से रंगाकित किया गया है। उनके तेजोमय मुखमण्डल पर स्मित मुस्कान पार्श्व में आभामंडल उनकी शोभा में अभिवृद्धि कर रहें। चन्द्र व सूर्य के घोड़ो को भी उनके अनुरूप ही रंगाकित किया गया है। जिसको कोचवान हांक रहा है। इन चित्रों के ठीक नीचे दोनों तरफ शेर बनाये गये हैं जो रक्षा के प्रतीक के तौर पर वहां अंकित हैं। उनकी पृष्ठभूमि में सफेद संगमरमरी

भवन जो इसी मंदिर का प्रारूप है, उसका कुशल चित्रण किया गया है जो अपने आप में अनूठा है। इस मंदिर के बारहद्वारी पर भी गणेश इत्यादि के सूक्ष्म चित्र बने हुए हैं। बाहरी प्रवेशद्वार के बायीं बने शिव मंदिर में भी अत्यन्त महत्वपूर्ण चित्र बने हुई

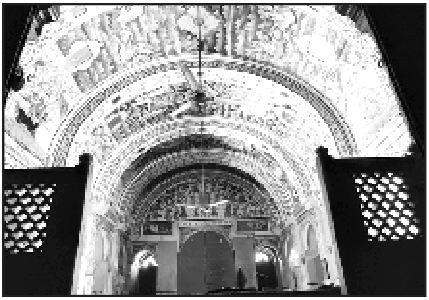

हैं जिसमें गर्भगृह की छत पर श्रीराम दरबार और कृष्ण का बंशीवादन अति मनमोहक है।

राम दरबार के चित्र में भगवान श्रीराम और सीता को एक ही सिंहासन पर बैठे हुए अंकित किया गया है। श्रीराम को नीलवर्णीय व मां सीता को हल्के भूरे रंग से दर्शाया गया है। श्रीराम पूर्ण राजकीय परिवेश में हैं और मां सीता को भारतीय परम्परा के अनुसार श्रृंगारित व साड़ी पहने हुए दर्शाया गया है। उनके दांयी तरफ गुरु वशिष्ठ, सुग्रीव, जामवंत व अन्य कई आकृतियों का अंकन किया गया है तथा बांयी ओर लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न को क्रमशः चँवर व ढाल इत्यादि ग्रहण किये हुए पूर्ण राजसिक परिवेश में अंकित किया गया है।

इसी गर्भग्रह की छत में शेष तीनों ओर श्रीकृष्ण राधा व गोपिकाओं का अंकन है। श्रीकृष्ण त्रिभंगी मुद्रा में गोपिकाओं के मध्य बंशीवादन कर रहे हैं। श्रीकृष्ण का आभामंडल वस्त्रविन्यास और आभूषण उनकी उपमा को और बढ़ा रहे हैं। उनके दोनों तरफ की गोपिकाओं को पूर्ण श्रृंगारित राजस्थानी परिवेश में दर्शाया गया है। इसी मंदिर के बाहरी बारामदे की घुमावदार छत पर सनातनी परम्परा के अनेको चित्र सृजित हैं। जिसमें श्रीमद्भागवत को आधार बनाकर श्रीहरि विष्णु के कई अवतारों का चित्रण किया गया है साथ ही साथ शिव परिवार व उनके जीवन से संबंधित विविध पक्षों का चित्रण है। विष्णु के अवतारों में मत्स्य अवतार, नृसिंह अवतार, कृष्णावतार, कल्कि अवतार, वामन अवतार, परशुराम अवतार, बुद्धावतार, वराहवतार, ऋषभदेव अवतार इत्यादि प्रमुख हैं। भगवान शिव से संबंधित चित्रों में शिव परिवार, शिवपार्वती वार्तालाप, शिव की बारात इत्यादि को प्रमुख तौर पर चित्रित किया गया है इसके अलावा दत्तात्रेय अवतार, कपिल अवतार, यज्ञावतार, धनवन्तरी अवतार, स्वर्ग नरक के दृश्य, समुद्र मंथन व कुछ राजसिक चित्रों का भी सृजन हुआ है। जिसमें महल के आंतरिक भाग, राजदरबार में बैठे राजा व राजसिक पुरुषों का

अंकन है। इसके अलावा भी सनातन परम्परा के कई और चित्र भी यहां पर बने हुए हैं। लेकिन सीलन के प्रभाव से अपनी जमीन छोड़ चुके हैं और उखड़ गये हैं।

तो जरूरत है ऐसी अद्भुत चित्रावलियों को संरक्षित रखने की जिससे बीकानेर ही नहीं वरन भारतीय चित्रण परम्परा की इस अमूल्य धरोहर को संरक्षित व सुरक्षित किया जा सकें। धन्य है वे सेठ साहूकार जिनकी विराट भक्तिमय समझ ने शहर के बीचों-बीच इतने अद्भुत मंदिर और उनमें अत्यन्त सुन्दर चित्राकृतियों का सृजन करवाया लेकिन अब इन मंदिरों को इंतजार है पुनः वैसी सोच वाले बुद्धिजीवियों का जिससे ईश्वर के प्रति समर्पित इस देवालय को काल व आधुनिक मानव के क्रूर हाथों से सुरक्षित व संरक्षित रखा जा सके।

संदर्भ :

1. ओझा गौरीशंकर हीराचंद, बीकानेर राज्य का इतिहास प्रथम भाग, वैदिक यंत्रालय, अजमेर, पृ. 96, 1939 ई.।
2. व्यास राजेन्द्र प्रसाद चूरू वाला, रत्ताणी व्यासों का इतिहास एवं वंशावली, जवाहर प्रेस, बीकानेर, पृ. 82, 1993 ई. (प्रथम संस्करण)।

डॉ. राकेश कुमार किराड़ू

व्याख्याता चित्रकला

सिस्टर निवेदिता कन्या महाविद्यालय, बीकानेर

❑❑❑

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय बणीठणी : प्रेमकथा से चित्रकला तक

समीक्षा : बी.एल. भादानी

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय द्वारा रचित 'बनीठनी : प्रेमकथा से चित्रकला तक' एक लघु परन्तु महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक दस्तावेज है। इस लघु-ग्रन्थ का कलेवर अत्यन्त व्यापक है एवं तथ्यात्मकता को रसात्मक स्वरूप में संजोया गया है। वास्तव में यह तीन विभागों में संयोजित पुस्तक हैः प्रथम, लक्ष्मीनारायण तिवारी द्वारा लिखित भूमिका, द्वितीय, उपाध्यायजी द्वारा रचित 'बनीठनी : प्रेमकथा से चित्रकला तक' संपादक के शब्दों में 'काव्यात्मक भाषा में लिखा ललित निबंध है एवं तृतीय भाग 'बनीठनी', 'रसिक बिहारी' कृत पदावली का संकलन है जो कृष्णभक्ति से सराबोर है। वास्तव में इस ग्रन्थ ने कई भ्रांतियों के समाधान के साथ-साथ नवीन तथ्य भी उजागर किए हैं। प्रथम भाग में तिवारीजी ने किशनगढ़ की इत्तलाक बही के आधार राठौड़ शासक राजसिंह के पुत्र सांवतसिंह की जानकारी संकलित की है। पिता-पुत्र दोनों काव्यसर्जक थे। सांवतसिंह की द्वितीय माता रानी ब्रजकुँवरी, जो स्वयं एक कवयित्री थी एवं उनकी पुत्री सुन्दरी कुँवरी भी अपने पिताश्री, माताश्री एवं भ्राताश्री के नक़शे क़दम पर ही चल रही थी। तीन पीढ़ियों की काव्य सृजनात्मकता ने राठौड़ राज्य की राजधानी किशनगढ़ को सांस्कृतिक केन्द्र के रूप में पहिचान दी। तिवारीजी की मान्यता कि किशनगढ़ लघुचित्र शैली इसी सांस्कृतिक वातावरण की उपज थी बिलकुल युक्तियुद्ध प्रतीत होती है। राज्य के राजकुमार सांवतसिंह 'नागरीदास' उपनाम से काव्य सृजन करते थे जिनकी लेखनी से लगभग 69 काव्यग्रन्थ सृजित हुवे। उनके काव्य के केन्द्र में मुख्यतः वृन्दावन एवं वृन्दावन अधिपति कृष्ण थे।

वि.सं. 1805 ई. 1748 में अपने पिता के स्वर्गवास एवं राज्य पर आधिपत्य को लेकर अपने भाई बहादुरसिंह के साथ हुवे युद्ध रक्तपात ने सुजानसिंह के जीवन की दिशा बदल दी और वे सब त्याग कर वृन्दावन पहुँच गए। कृष्ण की रासलीला नगरी में महाराजा सांवतसिंह से बड़ा नाम काव्यसृजक नागरीदास का था जहां महाराजा का नहीं बल्कि भक्त कवि का हृदय से स्वागत

किया गया। वे अपने साथ बनीठनी को भी लेकर आए थे जो स्वयं भक्त कवयित्री थी। तिवारीजी ने उसके द्वारा रचित 65 पदों का संकलन किया है जिसके लिए अकादमिक जगत सदैव उनका आभारी रहेगा। वास्तव में उनकी यह भूमिका महाराजा सांवतसिंह से नागरीदास बनने एवं बनीठनी के एक सेविका से भक्त कवयित्री एवं नागरीदास के साथ वृन्दावन पहुँच कर युग्म रूप में पहिचान स्थापित करने की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को रेखांकित करती है।

तिवारीजी 'वृन्दावन के नगरीकरण को अठारहवीं सदी में औरंगज़ेब की मृत्यु के पश्चात मुग़ल साम्राज्य के पतन के पश्चात रजवाड़ों द्वारा कराए गए निर्माण से जोड़ते हैं जिस प्रस्थापना पर पुनर्विचार की आवश्यकता है। जैसा कि उन्होंने स्वयं लिखा है कि अकबर के समय राजपूत राजाओं द्वारा कुछ भव्य मंदिरों का निर्माण करवाया गया। ओरछा के शासक मधुकरशाह कृष्णभक्त थे इसलिए निश्चित ही उन्होंने कुछ निर्माण कार्य करवाये होंगे। इसके पश्चात् उनके पुत्र वीरसिंह जूदेव ने मथुरा में कृष्ण जन्म स्थान मंदिर के अतिरिक्त वृन्दावन में बहुत से निर्माण करवाये थे जिसकी पुष्टि वीरसिंह देव चरित से होती है। इसी प्रकार हरिराम व्यास जैसे विद्वान-भक्त भी सोलहवीं सदी में वृन्दावन आकर बस गए थे। आम्बेर घराने के महाराजा मानसिंह के अतिरिक्त मिर्जा राजा जयसिंह ने भी निर्माण कार्य करवाए थे। इसके अतिरिक्त बड़ी संख्या में इन राज्यों से भक्त जनों के आने एवं वहां बसने की सम्भावना से इंकार नहीं किया जा सकता।

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय द्वारा लिखित आलेख 'बनीठनी : प्रेमकथा से चित्रकला तक' एक रसात्मक व्याख्या है। उनकी यह व्याख्या केवल मात्र 'बणीठणी' के अप्रतिम सौन्दर्य एवं उसके लावण्य की एक झलक से आकर्षित किशनगढ़ के महाराजकुमार सांवतसिंह की कहानी नहीं है बल्कि दोनों के जुगलजोड़ी या युग्म में परिवर्तित होने की प्रक्रिया का अंकन है। सुजानसिंह न केवल काव्यकार थे बल्कि चित्रकार एवं रंगकर्मी भी थे। बणीठणी कवयित्री, नर्तकी, गायिका एवं रंगकर्मी थी। लोक में बणीठणी कलावन्ती, कीर्तनिन, लंवलीज, नागरमणी और उत्सवप्रिया के नाम से भी पुकारी जाती थी जबकि नागरीदास को चितवन, चित्रेश, सनेही, अनुरागी, मतवाले तथा आराधक के रूप में सम्बोधित किया जाता था। उनके ये नाम वास्तव में उनकी विशिष्टता को दर्शाने वाले हैं। लेखक ने बणीठणी के सौन्दर्य की तुलना राधा से की है जो काव्य एवं परम्परा में एक प्रतिमान है। इस तुलना को उचित ठहराने के लिए जब उपाध्यायजी लिखते हैं कि 'वह (राधा) अनैतिहासिक चरित्र है लेकिन कभी-कभी इतिहास में ऐसे पल आते हैं, जब ऐतिहासिकता वह चाहे कितनी

प्रामाणिक क्यों न हो, अनैतिहासिकता के सामने पराजित हो जाती है।' दूसरे शब्दों में बणीठनी के सौन्दर्य को लेखक द्वारा एक सर्वोच्च प्रतिमान पर विराजित करने का प्रयास है। किसी लौकिक सौन्दर्य की अदृश्य दैवीय सौन्दर्य से तुलना बाध्यता का रूप क्यों लेती है?

सांवतसिंह नागरीदास नाम से कविता करते थे। ठीक उसी प्रकार राजमाता की सेविका बन्नो भी काव्य सृजन करती थी जिसके कारण से किशनगढ़ का उत्तराधिकारी उनके निकट आया। यह बात थोड़ी अटपटी सी लगती है क्योंकि प्रारंभ में उस सुन्दरी की एक झलक से वह व्याकुल हो गया था जिसे उसने अपनी पत्नी के सम्मुख स्वीकार किया था। अपनी व्याहता पत्नी से यह भी कहता है 'मैं उससे शारीरिक सुख नहीं चाहता हूँ केवल उसका सान्निध्य चाहता हूँ।' इसके पश्चात वह उपवन में चित्र बनाते हुए एक चित्रकार से बन्नो के सौन्दर्य की विशिष्टताओं का बखान करके चित्र बनवाता है और चित्र के पूर्ण होने पर उसके मुँह से निकल जाता है कि यह हूबहू 'बन्नो' का है। वहां भी वह चित्रकार के सम्मुख उस चित्र नायिका का नाम उद्घाटित कर देता है। चित्रकार और कोई नहीं बल्कि निहालचंद है जिसने किशनगढ़ चित्रशैली को पहिचान दी। राजकुमार सांवतसिंह उससे चित्रकला सीखता भी है।

निहालचंद एक चित्र बनाता है जो सांवतसिंह बन्नो के पास पहुँचाता है। इसे संयोग ही कहा जावेगा कि प्रत्युत्तर में बन्नो भी चित्र बना कर भेजती है। प्रथम चित्र में एक वृक्ष के नीचे नायक घायल एवं पास में प्रसन्न मोरनी है जबकि प्रतिक्रिया में प्राप्त चित्र में नायिका घायल एवं प्रसन्न मुद्रा में खड़ा मोर है। चित्रों के इस आदान-प्रदान से पारस्परिक आकर्षण की शुरुआत होती है। इसके पश्चात यह प्रेम गाथा पुष्पित एवं पल्लवित होती है जिसे उपाध्यायजी ने शब्दों के रस में पगाकर प्रस्तुत किया है जिसमें पाठक आनंद की अनुभूति करता है। इस प्रेम गाथा का अन्त सांवतसिंह एवं बन्नों के नागरीदास एवं रसिक बिहारी के रूप में कृष्ण भक्ति में लीन जीवन त्याग की आध्यात्मिक पूर्णाहुति है।

उपाध्यायजी के इस आलेख से किशनगढ़ चित्रांकन परम्परा के विकास की एक झलक के दिग्दर्शन होते हैं। निहालचंद द्वारा कृष्ण की लीलाओं का चित्रांकन का आधार नागरीदास रचित पद हैं। इस देशज चित्रांकन परम्परा पर मुग़ल प्रभाव की भी ओर लेखक ने संकेत किया है।

राजसिंहासन से वंचित सांवतसिंह, बन्नो एवं निहालचंद की त्रयी ने किशनगढ़ में रंगशाला के निर्माण के द्वारा सांस्कृतिक वातावरण का सृजन किया

जिसमें चित्रकार की प्रेयसी सुमित्रा का भी योगदान रहा। इस महायज्ञ में महाकवि घनानंद भी सम्मिलित हो गए। वे प्रेम कवि थे जो अपनी प्रेमिका वैश्या 'सुजान' छाप से जीवनपर्यन्त कविता करते रहे लेकिन वे उस प्रेमिका से वंचित रहे। बाद में संकट के समय इसी घनानंद ने नागरीदास एवं बन्नो को वृन्दावन में साहचर्य दिया।

बन्नो मात्र कवयित्री, गायिका एवं चित्रकार ही नहीं थी बल्कि शौर्य की प्रतीक भी थी। उसने अपने प्रेमी आराध्य के पुत्र सरदारसिंह को, किशनगढ़ गद्दी पर जबरन काबिज बहादुरसिंह के खिलाफ युद्ध में भाग लेकर उसको पराजित करके, उसका हक दिलवाया और उसे राज्य का शासक बनाया। इस प्रकार उसने नारी शक्ति का प्रदर्शन किया। इस युद्ध के परिणामस्वरूप किशनगढ़ में रंगशाला का पुनर्जन्म हुआ और कलाकारों की सक्रियता से सांस्कृतिक वातावरण बना। रंगशाला नागरीदास एवं बन्नों का रहाईश हो गई। लेकिन लोकनिंदा ने यहां भी उनका पीछा नहीं छोड़ा और दोनों का स्थाई निवास कृष्ण लीला स्थली वृन्दावन बना तत्पश्चात् दोनों कृष्ण भक्ति में लीन होकर अलौकिक हो गए।

'बणीठणी' का इतिहास, किशनगढ़ चित्रशैली के विकास, राठौड़ राज्य के रंगशाला के इतिहास एवं कृष्णभक्ति रचित काव्य के सृजन एवं अन्त में सांवतसिंह के नागरीदास एवं बणीठणी के 'रसिक बिहारी' बनने की प्रक्रिया का सरस शब्दांकन है यह लघुग्रन्थ। इस आलेख में बणीठणी के अन्तर्गत कई अन्र्तकथाएं गुम्फित है जो विस्तार से जानने में उत्सुकता पैदा करती है।

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय बणीठनी : प्रेमकथा से चित्रकला तक

प्रकाशक : ब्रज संस्कृति शोध संस्थान

मन्दिर श्रीगोदा विहार, परिसर, गोपेश्वर मार्ग,

वृन्दावन (मथुरा), मूल्य 190 रुपये।

समीक्षक : **बी.एल. भादानी**

❑❑❑

Sl.No.	Journal No.	Title	Publisher	ISSN
169		JUNI KHYAT		2278-4632

UGC Journal Details

Name of the Journal : **JUNI KHYAT**

ISSN Number : 2278-4632

e-ISSN Number : NA

Source : **UGC**

Discipline : **Social Science**

Subject : **Social Sciences (all)**

Focus Subject : Cultural Studies

Publisher : Marubhumi Shodh Sansthan, Sri Dungargarh (Bikaner)

महत्त्वपूर्ण जानकारी

पाठकों से निवेदन है कि **जूनी ख्यात** में प्रकाशन हेतु शोध पत्र की एक प्रति Word तथा एक प्रति PDF फाइल में अवश्य भेजें। यदि शोध पत्र हिन्दी में है तो Kruti Dev 010 तथा अंग्रेजी में है तो Times New Roman नामक फोन्ट का प्रयोग करें।

शोध पत्र से सम्बन्धित छाया चित्रों को कम से कम 300 डीपीआई में सुरक्षित कर जे पी जी फाइल बनाकर अलग से अनुशीर्षक सहित भेजें।

शोध पत्र को इस पते पर e-mail करें bbhadani.amu@gmail.com अथवा डाक से सीडी बनाकर सम्पादक, **जूनी ख्यात**, रांगड़ी चौक, बीकानेर (राज.) 334001 के पते पर भिजवाएँ।

सम्पादक

देश की
धड़कन
राजस्थान
की शान
राजस्थली
की यही पहचान

- हम जीवन में बीसियों तरह के व्यसन–शौक पालते हैं परन्तु पढ़ने की आदत नहीं डालते। यही कारण है कि हम अपनी सांस्कृतिक पहचान, शख्सियत और वजूद को संरक्षित नहीं रख पा रहे हैं।
- राजस्थानी ही वह भाषा है जिसकी लोरियों तले हमारा बचपन खेला, कूदा और बड़ा हुआ है। अपने पांवों पर खड़ा होने के बाद ममत्व और वात्सल्य को भुलाना तो हमारी परम्परा नहीं रही है। तो फिर हम क्यों भूल रहे हैं हमारी बाल–सुलभ जिज्ञासाओं को अनथक शांत करने वाली इस मायड़ को ?
- आईये ! हम भी बंगाल की तरह हमारे घरेलू बजट में पत्र–पत्रिकाओं को शामिल कर अपने बच्चों को एक सद्–संस्कार दें। परिवार को अपना वाजिब हक दें। अपने गैर–जरूरी खर्चों में कटौती कर पीढ़ियों को संस्कारित करने के इस अनुष्ठान में सहयोगी बनें।
- आज ही **राजस्थली** के सदस्य बनें और बनायें। पत्र–पत्रिकाओं को सहयोग और उनका संरक्षण हमारी नैतिक जिम्मेदारी है।

आओ ! **राजस्थली** को स्वावलम्बी बनाएं और
पुस्तक प्रेम की हमारी सांस्कृतिक परम्परा का परिचय दें।

सदस्यता शुल्क विवरण

पाँच वर्ष के लिए	1000 रुपये
आजीवन	2500 रुपये
संरक्षक सदस्यता	5100 रुपये

राजस्थली लेन-देन सारु :
खाता नांव : RAJASTHALI
बैंक : बैंक ऑफ इंडिया, श्रीडूँगरगढ़
खाता सं. : 746210110001995
IFSC : BKID 0007462

महावीर प्रसाद माली मरुभूमि शोध संस्थान,
श्रीडूँगरगढ़ के लिए मुद्रित एवं प्रकाशित।

मुद्रक : महर्षि प्रिंटर्स, श्रीडूँगरगढ़ (बीकानेर) राज.

जूनी ख्यात बैंक विवरण :
Account Name : Marubhumi Shodh Sansthan
Bank : Punjab National Bank, Sridungargarh
Account No. : 3604000100174114
IFSC : PUNB0360400

Website : http://rbhpsdungargarh.com